रसिक-चन्द्रिका

अर्थात्

श्री कालाचांद-गीता

श्री श्री शिशिरकुमार घोष कर्तृक
प्रणीत

रसिक-चन्द्रिका

(अर्थात श्री कालाचांद-गीता)

श्री शिशिरकुमार घोष कर्तृक

प्रणीत

पं० श्रीकृष्ण पन्त, तारा लाज, नैनीताल ने हिन्दी में
अनुवाद कर प्रेमी सज्जनों के विनोदार्थ
प्रकाशित किया ।

प्रथम संस्करण

सम्वत् १९९६ । सन् १९३९

श्री ___________________________

____

____

समर्पित

____

श्री रसिक चन्द्रिका
अर्थात
ॐ
श्रीकाला चांद गीता
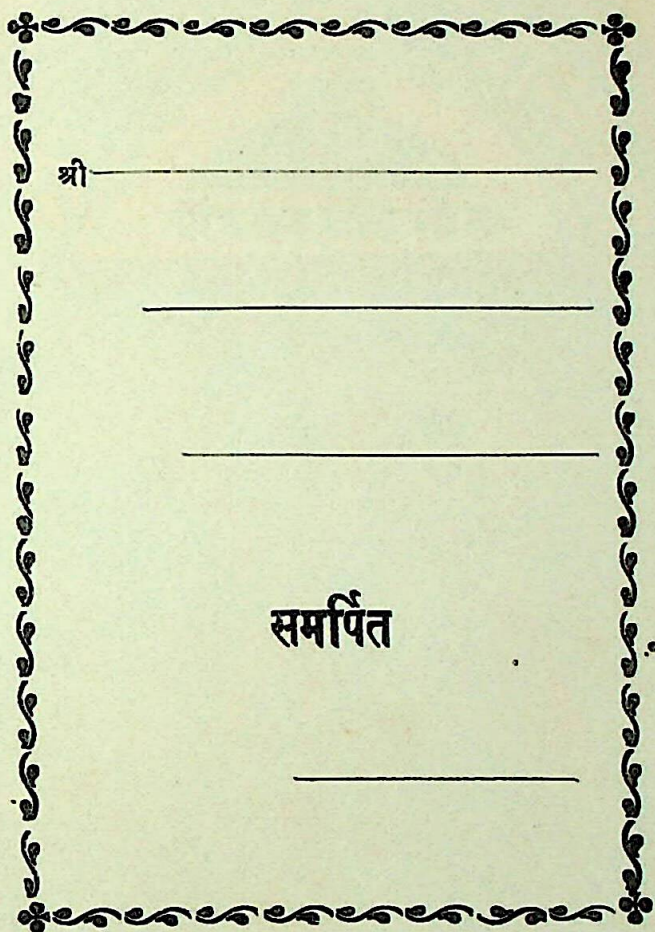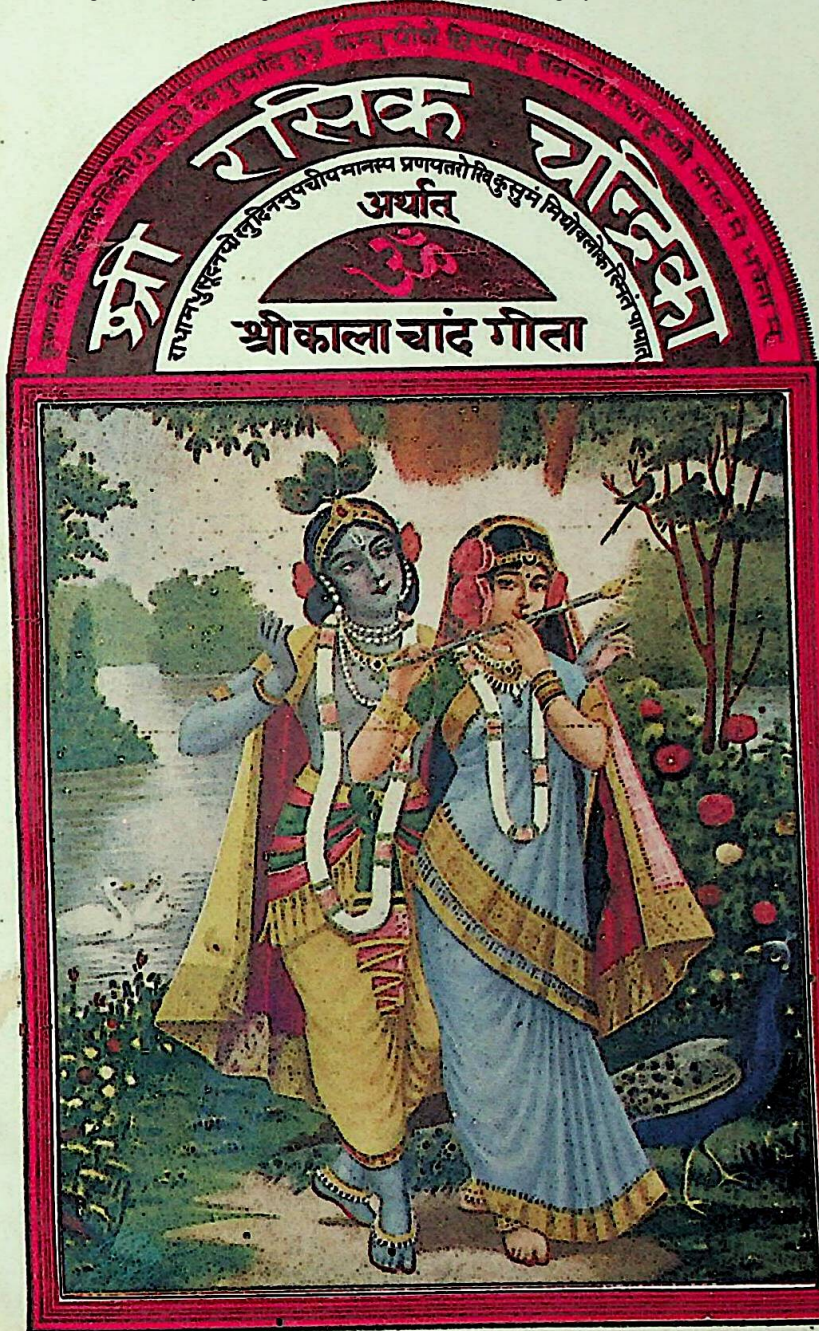
प्रस्तावना

श्रद्धेय दाज्यू ने इस अनुपम-ग्रन्थ को अपने आशीर्वाद सहित मुझे प्रदान किया है। मैं आध्यात्म विद्या का कुछ भी ज्ञान नहीं रखता और इस अगाध विषय के वाह्यिक और साधारण बातों तक के सम्बन्ध में कुछ कहने का अपने को अधिकारी नहीं समझता हूं। मैं निशि दिन संसारिक कलह में जूझता व खिंचता रहता हूं और कोई क्षण भी मुझे भगवान की अद्भुत लीला का आल्हाद-पूर्ण अनुभव करने को नहीं मिलता। मैं तो आधुनिक काल का सांसारिक व्यक्ति हूं।

तीन साल हुए मुझे अपने सहृदय अनुवादक के आग्रह से इस ग्रन्थ का अनुवाद देखने का अवसर मिला था। इसमें आरम्भ से अन्त तक एक अनूठापन दीखा। जीवन की सबसे उलझी हुई गुत्थियों को एक सरल रीति से बिना किसी तर्क के ग्रन्थकार ने बड़ी माधुर्य पूर्ण शैली से सुलझाया है। बंग देश भक्ति प्रधान है और भगवान कृष्ण की भक्ति व महिमागान वहां सर्वोच्च कोटि तक पहुंचा है। वहां अनेक ऐसे महान व्यक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ जो पाश्चात्य विद्या में पारंगत होते हुए भी भारतीय-संस्कृति के उपासक तथा उच्च कोटि के भगवद्भक्त थे। प्रस्तुत ग्रन्थ--कालाचांद गीता-के-रचयिता स्वर्गीय शिशिर कुमार घोष इसी श्रेणी के महानुभावों के शिरोमणि थे। वे इस नवयुग के एक प्रतिभाशाली लेखक हैं। देश

व समाज की सेवा में उनका प्रमुख स्थान था । उनकी सर्वोत्कृष्ट कृति "कालाचांद गीता" वास्तव में बङ्ग देश की कृष्ण भक्ति का श्रेष्ठतम प्रसाद है।

अनुवादक-महोदय ने इस ग्रन्थ-रत्न का अनुवाद कर हिन्दी भाषा-भाषियों का परम उपकार किया है । उन्होंने केवल सुन्दर अनुवाद ही नहीं किया वरन् स्थान-स्थान पर यथोचित टीका-टिप्पणी कर ग्रन्थ की गरिमा एवं उपयोगिता को और भी बढ़ा दिया है । धार्मिक तथा तात्त्विक विषयों में आपका स्वाध्याय गम्भीर है और प्रस्तुत ग्रन्थ के अवलोकन से आपकी भगवत भक्ति परिश्रम तथा विस्तृत ज्ञान का यथेष्ट परिचय मिलता है । मैं आशा करता हूं कि इसके अध्ययन से पाठकों को सुख व शान्ति प्राप्त होगी और उनके आध्यात्म-बोध का विकाश होगा।

२ गोविन्दवल्लभ पन्त

——00——

शुद्धि-पत्र
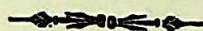
पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५	१०	पती	श्री
”	”	पा की	पी के
”	”	गयो	गह्यो
”	१२	न्यामोहाय	व्यामोहाय
१७	६	१	६
”	१३	आनंदलहर	आनंदलहरी
१८	१५	काई	कोई
१६	१३	ऽथिनी	ऽर्थिनी
५६	८	धुयें	छुय्यें
६४	१६	क्वचिदपपि	क्वचिदपि
७२	१७	परन्तु	परेऽन्तु
७६	१६	प्रवर्तते	प्रवर्तयेत्
८८	११	दयाल	दयालु
१०६	६	विज्ञाय	विष्याय
१०७	११	स्मारयन्ति	स्मारयन्ती

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०६	४	शैया	शय्या
११५	१८	श्रीमुपाद्दशा	श्रीमुषाद्दशा
११६	२०	शातनम्	शासनम्
१२२	२०	विरहवेदनं भृशम्	भृषम् विरहवेदनं
१६४	७	स्खलदंघ्रि	स्खलदंघ्रि
१६६	६	कान	नाक
१७४	११	अनिल	अलिन
"	१५	विरहियां	विहरणां
"	१६	संविदो	संविदोया
"	१६	स्मरं वीर यच्छति	त्तोभयन्तिहि
१८२	१४-१५	this	his
१६८	११	शुनु	शुधु
"	"	वय	नय
२०२	१३	उत्सगे	उत्संगे
२०३	१६	मव्यप	मव्यय
२१६	१६	कृष्णाय	कृष्णाया
२२०	१	अंघेरी	अधरों
"	२१	(भा० १०)	(भ० र० सि० पृ० १७०)
२२१	२०	(भा० १०-६३)	(भा० १०-६०)
२२२	८	नय	नयनं
२३२	१७	(भा० १०-३२.१२)	(भा० १०-३२.२२)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३४	१२	गद्गदया	गद्रुद्धया
२३५	२	प्रिय	प्रिये
„	१८	गतम्	गताम्
२३८	१८	यज्ञोपवीतं	यज्ञोपवीतं यागं
„	१६	भूर्लोकं महर्लोकं	भूर्लोकं
२४२	१४	(रतनाकर क० ६६१ भा० ७७)	(रतनाकर क० ६६१)
„	१५	रघू	रहू
„	१६	भिषेकम्	भिषेकम् (भा०५-१२-१२)
२४६	६	धीरा गीता	धीश गीता
„	७	चिन्तयदन्तो	चिन्तयन्तो
„	१७	४१	४०
२४६	३	यथा	यदा
२५३	१५	निवृत्ततर्पै	निवृत्ततर्षै
२५४	६	खिन	खिल
„	६	पाप	पाय
„	१०	धार	धाइ
२५७	१६	तमेव माद्यं	तमेव चाद्यं
२५६	६	तंडुलैः॥(३-१०-२१)	तंडुलैः
„	१०	भक्तोत्थायिनी	कात्यायनि
„	११	(४-१०-२१)	भा० १०-२१-३१४

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६०	१८	कंसारपिरपि	कंसारिरपि
२६१	८	सुख	मुख
२६४	१७	मयूर	मयूरी
२६५	३	जरे	जारे
,,	६	पूणिानी	फणिानी
२६६	९	का	को
२६७	९	गमा	गवां
,,	१०	सकता	सकती
२६८	५	विभङ्ग	त्रिभङ्ग
,,	१०	यौवन केसु रसाल	यौवन के सुरसाल
२७०	११	(भा०)	(भा० १०-२८-४)
२७४	८	भौम्य	भौज्य
,,	१४	विन्द	विन्दौ
२७५	१६	गातम	गौतम
३०२	१३	दवत	दैवत
३१७	२०	होऊ	दोऊ
३१८	७	सुखरूपा	सुखमूला
३२४	२२	नत्य	नृत्य
३२५	८	यया	क्रियया
,,	२१	....	सोरटश्च नटो डायन एवच
,,	२२	....	केदारो व्रजरंहस्यो

पृष्ठ.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३२६	६	......रूपः	कामरूपः
,,	२२	हिंडोलस्य	हिंडोलस्यापि
३२७	१	वस...	वसंतश्च
३३०	११	में	से
३३२	१२	ममेर	मनेर
,,	१९	ह ता	होता
,,	२२	ततोऽनिष्ट	ततोनिष्ट
३३३	२२	आवश्यकताने हो	आवश्यकता होने
३३४	३	निरमान	निरमाण
,,	१६	धरती	धरता
३३५	१३	छा	छाडे
,,	१५	हृ य	हृदय
,,	२२	क	एक
३४६	४	त्रिजभूते	त्रिजगते
३४७	२	असि	आसि
३४९	१२	ता	ना
३५०	१७	तपुवा	तवुवा
,,	१८	चलि	बलि
३५१	२२	ख	मुख
३५७	९	दयाछे	दियाछे
३५८	१५	करिते	कसिते

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६१	५	कलकि	कतकि
३७९	२१	आई	ओई
३८१	२	रसिकरे	रसिकेर
३८२	७	आताते	आमाते
३८३	१२	दिलशूल	शूल दिल
३९८	५	दर्शन	दंशन
४००	४	करजो	करजोडे
,,	१७	आग	याग
४०२	१७	अमि	अग्नि
,,	१८	धय	भय
४०५	२	अन्ध	धन्ध
४०६	११	हासना	बासना
४०८	४	नाहारते	ताहाते
४१२	१४	याश	या
४१३	७	तय	ताय
४१४	११	फावि	भावि
४१५	८	चन्दनामृत	चन्द्रामृत
४१८	६	मिलिरे	मिलिरेवे
,,	१४	गठे	उठे
,,	१७	जेये	चेयें
,,	१८	करे	कहे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४२४	६	कांके	कांखे
४२६	१४	प्रणे	प्राणे
४३१	८	यरि	परि
४३२	१	आङ्ग	अङ्ग
४३४	१	आखि	आंखि
,,	६	वाचे	वाजे
४३६	३	ख	रव
४३७	११	गल	गैल
,,	१३	रुजिछे	रुषिछे
४४०	१३	शिरिछे	फिरिछे
,,	२२	आनिल	जानिल
४४७	५	चवने	वचने
,,	१३	क्लेश	क्लेशे
४६०	१६	फूले	फले
४६३	२	मिलन प्रेम	मिलन (प्रेम)
,,	१०	हाराये	हारावे
४६४	११	तोर	तीर
४६५	१	पेम	प्रेम
,,	१६	पुनि	तुमि
४६७	१७	लुकाइ	लुकाइया
४६८	१२	णरिया	धरिया

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६८	१५	नाचिले	नाचिते
४७८	७	सुवर्पर	सुवर्णा
४७६	८	आमिलाम	आनिलाम
४८१	१६	चौपहि	चौंषहि
४८८	३	जनमल	जनम
४६३	३	स्वर	स्वरे

हरिः ओ३म्

अथ मङ्गलाचरणम्

अर्धोन्मीलितलोचनस्य पिबतः पर्याप्तमेकं स्तनं,
सद्यःप्रस्तुतदुग्धदिग्धमपरं हस्तेन संमार्जतः ।
मात्रा चाङ्गुलिलालितस्य चिबुके स्मेरायमाणो मुखे
विष्णोः क्षीरकणाम्बुधामधवला दन्तद्युतिः पातु वः ॥

(मु० र० भा०)

स्तनं धयन्तं जननीमुखाब्जं विलोक्य मन्दस्मितमुज्ज्वलाङ्गम् ।
स्पृशन्तमन्यं स्तनमंगुलीभिर्वन्दे यशोदाङ्कगतं मुकुन्दम् ॥

कुञ्चिताधरपुटेन पूरयन्वंशिकां प्रचलदंगुलीततिः ।
मोहयन्निखिलवामलोचनाः पातु कोऽपि नवनीरदच्छविः ॥

पुञ्जीभूतं प्रेम गोपाङ्गनानां, मूर्तीभूतं भागधेयं यदूनाम् ।
एकीभूतं गुप्तवित्तं श्रुतीनां श्यामीभूतं ब्रह्म मे संनिधत्ताम् ॥

अभिनवनवनीतस्निग्धमापीतदुग्धं
दधिकणपरिदिग्धं मुग्धमङ्गं मुरारेः।
दिशतु भुवनकृच्छ्रच्छेदितापिच्छगुच्छ-
च्छवि नवशिखिपिच्छालाञ्छितं वाञ्छितं वः॥

अंसालम्बितवामकुण्डलधरं मन्दोन्नतभ्रूलतं
किञ्चित्कुञ्चितकोमलाधरपुटं साचिप्रसारीक्षणम्।
आलोलांगुलिपल्लवैर्मुरलिकामापूरयन्तं मुदा
मूलं कल्पतरोस्त्रिभङ्गललितं ध्याये जगन्मोहनम्॥

दृष्टः क्वापि स केशवो व्रज-वधूमादाय कांचिद्गतः
सर्वा एव हि वञ्चिताः खलु वयं सोऽन्वेषणीयो यदि।
द्वे द्वे गच्छत इत्युदीर्य सहसा राधां गृहीत्वा करे
गोपीवेषधरो निकुञ्जभवनं प्राप्तो हरिः पातु वः॥

(सु० र० भा०)

जयतु श्रीकृष्णः

हरिः ॐ

प्रेमोपहार—

प्रिय भाई गोविन्द !

तुम्हारा प्रेम सर्वतोमुख है। मेरे समान व्यक्ति के लिये भी, जिसमें न विद्या, न बाहु-बल, न धन-बल और न कोई सद्गुण है, तुम्हारा प्रेम किसी से न्यून नहीं, अधिक ही है। तुम अच्छी प्रकार जानते हो कि विश्व-नियन्ता भगवान् प्रेममय हैं—प्रेम ही से इस विश्व-ब्रह्माण्ड की सृष्टि स्थिति और अवसान हैं। प्रेम प्रत्युपकार नहीं चाहता। पशु पक्षी भी प्रेमवश अपने शावकों को पालते हैं और उनसे किसी प्रकार का प्रत्युपकार नहीं चाहते हैं। श्री भगवान् अपने श्रीमुख से कहते हैं–"मिथो भजन्ति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमाहिते । न तत्र सौहृदं धर्म्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा।"

(१७-भा-१०-३२-४)

मैं अकिंचन हूं। मेरा सर्वस्व अल्पसंख्यक पुस्तकें हैं जो मेरे सुयोग्य भ्राताओं ने तथा कई अन्य प्रेमी सुहृदों ने मेरा गौरव

बढ़ाने तथा मेरा ज्ञान बढ़ाने के उद्देश्यसे मुझे प्रेमोपहार स्वरूप दी हुई हैं। परन्तु उनमें उचित रूप से अवगाहन न कर सकने के कारण उनमें मेरा ज्ञान एक कम्पोजिटर से विशेष नहीं है। परन्तु उनमें मेरा प्रेम अवश्य है, क्योंकि एक तो वे प्रेमोपहार हैं, दूसरे उनमें श्री भगवान की महिमा है। यदि उनकी दया दृष्टि हो जावेगी तो कोई साधु गुरु रूप में मुझे समझा देंगे। जैसे दक्षिण पर्य्यटन करते समय श्री महाप्रभु ने एक गीता-पाठी से पूछा था, "भाई, तुम्हें गीता-पाठ करते अश्रुपुलकादि क्यों हो रहे हैं? तुम इसे कितना समझते हो?" उसने नम्रता से कहा, "प्रभो, मैं तो कुछ भी नहीं समझता हूं, किन्तु इतना ही जानता हूं कि ये श्लोक श्रीभगवान् के मुख-कमल से निकले हुए हैं।"

भाई गोविन्द, श्रीभगवान् की तुम्हारे ऊपर कृपा-दृष्टि है, उसने तुमको निर्मल-बुद्धि, मेधा, धृति, तितिक्षा इत्यादि सद्गुण दे रक्खे हैं सही, परन्तु इनसे भी अधिक तुममें प्रेम की मात्रा है। पुस्तकें तो तुमने भांति-भांति की सहस्रों पढ़ रक्खी हैं, और पढ़ते ही रहते हो और पढ़ोगे, परन्तु तुम्हारे प्रेमप्लावित स्वभाव को देख, कर मुझसे इस छोटी-सी पुस्तिका के अनुवाद को, जो एक प्रेममय अद्‌भुत ग्रन्थ है, बिना तुम्हें प्रेमोपहार दिये नहीं रहा जाता है—अतः आशीर्वाद सहित उत्सर्ग है।

श्रीकृष्ण-भवन, नैनीताल
१५ फरवरी ३३

तुम्हारा प्यारा दाज्यू
श्रीकृष्ण

———

हरिः ओ३म्

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं, सत्यस्य योनिं निहितञ्च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं, सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥ (भा०)
जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्,
तेने ब्रह्महृदा य आदि कवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा,
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥१॥ (भा-१-१)

जन्मेति:—

सत्य—अत्रेत्थ व्यवस्था । कृतयुगे साङ्गश्चतुष्पाद्धर्म्मः । कृताऽदिषु क्रमेण पादशो हीनत्वात् कलौ धर्म्मपादः सत्यमेवाशिष्यते ॥

पादास्तु—(१) तपः (२) शौचं (३) दया (४) सत्यमिति पादा विभोर्नृपस्येति । इदानीं धर्म्मपादस्ते सत्यं निर्वर्तयेद्यतः ॥ इति चात्रैव वक्ष्यति । मुख्यं सत्यं भगवता निर्णीतम् । सत्यञ्च समदर्शनमिति । समशब्दो ब्रह्मवचनः । निर्दोषं हि समं ब्रह्मेति च भगवद्वचनात् । तस्य चातिदुष्करत्वात् तत्साधनत्वेन वेदविद्भिः सत्यं परिभाषितम् । यथा हि पद्मे । दृष्टानुभूतमर्थञ्चेदिष्टानिष्टं न गूहते । यथाभूतप्रवादो हीत्येतत् सत्यस्य लक्षणम् । तथा सत्यप्रति-

पादकत्वात् सत्यविषयत्वात् सत्यप्रापकत्वात् च नामसङ्कीर्तनादि भगवद्भजनमेव सत्यम् । अतो द्वापरान्ते पुराणविभागात् कलियुगोत्पन्नानामेवोपकारकत्वं मुख्यमभिप्रेत्य सत्यप्रधानत्व-मेवास्य पुराणस्य युक्तम् । अन्येषां ज्ञानादीनां युगान्तरीयाधिकार-विषयत्वेनात्राप्युदाहरणत्वेनेदानीन्तनानां प्रायशोऽनधिकारित्वा-च्चानुवादरूपत्वं संगच्छते तथा ह्यत्रैव प्रतिज्ञायामनन्तरपद्ये, धर्म्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमः इत्यादि मुक्तिमुपैति जन्तुः । कलौ युगे कल्मषमानसानामन्यत्र खलु नाधिकारः । हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम् । कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परिव्रजेत् इत्यादि । तथाच मनुः-सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् । प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्म्मः सनातनः इत्यादि प्रमाणानि सन्ति । तेनेत्थं व्याख्या सम्भवति । यथा

(१) परं = सर्व्वधर्म्मोत्कृष्टम् ।
(२) सत्यं = सत्यात्मकं धर्म्मम्
(३) धीमहि = ध्यायेम

यथा च गायत्रीभाष्ये-नास्ति सत्यात्परो धर्म्मो नानृतात् पातकं परम् । न गायत्र्याः परो मन्त्रो न देवः केशवात् परः इत्यादि । तत्रैवोभयविधसत्यात्मके धर्म्मेऽस्माकं चित्तवृत्तिरस्तु ॥ सत्यस्य समानाधिकरणविशेषणम् ।

(४) स्वेन=स्वकीयेन

(५) धाम्ना=स्वरूपेण, प्रभावेन वा

(६) सदा=कालत्रयेपि

(७) निरस्तकुहकम्=निरस्तः कुहको माया यस्मिन् येन वा तत् ।
एवञ्च सप्तभिर्व्यधिकरणविशेषणैः सत्यस्य परमत्वं स्फुटयति ॥

(८) यतः=यस्य सत्यस्य

(९) अन्वयात्=सम्भवात्

(१०) यस्य=श्री वासुदेवस्यापि

(११) जन्मादि=श्रीमूर्तिप्रादुर्भावो मनुष्यनाट्यञ्च (भवतीति शेषः) अनेन भगवद्वशीकरणत्वं भगवत्प्रापकत्वञ्चास्य सत्यस्योक्तम् । वक्ष्यति च,सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यमित्यत्र च समुच्चये ॥ पुनः

(१२) स्वराट्=स्वेन स्वयमेव राजते—नतु द्रव्यदेशादिसाधनैः ।
अनेन पूर्णत्वं सुसेव्यत्वं चोक्तम् ॥ पुनः

(१३) यः=सत्यात्मको धर्म्मः

(१४) आदिकवये=स्वनिपुणाय

(१५) ब्रह्महृदा=वेदरहस्येन उपासनया

(१६) आदि=सर्व्वकारणकारणं ब्रह्म

(१७) तेने=प्रकाशितवान स्वनिष्ठेभ्यः ॥ एतेन भूतनिर्देशेनाऽस्य प्रमाणसिद्धत्वमुक्तम् । नास्त्यत्र प्रमाणान्तरापेक्षा ऐतिह्यस्यापि प्रमाणत्वात् । कथं भूतं, आदि ।

(१८ यत्=आदि प्रति

(१९) सूरयः=विवेकिनः

(२०) मुह्यन्ति=मोहं प्राप्नुवन्ति

(२१) इतरतः=इतरेषां सकामानाम्

(२२) च=अपि

(२३ अर्थेषु=प्रयोजनेषु, धर्म्मार्थकामेषु

(२४) अभिज्ञः=तद्दातृत्वे निपुणः। अनेन चतुर्वर्गप्रदत्वेन सर्वोपकारकत्वं सर्वसेव्यत्वञ्च दर्शितम। पुनः

(२५) यत्र=यस्मिन् सत्ये सति

(२६) त्रिसर्गः=त्रयाणां तपःशौचदमानां सर्गो विस्तारः

(२७) अमृषा=सत्यम्।

(२८) यथा = सत्ये सत्येव अविनिमयो भवति

(२९) तेजोवारिमृदां सर्गः=विस्तारः अविनिमयः } व्यावहारिकसत्यतापन्नो भवति तथेति दृष्टान्तः ॥ सत्याभावे तप आदीनां दम्भहेतुत्वे नार्थप्रापकत्वात्। एवं यत्तयोर्नित्यसम्बन्धत्वेन तं सत्यात्मकं धर्म्मम् ॥

(धीमहीति योज्यम्) (गूढार्थदीपिका)

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्,
तेने ब्रह्महृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गो मृषा,
धाम्ना स्वेन सदानिरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥१॥(भा० १.१)

(अनेन पद्येन सर्वेषां भगवद्भगवदीयानां पदार्थानां स्वरूपं नमस्कुर्वन् वक्तव्यत्वेन च हृदि ध्यायन् मङ्गलमाचरति)

जन्मेति–

(१) यतः=याभ्यां देवकीवसुदेवाभ्यां ।

(२) यत्र=येषु च स्थानेषु, मथुरागोकुलवृन्दावनद्वारकादि-संज्ञेषु—

(३) अस्य=सर्वकार्यकारणात्मकस्याखण्डस्वरूपस्य । यद्वा 'अ'कारो वासुदेवः स्यात्, श्रीवासुदेवस्य वस्तुतो जन्मादिशून्यस्यापि ।

(४) जन्मादि=जन्म+आदि (अभूदिति शेषः) आदिशब्देन वृद्धि-स्थितिबाल्यकौमारादिस्वर्गारोहणान्ता लीला गृह्यते ।

(५) अनु
(६) य.च.
(७) यत्
(८) अयात्
} अनुयच्चयज्जन्मान्तरं यश्च श्रीवासुदेवो यन्मिथुनं नन्दयशोदारूपम् । अयात्=अगमत् तत्र च यासु लीलासु ।

(९) स्वेन } तत्तदधिकारिषु, अधिकारतारतम्यतः क्वचिन्निर्गुणसच्चिदानन्दसन्दोहरूपेण, क्वचित् कोटि-कन्दर्पदर्पपरिमर्दनसुन्दरेण ।

(१०) धाम्ना=श्रीविग्रहेण ।

(११) ब्रह्म=ब्रह्मानन्दम् ।

(१२) तेने=प्रकाशितवान् तच्च ताश्च ।

(१३) धीमिहीतिध्यायेम । सर्वेषां यच्छब्दानां लिङ्गसमन्वयेन तदा सम्बन्धः ।। आनन्दं विशिनष्टि

(१४) सदानिरस्तकुहकम्=सतां कृष्णक्रीड़ाकथादिपराणाम् । आ सम्यङ् निरस्तं कुहकम् अज्ञानं येन तत् ।

(१५) सत्यम्=तथा सत्यविषयत्वात्, सत्यप्रापकत्वाच्च ।

(१६) परं=सर्वसुखाश्रयम् । यदपेक्षयान्यस्य सुखस्य समत्वमधिकत्वञ्च नास्तीत्यर्थः । अतएव तदा तेषां ।

(१७) त्रिसर्गः=त्रिविधो भूतेन्द्रियदेवतारूपः सर्गः ।

(१८) मृषा=मिथ्या अभूत् । देहेन्द्रियाभ्यासाभावेन सदा समाहितत्वात् केषांचित्तु (अमृषा) सत्यं वाऽभूत् ।

(१९) यः=श्रीकृष्णः

(२०) इतरेषां=बहिर्मुखाणां पूतनादीनामपि ।

(२१) अर्थेषु=यथाधिकारभोगमोक्षलक्षणेषु ।

(२२) अभिज्ञः=निपुणः स्वयं सम्पादक इत्यनेन राजसतामसदैत्यादिभूभारक्षपणलीला, परमदयालुता च निरूपिता । पुनः

(२३) स्वराट्=स्वाञ्च स्वे च स्वे एकशेषः । तैः स्वैः वत्सवत्सपालगोपालयादवकौरवादिभिः, गोगोपीयादवीकौरवीप्रभृतिभिश्च कौमाराद्यवस्थासु यथोपयोगं यथावसरं राजते इति स्वराट् । तेन सर्वानुग्राहकत्वं सर्वोपास्यत्वं च स्वस्य दर्शितम् । विशेषतो ब्रह्ममोहनलीलामाह ।

(२४) कवये=कविं ब्रह्माणमानन्दयितुम् ॥

(२५) आदि=आदिस्वरूपं प्रपञ्चाञ्चितं प्रपञ्चवञ्चितञ्च ।

(२६) तेने=अदर्शयत् । अनेन सर्वं विष्णुमयं जगत्-नेह नानास्ति किञ्चनेत्यादिश्रुत्यर्थो दर्शितः। ननु किमाशय एवमतिरहस्यं स्वरूपं अदर्शयत् ? तमाशयमाह ।

(२७) मुह्यन्ति सूरयः } इतिसर्वं खल्विदं ब्रह्मेत्यनया श्रुत्या प्रत्यक्षप्रमाण-सिद्धस्य प्रपञ्चस्य बाधेन सर्वत्राखण्डब्रह्मज्ञान-स्यातिदुर्घटत्वात् सूरयः विद्वांसोऽपि मुह्यन्ति। तादृशदर्शने असम्भावनाविपरीतभावनादिभि-र्व्याकुला भवन्ति। अनया लीलया श्रुत्युदाहरण-रूपया तु अमुह्यन्ति इत्यव्ययम् निषेधे। (लिङर्थो लट् लकारश्छान्दसः।) तेन सूरयो न मुह्येयु-रीति सम्भावयितुं तथा अदर्शयदिति। तदपि

(२८) हृदा=मनसा, सङ्कल्पमात्रेणैव, न बहुप्रयत्नैरिति।

विशेषतो रासलीलामाह।

(२९) तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो जातः } यत्र रासलीलायामनन्तानन्तमूर्तेः स्वस्य तथा श्रीमतीनां गोपानाञ्च चम-त्कृतकन्दर्पकदम्बरुचिरतरमरीचिचय-चुम्बितचारुमुखचन्द्रवृन्दचन्द्रिका-सुषमाभिस्तेजसां सकलकलाधरादीनां ज्योतिर्गणानां प्रकाशकानामपि प्रकाश्यभावं तेने। तेन (न यत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोयमग्निः, तमेव भान्तमनु-भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति इत्यादि) श्रुत्यर्थो दर्शितः॥

तथा निजवेणुकलरवेण वारिमृदां वारिणो यमुनाजलस्य

सद्य स्वतःप्रसरणस्वभावस्य स्तब्धत्वेन मृद्भावत्वं कठिनत्वं निश्चलत्वं, तथा मृदां मृद्भेदानां गोवर्द्धनतरुलतानां स्थावराणा-मचेतसामपि द्रवपुलकादिना जङ्गमचेतनधर्म्मत्वञ्च तेने ॥

अनेन कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुंसमर्थत्वस्येश्वरत्वस्य च सूचनेन स्वभक्तानां सर्वथा सर्वाभीष्टसाधकत्वं व्यञ्जितम् ॥

(भा० गूढार्थदीपिका, बनारस)

भूमिका ।

यह ग्रन्थ प्रायः सात वर्ष हुए लिखा गया था। ग्रन्थ के समाप्त होने पर, ग्रन्थकार के निज लोग तथा मर्मीजनों ने इसको पढ़ा और मोहित हुए। किसी-किसी ने यह भी कहा कि जगत में इस प्रकार का ग्रन्थ दुर्लभ है। सुतरां इसका मुद्रित होकर प्रकाश होना उचित है। एवं प्रकाश होने पर जीवों का महत् उपकार होगा। किन्तु ग्रन्थकार इसके प्रकाश करने को सहमत न हुए। उनके मन का भाव यह था कि ग्रन्थ में जो लिखा है उसे सर्वसाधारण के बीच प्रकाश करना उचित नहीं है।

इस ग्रन्थ के लिखने के कई वर्ष पीछे श्री अमियनिमाई चरित्र प्रकाशित हुआ। और सब सज्जनों ने इसको बड़े प्रेम से पढ़ा। जिन्होंने श्री अमियनिमाई चरित्र को पढ़ा, उनके पक्ष में श्री कालाचांद-तत्व दुर्बोध्य नहीं कहा जा सकता, यही समझ कर अब इस ग्रन्थ के प्रकाशित करने की अनुमति मुझे मिली है।

कालाचांद गीता की भित्ति-भूमि यह है। यह जड़-जगत्

श्री भगवान् का प्रकाश है। जड़ जगत् को देखकर ग्रन्थकार ने श्री भगवान् के स्वरूप को निर्देशन करने की चेष्टा की। इस ग्रन्थ में तर्क या विचार नहीं हैं। ग्रन्थकार ने श्री भगवान् का स्वरूप, उसके साथ जीव का, और जीव के सहित जीव का क्या सम्बन्ध है, उसको इस जड़-जगत को साक्षी मानकर वर्णन किया है। श्री भगवान् का स्वरूप कैसा चित्ताकर्षक, जीव के सहित श्री भगवान् का और जीव के सहित जीव का कैसा मधुर सम्बन्ध है, यह ग्रन्थ में किस प्रकार वर्णित हुआ है, उसके पाठ करने से अपने-आप ही नयनों से आनन्द जल टपकने लगता है और जगत् सुखमय प्रतीत होने लगता है।

यह ग्रन्थ मेरे अग्रज महाशय का प्रणीत है, सुतरां मैं इस ग्रन्थ का निरपेक्ष विचारक नहीं हो सकता हूं। मेरा विश्वास है कि इस ग्रन्थ के पाठ करनेवाले मेरे ही समान इससे उपकार पा सकते हैं।

ग्रन्थकार मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं, एवं उनके संग मेरा रात-दिन का वास है, इस कारण इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में मैं कितनी ही आकस्मिक घटनाओं को जानता हूं। उनका इस ग्रन्थ के उपलक्ष में मुझे प्रकाश करना उचित है।

श्री कालाचांद गीता का जन्म-स्थान देवघर, वैद्यनाथ है। एक दिन ग्रन्थकार ने देवघर के किसी पहाड़ के ऊपर एक अपूर्व नीले वर्ण का वन-फूल देखा, जिसको देखते ही उसे आश्चर्य हुआ, और सोचने लगा कि जिसने यह फूल बनाया है वह केवल

कारीगर ही नहीं है, निश्चय करके वह रसिक भी है। कारण— कि पहाड़ में इतना स्थान होने पर भी इस सुन्दर फूल को पीछे कोई देख न लेवे, समझ कर जैसे छिपा कर रख छोड़ा है।

यह सोच कर क्षोभ हुआ कि, इस कारीगरी को देखने की उत्कण्ठा किसको न होगी ? उसी समय उसने अपने मन-ही-मन दो चरण उसके लिये निर्माण किये।

एई बन फूल, सुन्दर अतुल, थुइलेन तृण माझे।
सकल लोक जाय, नाहि देखे ताय, विव्रत संसार काजे ॥

श्री कालाचांद गीता की यही प्रथम दो पंक्ति लिखी गई। यह बृहद् ग्रन्थाकार में लिखा जायगा यह विचार उस समय ग्रन्थकार के मन में उदय नहीं हुआ था। कुछ समय उपरांत उस ही देवघर में एक दिन बड़े प्रातःकाल ग्रन्थकार ने देखा कि एक वृक्ष की डाल में बैठकर एक पेचक (उल्लू) और पेचकी प्रीति-सम्भाषण कर रहे हैं। उल्लू पक्षी का मुख जैसा हास्यजनक होता है उसे सब ही जानते हैं। फिर जैसी उसकी आंखें वैसी ही उसकी चोंच। उल्लू प्रिया के सन्मुख जाकर नाना प्रकार विविध भाव प्रकट करने लगा। गोल-गोल बड़ी-बड़ी आंखें तान कर मुख को घुमा-घुमाकर अपनी भाषा में प्रेम की बातें करने लगा। उल्लू की प्रिया इस पर अति मानिनी होकर मुख फेरकर दूसरी जगह जा बैठी। उस समय उल्लू घूम कर फिर सन्मुख आकर बैठा और उसी प्रकार मुख घुमा-घुमाकर और भी अधिकतर प्रिय सम्भाषण करने लगा। तब पेचकी (उल्लू की प्रिया) ने भी किञ्चित प्रसन्न

होकर उस ही प्रकार सुस्वर से, एवं मुख भङ्गी करके, न जाने उस का क्या उत्तर दिया।* यह देखकर ग्रन्थकार को एक पुरानी कविता का स्मरण हुआ— यथा 'पैंचा देखे पैंची गडे'। पैंचा पैंचीकी भाषा का ग्रामवासी लोग इस प्रकार अनुवाद करते हैं, यथा—पैंचा पैंची से कहता है—'सुन्दरी, समझी, समझी, समझी ?' और पैंची उत्तर देती है, "हे सुन्दर, समझ गई, समझ गई, समझ गई।" ग्रन्थकार इस सब को स्मरण करके और सन्मुख यह काण्ड देखकर हंसी न रोक सका। उसी समय उसके मन में एक क्षोभ उदय हुआ। उसने समझा कि उसके सन्मुख जैसा अद्भुत राग-रङ्ग हुआ किसी और ने नहीं देखा। फिर अकस्मात् उसी समय मन में उदय हुआ, क्यों नहीं ? और भी तो एक पेचक पेचकी के काण्ड को देखकर हंस रहा है। वह कौन ? श्री भगवान। उस ही मुहूर्त्त इस चित्तरञ्जक ज्ञान का उसके हृदय में स्फुरण हुआ कि जिसने इस पेचक पेचकी का प्रीति-सम्भाषण प्रभृति हास्यकर व्यापार सृष्ट किया. है वह अवश्य ही अति-कौतुक-प्रिय, रसिक और मधुरप्रकृति होगा।

उपरोक्त वन-फूल और पेचक-पेचकी के रङ्ग को लेकर ग्रन्थ-कार ने "रसरङ्गिनी" अर्थात् प्रथम सखी की कहानी लिखी।

---

* प्रतिपदप्रतिकूलानुग्रहव्यग्रमूर्त्तौ,

बहुविरचितनानाचाटुकारप्रकारौ, ।

नवसुरतविलासौत्सुक्यगूढप्रकाशो

स्मरनिभृतनिकुञ्जे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥

इसी प्रकार खण्ड-खण्ड करके और अल्प-अल्प करके यह ग्रन्थ लिखा गया। उस समय भी ग्रन्थकार को यह न सूझी थी कि इस समस्त लेख का एक सामञ्जस्य हो गया है और क्रम-क्रम से एक ग्रन्थ लिखा गया है।

ग्रन्थकार का समय प्रत्यह बहुत काल तक भजन में व्यतीत होता था। इस बीच उसको कभी-कभी बाह्य ज्ञान भी नहीं रहता था। इसी अवस्था में अधिकांश कालाचांद लिखा गया था। इसी प्रकार वह थोड़ा-थोड़ा लिखता था। परन्तु इसमें जो परस्पर मेल और सामञ्जस्य है और वह इस प्रकार अज्ञातसार क्रम-क्रम से एक ग्रन्थ लिख रहा है, इसको उसने पहले नहीं जाना। जब ग्रन्थ समाप्त हुआ तो देखा गया कि इसका आपादमस्तक मेल मिला हुआ है।

एक तत्व के संग दूसरे तत्व का विरोध नहीं है, प्रत्युत एक तत्व दूसरे तत्व को सहायता करते आ रहे हैं।

ग्रन्थकार ने ग्रन्थ के सभी स्थानों में श्री भगवान को अति उपादेय करके अंकित किया है। ग्रन्थ पाठ करते-करते यह जाना जावेगा—श्री भगवान् अति मधुर प्रकृति, अति ही आत्मजन् और उसका सर्वाङ्ग प्रेम से बना हुआ है। वह रसिक है, कौतुकप्रिय है तथा चञ्चल है। वह सर्वदा ही निकट है, तथा ओट में छिपा हुआ है, जो कुछ चेष्टा करने पर पकड़ा भी जा सकता है। श्री भगवान के इस रूप को जो हृदय में अङ्कित कर सकते हैं, उनके समस्त दुख दूर होवेंगे और वे आनन्दसागर में मग्न होवेंगे।

तत्वज्ञ रसिक पाठक लोग किंचित मनोयोगपूर्वक ग्रन्थ को पाठ करते ही जान सकेंगे कि जैसे श्रीमद् गीता में भागवत उदय और श्री भागवत से श्री गौराङ्ग का उदय हुआ, उसी प्रकार श्री गौराङ्ग लीला से श्री कालाचांद गीता का उदय हुआ। ग्रन्थकार का सर्वस्व धन जो (श्री गौराङ्ग) श्री कालाचांद है उसको वह खूब समझता है। इस ग्रन्थ के बीच जहाँ कहीं भी सुविधा मिली वहीं श्री गौराङ्ग के प्रति उसने अपनी प्रगाढ़ कृतज्ञता दर्शित करने में त्रुटि नहीं की है। इस ग्रन्थ का नाम श्री कालाचांद गीता हुआ है। यह भी ठीक ही हुआ है। ज्ञान-रत्न का जो आकर गीता, उसके नायक श्री हरि इस ग्रन्थ के नायक श्री कालाचांद या रसिकशेखर या सजलनयन या कृष्ण। ये सब ही निश्चय श्री हरि हैं तभी श्रीमद्भागवद्गीता में श्रीहरि का ऐश्वर्य अंश एवं श्री कालाचांद गीता में उसका माधुर्य अंश वर्णित हुआ है। श्री हरि बाह्य से ऐश्वर्य और अन्तर में माधुर्य और श्री काला चांद बाह्य से माधुर्य और अन्तर में ऐश्वर्य हैं। श्री गीता जिस पद्धति से लिखी गई है यह गीता भी उस ही पद्धति से लिखी गई है। गीता में तर्क और विचार नहीं हैं, इसमें भी नहीं हैं। ग्रन्थ पढ़ने से बोध होगा कि ग्रन्थकार जैसा देखता है वैसा ही सरल भाव से वर्णन करता है। फिर उसके तत्व में भूल पकड़ना तो एक ओर रहा, यहां तक कि उसके साथ विचार करने को भी किसी की रुचि नहीं होती। ग्रन्थ का पाठ करते-करते हृदय में श्री भगवान की जो मधुर मूर्ति का उदय होता है

उसको वृथा तर्क द्वारा मलिन वा नष्ट करने को पाठक की रुचि नहीं होगी।

यद्यपि ग्रन्थ अति सुगम भाषा में लिखा हुआ है, तो भी पाठकों के सुभीते के निमित्त किसी-किसी चरण की टीका दी हुई है।

किसी किसी चरण में "बलरामदास" कहा गया है। ग्रन्थकार का गुरुदत्त नाम "बलरामदास" है।

मोतीलाल घोष
प्रकाशक

१३०२ साल बँगला]

---

*भूमिका लेखक श्रीयुत मोतीलाल घोष ग्रन्थकार के सहोदर भ्राता हैं। अतः ग्रन्थकार की यथोचित प्रशंसा करने में उनका संकोच स्वाभाविक एवं शीलोचित है। अतएव हम यहां पर कुछ महानुभावों की ग्रंथकार के प्रति श्रद्धाञ्जलि को उद्धृत करना उल्लेखनीय समझते हैं, जिससे पाठकों को ज्ञात होगा कि श्री शिशिरकुमार घोष वास्तव में किस उच्च कोटि के लेखक और भक्ति-परायण थे।

अनुवादक—

गीता-शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने उनकी षष्ठ जयन्ती पर भाषण देते हुये कहा था—

"मैंने उनके चरणों में बैठकर बहुत कुछ सीखा है। मैं उन्हें पितृ-तुल्य पूजनीय समझता था और मैं यह कह सकता हूं कि उनका भी मेरे प्रति वात्सल्य-प्रेम था।"

कलकत्ता हाई कोर्ट के ख्यातनामा न्यायाधीश सर गुरुदास बैनर्जी ने एक भाषण में कहा था—

"मैंने अनेक प्रतिष्ठित अंग्रेज पदाधिकारियों से वार्तालाप करते हुए कहा है कि यह दुःख की बात है कि आप बंगला नहीं जानते। अन्यथा मैं आप से शिशिरकुमार घोष की 'अमियनिमाई चरित्र', तथा उनकी प्रतिभाशाली पुस्तक 'काला चांद गीता' पढ़ने का अनुरोध करता। तथापि आप उनकी अंग्रेजी रचनाओं को पढ़ेंगे तो आपको ज्ञान होगा कि उनकी भाषा कितनी सरल तथा हृदय-ग्राहिणी है। जब मैंने 'कालाचांद गीता' को पढ़ा, उस समय मैं शारीरिक व्यथा से पीड़ित था। पुस्तक प्रारम्भ करते ही मन्त्रमुग्ध हो गया और सारी पीड़ा भूल गया। रात्रि में बहुत देर तक, जब तक कि पुस्तक समाप्त न हो गई, उसे पढ़ता रहा। उनकी रचनायें मधुर तथा विचारों को उन्नत करने वाली हैं। कलकत्ता हाईकोर्ट के अवधिप्राप्त प्रधान न्यायाधीश सर रमेशचन्द्र मित्र और मैंने एक बार मधुपुर में उनसे स्वरचित एक कीर्त्तन गाने के लिए प्रार्थना की। समस्त श्रोता मण्डली उनके स्वर्गीय गीत व कृतियों को सुनकर मुग्ध व स्तब्ध हो गई।

Lokmanya Bal Gangadhar Tilak as President at the 6th anniversary meeting on 29th Sept. 1917. Calcutta, said, "I have learnt many lessons at his feet. I revered him as my father and I venture again to say that he in return loved me as his son."

Sir Gurudas Bannerjee, Judge Calcutta High Court, referring to Shishir Kumar Ghose said, "I have often discussed with Englishmen holding high positions regarding his writings and I said to them, 'It is a pity you do not know Bengali, otherwise I would have asked you to read his Bengali works, the Amija Nimai Charit and that wonderful book Kala Chand Gita. Nevertheless read his English works and you will find how sweet and fascinating is his language". When I read the Kalachand Gita, I was suffering from a physical ailment. No sooner I began to read them I was spell-bound, I forgot all my pains and continued till the book was finished late in the night. His words are sweet and heart-elevating. At Madhupur Sir Ramesh Chandra Mittra Retired Chief Justice of the Calcutta High Court and I requested Shishir Kumar to sing a Kirtån Git. The whole audience was enraptured and captivated by his celestial song and divine composition.

भक्ति

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्म्माद्यनाहृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥ ११ ॥ ह० भ० र०सि०।

द्रवीभावपूर्विका मनसो भगवदाकारतारूपा सविकल्पवृत्तिर्भक्तिः॥
(अद्वैतसिद्धिकार मधुसूदन सरस्वती)

उपायपूर्वकं भगवति मनःस्थिरीकरणं भक्तिः
(भ्रमरगीत-टीका गूढार्थदीपिका)

ईश्वर-प्राप्ति का एकमात्र उपाय

मम प्राप्त्यै सदा भक्ता आश्रयन्ति दिवौकसः।
भक्तिं भावमयीं योगक्रियात्मकामपि ध्रुवम्॥२५॥
वैध्या रागात्मकीया वै भक्तेरधिगमो मतः।
वैधी सा साधनालभ्या श्रीगुरोरुपदेशतः॥२६॥
यदा चित्तलयं कर्तुमभ्यासो मयि जायते।
रागात्मिकायां भक्तौ हि तदा मज्जति सत्वरम्॥२७॥
उन्मज्जति मुहुस्तद्वत् भाग्यवान् साधकोत्तमः।
भक्तिरेषा परा भक्तेर्जननी वर्तते सुराः॥२८॥
उपास्ते प्राणरूपाभिर्भक्तिर्हि मामकी सुराः।
क्रियायोगः शरीरं स्याच्चतुर्धा संप्रकीर्तितः॥२९॥
नाम्ना मन्त्रहठावेतौ लयराजौ तथैव च।
अधिकारस्य भेदेन विज्ञेयास्ते सुरोत्तमाः॥३०॥

—विष्णुगीता।

सब साधनों की प्राण-रूपा भक्ति ही है। यथाः—

मद्भक्तिरस्ति योगस्य प्राणभूता यतस्त्वतः।
वैयर्थ्यापत्तिमादत्ते नूनं मद्भक्तिमन्तरा ॥ १२६ ॥ (श-गा० ५२)

भक्ति विना वसनोहे वीणयाने वा मृदंगनादाने।
कन्यादान फलाते पाविल कैसा मृदंगनादाने ॥

—तुकाराम (मराठी)

God can not be pleased by कीर्तन without *Bhakti* (devotion & Sacrifice), nor merit can be had of the gift of a daughter by giving away an earthen toy.

प्रेम ही भक्ति है। जो बिना भगवत्-कृपा कदाचित् नहीं हो सकती।

विरक्तिः

अपर वैराग्यं—

इष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥ १५

अपरवैराग्यं तावच्चतुर्विधम्:—

(१) यतमानसंज्ञा	(२) व्यतिरेकसंज्ञा	(३) एकेन्द्रियसंज्ञा	(४) वशीकारसंज्ञा
ज्ञानपूर्वकं वैराग्यसाधनानां दोषदर्शनादीना-मनुष्ठानं यत-मानसंज्ञात्वेन परिभाषिता वितृ-ष्णा प्रथमा भूमिका।	जितान्येता-नि इन्द्रियाणि, एतानि च जेत-व्यानि (इति) व्यतिरेकावधारण-योग्यता द्वितीया भूमिका।	बाह्येन्द्रिय-विषयेषु रूपादिषु रागद्वेषादित्तये सति एतस्मिन्नेव मनसि मानादि-विषयकरागद्वे-षाद्यपसारणं तृतीया भूमिका।	प्रकृष्टविषय-सान्निध्येपि रा-गादिवासनानु-द्बोधश्चतुर्थी भूमिका वशी-कारसंज्ञा वितृ-ष्णेति ॥१५॥

(पा० यो० सू० पा० १)

परवैराग्य—

तत्परं पुरुषाख्यातेर्गुण-
वैतृष्ण्यम् ॥ १६ ॥

त्यज धर्म्मधर्म्मञ्च
तथा सत्यानृते त्यज॥
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा
येन त्यजसि तं त्यज ॥
त्यज धर्म्मं सङ्कल्पा-
दधर्म्मञ्चाप्यलिप्सया ॥
उभे सत्यानृते बुद्ध्या
बुद्धिं परमनिश्चयात् ॥

रजस्तमश्च सत्वेन
सत्वं चानशनेनच। सर्व्वे विधि-
निषेधाः स्यु रेतयोरेवकिङ्कराः॥

नासम्यग्ज्ञाने नाविद्यानिवृत्तौ च
तैनेव दोषदर्शनेन तत्राप्युपेक्षा-
रूपं वैराग्यमितिभावः ॥

विरक्तिर्दोषदर्शनात्
वैराग्याद्दोषदर्शनम् } इतिस्मृतेः

स्कन्दे

एतेन ह्यद्भुता व्याध ! तव हिंसादयो गुणाः ।
हरिभक्तौ प्रवृत्ता ये न ते स्युः परतापिनः ॥

तत्रैव

अन्तःशुद्धि-र्बहिःशुद्धिस्तपःशान्त्यादयस्तथा ।
अमी गुणाः प्रपद्यन्ते हरिसेवाऽभिकामिनः ॥

(भ० र० सिं०)

निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते ।
प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः ॥
मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते ।
प्रोक्तेन लक्षणेनैव भक्तेरधिकृतस्य च ॥५३॥
अङ्गत्वे सुनिरस्तेपि नित्यादखिलकर्म्मणाम् ।
ज्ञानस्याध्यात्मिकस्यापि वैराग्यस्य च फल्गुनः ॥५४॥
विवेकादीन्यतोऽमीषामपि नाङ्गत्वमुच्यते ।
कृष्णोन्मुखं स्वयं यान्ति यमाः शौचादयस्तथा ॥५७॥

(भ० र० सिं)

संसारसंसृतावस्यां फेनोस्मिन्सर्गसागरे
कायवल्याम्भसि ब्रह्मञ्जीवितं मे न रोचते
(राम) यो० वा० १४ स० ६ श्लोक
एकाकी निस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ।

कदा शम्भो भविष्यामि कर्म्मनिर्मूलनक्षमः

॥ कु० पृ० ६४ ॥

(यतमान)

दाता को महीप मानधाता औ दिलीप ऐसे ।
जा के जस अजहूं लौं दीप दीप छाये हैं ।
बाली ऐसे बलवान कौन भे जहान बीच ।
रावन समान को प्रतापी जग जाये हैं ॥
बान की कलान में सुजान द्रोन पारथ से ।
जा के गुन दीनद्याल भारत में गाये हैं ।
कैसे कैसे सूर रचे चातुरै विरंच
पर फेरि चकचूर करि धूर में मिलाये हैं ॥

रावन से वीर घन सावन लौं प्रभा जासु
झलकै किरीट विज्जु अलकै की घेरी में ।
जिनकी गिरा गंभीर गरज सुने ते
धीर नाचत ही किन्नरी मयूरी चहुं फेरी में ॥
कैसी रन कला रहे दीनद्याल वे प्रवीन
बरषैं अपार सर धार एक बेरी में ।
ऐसे जग व्योम बीच जड़िके कई विशाल
गये उड़िके कराल काल की अंधेरी में ॥ २६ ॥

दीनदयाल गिरि ।

वनिकै भूपाल जे विशाल सुखपाल चढ़े
चले दुहुं ओर सारे नौमति के बोलते
बढ़े जाय यों नकीव करि के पुकार कहै
छरीदार हैं उदार दौरें गति लोलते ॥
नीके रमनी के सनमान भरे उमंग रंग
महलान बीच रहे जे कलोलते ॥
तिन्हें दीनदयाल अहो देखे कछु गये काल
दीन ह्वै गलीन में मलीन भये डोलते ॥

दीनदयालगिरी ॥

॥ ओ३म् ॥

श्रीगणेशाय नमः

रसिक-चन्द्रिका

अर्थात्

कालाचांद-गीता

विरक्ति

एक पुरुष वन में बैठ रहा है और उसकी स्त्री उसको समझा रही है। वह कह रही है, "हे प्राणनाथ, घर चलिये, कहिये आपके बिना मेरा कौन है⊛? मुझको छोड़कर चले आये और सब भूल गये। आपका हृदय बड़ा कठोर है। मैं आपके बिना विरहाग्नि में जलूँगी। मेरा मुख देखिये और घर पर चलिये"

इस पर पुरुष फिर कर बैठा और अति मृदु स्वर से कहने लगा, "तुम घर जाओ, मैं नहीं जाऊँगा, मैं वन में बैठकर साधन×

⊛ बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता।
न स्वातन्त्र्येण कर्त्तव्यं किञ्चित् कार्यं गृहेष्वपि ॥ मनु ५।१४७ ॥

×साधनानि नित्यानित्यवस्तुविवेकेहामुत्रफलभोगविरागशमदमादिसम्पत्ति·

करूँगा। अब मैं प्रियजनों का मुख नहीं देखूँगा। जप-तप करके इस देह को छोड़ दूंगा।"

मुमुक्षुत्वानि ॥ (वेदान्तसार)

सृष्टिक्रियाप्रवर्तकं विपयोन्मुखतासम्पादकं साधनम् ॥

(दैवीमीमांसा पृ० १६६)

एकाकी निस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ।
कदा शम्भो भविष्यामि कर्म्मनिर्मूलनक्षमः ॥

प्रीति मति अति सैं तू काहू सन करै,
मीत भले कै प्रतीत मानि प्रीति दुख-मूल है।
जा में सुख रंच है विशाल जाल दुख ही को,
लूटि ज्यों चतौरन की बरछी की हूल है।
सुन लै स्कन्ध माहि कान दै कपोत कथा,
जा ते मिट जाय महा मोहमई शूल है।
ता तें करि दीनदयाल प्रीति नन्दलाल संग,
जग को सम्बन्ध सबै सेमल को फूल है।
काहू की न प्रीति दृढ़ तेरे संग हे रे मन,
का सों हठी प्रेम करि पचि-पचि मरै है।
ये तो जग के हैं सब लोग ठग रूप मीत,
मीठे बैन-मोदक पै क्यों प्रतीत करै है?
मारिहैं प्रपंच बन बीच दगा फांस डारि,
काहे मतिमन्द मोही दुख० फन्द परै है।

इस पर वह रमणी घूम कर सन्मुख आई और गद्‌गद् स्वर से कहने लगी, "इस बालक को देखिये जिसे मैं अपनी गोद में लायी हूं। यह आपको देखता है। सुनिये तो क्या कहता है।"

बालक एक ही वर्ष का था और अपनी माता की गोद में अत्यन्त सुन्दर दिखलाई पड़ रहा था।

इसी समय उस बालक ने "बा-आ" "बा-आ" कहा।

पुरुष उस ध्वनि को सुन कर चौंक पड़ा और दोनों हाथ फैला कर बालक को गोद में ले लिया और बार-बार उसका मुख चूमा। कहने लगा कि "बेटा तुमने क्या कहा जिससे मेरे तृषित हृदय में अमृत सिंचन हुआ। यह मधुर वाणी तुम को किसने सिखलाई ? और क्यों तेरे बोल से मेरे प्राण अस्थिर होते हैं!"

इसी समय उसका हृदय कांप उठा और उसने बालक को उसकी मां की गोद में रख दिया।

और स्त्री से कहा:—"हे मायाविनी, तूने यह क्या किया ? मैंने अपनी वासनाओं को रोकने के लिये इतने दिन में जो बांध बांधा था उसे तूने तोड़ दिया ? मेरे लिये निर्दय मत हो और मुझे कष्ट मत दो, घर चली जाओ और यहां मत आओ। मैं हाथ जोड़ कर कातर होकर निवेदन करता हूं। यदि मैंने कभी तुम्हारा कुछ उपकार किया हो तो उसका ऋण शोधन करने में मुझे भूल कर घर चली जाओ।"

प्रेम तूं लगोउ सुखधाम घनस्याम सों,
जो नाम के लिये ते ताप पापकोटि हरै है ॥२॥ (दीनदयालगिरि)

रमणी कहने लगी कि "आपने मुझे अर्धाङ्गिनी कह कर वर रक्खा है और यत्नपूर्वक प्रीति बढ़ा रक्खी है। हमारा परम सुन्दर सन्तान हुआ जिसके समान संसार में दूसरा नहीं है। हमको तो आप अब अथाह समुद्र में फेंक कर चले जा रहे हो और मुझी को आप निष्ठुर बता रहे हैं? हे नाथ, यह आपका देह उत्तम सेवा से पला हुआ था, आज धूल में पड़ा हुआ है। आपके श्री अङ्ग में विचित्र वस्त्र रहते थे, इस समय कमर में कौपीन और अंग में कथरी गुदड़ी है। क्षुधित होने पर कौन आपको आहार देगा? कौन पशु-भय से आपको बचावेगा? हम को छोड़कर आप तो ऐसा कर रहे हैं, फिर मुझको ही आप निर्दयी कहते हैं?"

पुरुष कहने लगाः—"तुम्हारे सुधांशु मुख को देखकर मैं सदा आनन्द सागर में हिलोलें लेने लगता हूं। क्षण २ में तुम्हारी याद आती है, और तुम कहां गईं और तुम्हारा क्या हुआ यह सोच २ कर प्राण व्याकुल होता है। परन्तु दो दिन* पीछे तो वियोग अवश्य होना है! मैं कहां रहूं

---

* अग जग जीव नाग नरदेवा, नाथ सकल जग काल कलेवा।
अंग कटाह अमित लयकारी, काल सदा दुरतिक्रमकारी॥(तुकाराम)
नत्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतःपरम्॥१२॥

गा और तुम कहां रहोगी। मैं यदि तुम्हें अपनी भुजाओं से हृदय में बांध कर भी रक्खूं तो भी काल आकर तुम्हें ले ही जावेगा। मैं अवश्य मरूंगा और तुम भी मरोगी। इस चरम काल में कौन कहां रहेगा। इस संसार में तुम और हम जीव हैं। हमने परस्पर अपने को बांध कर अच्छा नहीं किया है। हे जीव, सुनो, यदि

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा,
तथा देहान्तरप्राप्ति र्धीरस्तत्र न मुह्यति। (गी० १३-२)
मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः।
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन्यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ॥ (रघु० ८-८६)
स्वशरीरशरीरिणावपि श्रुतसंयोगविपर्ययौ यदा।
विरहः किमिवानुतापयेद्वद बाह्यै र्विषयैर्विपश्चितम्॥ (रघु० - ५०)
वायुर्यथा घनानीकं तृणं तूलं रजांसि च,
संयोज्याक्षिपते भूयस्तथा भूतानि भूतकृत्। (भा० १०-८२-४)
नात्मनः कामकारो हि पुरुषोऽयमनीश्वरः।
इतश्चेतरतश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति॥
सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः;
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तञ्च जीवितम्॥
यथा काष्ठञ्च काष्ठञ्च समेयातां महार्णवे।
समेत्य च व्यपेयातां कालमासाद्य कंचन॥
एवं भार्याश्च पुत्राश्च ज्ञातयश्च वसूनि च।
समेत्य व्यवधावन्ति ध्रुवो ह्येषां विनाभवः॥ (वा०रा०अ०कां०)

तुम मेरी होतीं तो किस की शक्ति थी कि आकर तुमको निकाल ले जाता ?जो बाजीगर हम को लेकर ओट में होकर ऐंद्रजालिक * खेल करता है उसी से पूछूंगा कि इसमें क्या रहस्य है। क्यों

मृतिबीजं भवेज्जन्म जन्मबीजं भवेन्मृतिः। (श्रु०)
जातस्य हि ध्रुवं मृत्युः (गीता)
रुदता कुत एव सा पुनर्भवता नानुमृतापि लभ्यते।
परलोकजुषां स्वकर्मभिर्गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम्॥रघु० ८-८५
मृत्युर्जन्मवतां वीरदेहेन सह जायते।
अद्य वाऽब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः॥
मृत्योर्बिभेषि किं मूढ भीतं मुञ्चति किं यमः।
अजातं नैव गृह्णाति कुरु यत्नमजन्मनि॥

जैसे निसि तरु पैं संजोग होत पच्छिन को॥
जैसे पनिहारिन को कूप में संघात है।
जैसे पथिकन के संग नाव पौलर पैं।
जैसे रैनि संगम सराय में सुहात है॥
जैसे सम्बंधिन को जग में समागम है!
जात भले चले नाहिं कोई विरमात है॥
ता ते तजिये उताल वृथा यह मोह जाल।
सपन समान छगल ता में क्यों फंसात है॥ (दीनदयाल)

* देखे जहां केते जन एक ही सदन माहिं, बीते कछु काल तहां रह्यो एक नर है? एक ते अनेक फिर भये कछु दिना गये, फेरि एकहू न रह्यो

बनाता है और फिर क्यों तोड़ता है। उसके तो खेल हैं परन्तु हमारी मौत है। *माया से बांध कर हमारा छेदन करता है। यदि मरने पर जीव का जीव से ÷फिर मिलना होता हैं तो हम भी अवश्य मिलेंगे। ऐसा यदि न हो तो प्रीति बढ़ा कर वृथा ही वियोग से पीडित होकर मरोगी। अतः तुम घर को लौट जाओ

पीछे तेहि घर है। वाजीगर कैसो ख्याल जग को लखो, विशाल काल ही उतालतो नचावे चराचर है। चेत रे अचेत चेत श्रीनिकेत ता ते अवहेत कै सवेरो तेरो दुःखहर है॥ दीनदयालगिरि॥१४३।

* दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया (गीता)

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति (मार्कण्डेयपुराण)
गर्भान्तर्ज्ञानसम्पन्नं प्रेरितं सूतिमारुतैः
उत्पन्नं ज्ञानरहितं कुरुते या निरन्तरम्।
पूर्वातिपूर्वसंघातसंस्कारेण नियोज्य च
आहारादौ ततो मोहममत्वाज्ञानसंशयम्।
क्रोधपरोधलोभेषु क्षिप्त्वा क्षिप्त्वा पुनः पुनः
पश्चात् कामेन योजयाशु तेन सा जगदीश्वरी॥ (कालिकापुराण)
या सा माहेश्वरी शक्तिर्ज्ञानरूपातिलालसा।
व्योमसंज्ञा पराकाष्ठा सैषा हैमवती सती॥

÷ ध्रुवं जन्म मृतस्य च (गीता)

और मुझे भूल जाओ। मैं भी यत्न करके तुम को भूल जाऊँगा।"
ऐसा कह कर उसने आँखें मूंद लीं।

°पतिव्रता वहीं खड़ी रही और एक दृष्टि से पति का मुख देखने लगी। हृदय फटता था परन्तु मुख से वचन नहीं निकलते थे। सोचती थी कि 'मेरे प्राणनाथ ने +साधु मार्ग लिया है। मैं निज सुख के लिये उसका व्रत भङ्ग करती हूँ। निर्दय होकर तो वह मुझे छोड़ नहीं रहा है। प्रेम से ही छोड़ रहा है। तपस्या करेगा तो उसका हित होगा। मैं बाधक बनूं यह तो उचित नहीं है।'

इसी समय बालक ने "बा-आ बा-आ" कहा। रमणी ने अञ्चल से उसका मुख ढाँपा और कहा, "बेटा, चुप रह, दिक मत कर, ध्यान भङ्ग होगा, ऐसा कह कर मत पुकारो।" तब

° पतिव्रता — सर्वदानं सर्वयज्ञः सर्वतीर्थनिषेवणम्
सर्वं व्रतं तपः सर्वमुपवासादिकञ्च यत्।
सर्वं धर्मञ्च सत्यञ्च सर्वदेवप्रपूजनम्
तत्सर्वं स्वामिसेवायाः कलाँ नार्हन्ति षोडशीम्॥
स्नायन्ती तिष्ठती वापि कुर्व्वन्ती वा प्रसाधनम्।
नान्यञ्च मनसा ध्यायेत्कदाचिदपि सुव्रता॥
देवता अर्चयन्ती वा भोजयन्त्यथवा द्विजान्।
पतिं न त्यजते चित्तान्मृत्युद्वारं न पश्यति॥

+ साधयति परकार्ममिति साधुः

उसने गले में वस्त्र डालकर प्रणाम किया और बालक को गोद में लेकर घर को लौट आई ॥

पुरुष की चिन्ता—

पुरुष आँखें मूद कर सोचने लगा—'मुझको कौन* इस जगत में लाया ? क्यों लाया ? उसका इसमें क्या स्वार्थ है ? उसका मुझसे क्या सम्बन्ध है ? वह किस प्रकार का है, अच्छा है या बुरा ? जीव का जीव से किस प्रकार का सम्बन्ध है ? विचार कर देखने से यह बृहत्संसार एक आज्ञाकारी दास के समान किसी की ×आज्ञा मे वारम्वार घूमता हुआ मालूम पड़ता है

* कस्त्वं कोहं कुत आयातः का मे जननी को मे तातः ।
इति परिभावय सर्वमसारं विश्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम् ।
भज गोविन्दम् (चर्पटपंजरिका)

× भीषाऽस्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्य्यः
भीषास्मादग्निश्चन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥ तै० उ० २/८)
किंकारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवामः केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः ।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्
(श्वेताश्वतरोपनिषद्)

अस्य ब्रह्मांडस्य समन्तात्स्थितान्येतादृशान्यनन्तकोटिब्रह्माण्डानि सावरणानि ज्वलंति । चतुर्मुखपञ्चमुखषण्मुखसप्तमुखाऽष्टमुखादिसंख्याक्रमेण सहस्रावधिमुखान्तैर्नारायणांशैः रजोगुणप्रधानैरेकैकसृष्टिकर्तृभिरधिष्ठितानि विष्णुमहेश्वराख्यैर्नारायणांशैः सत्वतमोगुणप्रधानैरेकैकस्थितिसंहारकारकैरधिष्ठितानि महाजलौघमत्स्यबुद्बुदानन्तसंघवद्भ्रमन्ति॥

तेजसा षोडशांशोऽयं कृष्णस्य परमात्मनः ।
आधारः सर्वविश्वानां महाविष्णुश्च प्राकृतः ॥
प्रत्येकं लोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च ।
अद्यापि तेषां संख्याञ्च कृष्णो वक्तुं नहि क्षमः ॥
संख्या चेद्रजसामस्ति विश्वानाञ्च कदाचन ।
ब्रह्माविष्णुशिवादीनां तथा संख्या न विद्यते ॥
प्रतिविश्वेषु सन्त्येवं ब्रह्माविष्णुशिवादयः ।
पातालब्रह्मलोकान्तं ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम् ॥
नित्यौ गोलोकवैकुंठौ प्रोक्तौ शश्वदकृत्रिमौ ।
प्रत्येकं लोमकूपेषु ब्रह्मांडं परिनिश्चितम् ॥
कोटिकोट्ययुतानीशे ! चाऽण्डानि कथितानि तु ।
तत्र एव चतुर्वक्त्रा ब्रह्मणा हरयोभवाः ॥
असंख्याताश्च रुद्राख्या असंख्याताः पितामहाः ।
हरयश्च असंख्याता एक एव महेश्वरः
ब्रह्मांडा भान्ति दुर्दृष्टेर्व्योम्नि केशोन्डको यथा ॥
तत्सत्यतामुपाश्रित्य सद्भ्राति पृथक् पृथक् ।
तेनैव हेतुभूतेन वयं जाता महेश्वरि ॥१९९॥
कारणं सर्वभूतानां स एकः परमेश्वरः ।
लोकेषु सृष्टिकरणात्स्रष्टा ब्रह्मेति गीयते ॥२००॥
विष्णुः पालयिता देवि, संहर्ताहं तदिच्छया ।
इन्द्रादयो लोकपालाः सर्वे तद्वशवर्तिनः ॥२०१॥

आज्ञा-विपरीत काम करें ? ऐसा संसार जिसने सृजन किया वह ज्ञान, चक्षु, मन से अतीत* है। यह बड़ा संसार परिमाण

स्वे स्वेधिकारे निरतास्ते शासति तदाज्ञया।
त्वं पुरा प्रकृतिस्तस्य पूज्यासि भुवनत्रये ॥२०२॥
तेनाऽन्तर्यामिरूपेण तत्तद्विषययोजिताः।
स्व स्व कर्म प्रकुर्वन्ति न स्वतन्त्राः कदाचन ॥२०३॥
यद्भयाद्वाति वातोपि सूर्यस्तपति यद्भयात्।
वर्षन्ति तोयदाः काले पुष्पन्ति तरवो वने ॥२०४॥
कालं कलयते काले मृत्योर्मृत्युर्भियो भयम्।
वेदान्तवेद्यो भगवान्यत्तच्छब्दोपलक्षितः ॥२०५॥
सर्वे देवाश्च देव्यश्च तन्मयाः सुरवन्दिते।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तन्मयं सकलं जगत् ॥२०६॥
तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रणीते प्रीणितं जगत्।
तदाराधनतो देवि सर्वेषां प्रीणनं भवेत् ॥२०७॥
तरोर्मूलाभिषेकेण यथा तद्भुजपल्लवाः।
तृप्यन्ति तदनुष्ठानात्तथा सर्वेऽमरादयः ॥२०८॥

गुरु० गी० पृ० ४१।२

* यो बुद्धेः परतस्तु सः (गीता)

यं धातृमुख्या विबुधा भयेषु शान्त्यर्थिनः क्षीरनिधेरुपान्तं।
गत्वोत्तमाः स्तोत्रकृतः कथञ्चित् पश्यन्ति तं द्रष्टुमहो ममाशा॥
वेदान्तवाक्यशतमारुतसम्प्रवृद्धवैराग्यवह्निशिखया परिताप्य चित्तं।

शून्य है, ऐसे ही इसका स्रष्टा भी परिमाणशून्य अनन्त होगा। मैं क्षुद्र जीव हूं और वह महान है, क्या उसमे मिलन या कोई सम्बन्ध सम्भव नहीं हो सकता है? क्या हाथी और मक्खी में प्रेम हो सकता है? यदि मैं उसको पुकारूं तो वह क्यों सुनेगा? मैं दुःख पाता हूं तो उसकी क्या क्षति है?' निराश होकर वह पुरुष रोने लगा। और (उस स्रष्टा को) जितना मन में आया कोसने लगा। कहने लगा कि 'हे मेरे निष्ठुर निर्दय स्रष्टा कहां हो? हम सब को सृजन करके, हम सब मरते हैं कि बचते हैं, आंख से भी नहीं देखते। हम तो रोरोकर मरते हैं, तू सुख से रहता है, हम को पद-पद पर भय है, जिसको हम दुर नहीं कर सकते और तुझे पुकारने

संशोधयन्ति यदवेक्षणयोग्यतायै धीरः सदैव स कथं मम गोचरःस्यात् ॥
मात्सर्यरोषस्मरलोभमोहमदादिभिर्वासुहृद्भिः सुसद्भिः
उपर्युपर्याचरणैः सुबद्धमन्धम्मनो मे क्व हरिः क्व वाहम् ॥
अजरममरमेकं ध्येयमाद्यन्तशून्यं सगुणविगुणरूपं स्थूलमत्यन्तसूक्ष्मं
निरुपममुपमेयं योगिनां ज्ञानगम्यं त्रिभुवनगुरुमीशं त्वां प्रपन्नोस्मि विष्णो ॥
(प्रह्लादवाक्यम्)

पद हैं पताल दिग श्रुति अजधाम भाल बाल घनमाल काल भृकुटी बिलास है। नैन मारतंड दिगपाल भुज हैं प्रचंड और लोक अंग मही मास वात स्वास है ॥ आनन अनलरूप रसना है वारि भूप वेद बैन हैं अनूप माया मुख-हास है। कच्छ सिन्धु रोम वृक्ष अस्थि शैल नसा जाल नदी दीनद्याल यो गुपाल विश्ववास है ॥ —दीनदयालगिरि

पर भी तू नहीं मिलता ! यदि हमको लेकर पुतली बनाकर *खेलने की ही तेरे जी में थी तो हममें ममता और चैतन्य क्यों दिया ? हम दुःख से रो-रोकर जनम गँवाते हैं !'

अब पुरुष का चित्त अधीर होगया और निराशा के सागर में डूबने लगा। तो भी वह उस (भगवान्) से मिलने की आशा छोड़

---

* लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् ॥

भोगार्थं सृष्टिरित्यन्ये क्रीडार्थमिति चापरे,

देवस्यैष स्वभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा ॥ (मा० उ०)

विभूतिं प्रसवं त्वन्ये मन्यन्ते सृष्टिचिन्तकाः ।

स्वप्नमायास्वरूपेति सृष्टिरन्यैर्विकल्पिता ॥

इच्छामात्रं प्रभोः सृष्टिरिति सृष्टौ विनिश्चिता ।

कालात्प्रसूतिं भूतानां मन्यन्ते कालचिन्तकाः ॥

(मांडूक्यकारिकायां गौडाचार्यः)

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति

यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम् ॥

(वेद)

स्वभावोऽध्यात्म उच्यते (गीता)

निमित्तमात्रमेवासीत्सृज्यानां सर्गकर्मणि

प्रधानकारणीभूता यतो वै सृज्यशक्तयः ।

निमित्तमात्रमुक्त्वैकं नान्यत् किञ्चिदवेक्षते

नीयते तपतां श्रेष्ठ स्वशक्त्या वस्तु वस्तुताम् ॥ (विष्णुपुराण)

नहीं सका। फिर चिन्ता छोड़कर वह ऊंचे स्वर से पुकारने लगा—"हे पिता, तुम्हारा पुत्र तुमको पुकारता है। हे बाप, कृपा करके उत्तर दो। हे पिता, कहां हो ? मेरा सन्देह दूर करो। अपना परिचय दो। अब विडम्बना छोड़ो। हे प्रभु, यदि मेरे ऊपर कृपा नहीं करते हो तो मेरे शिर में वज्र मारकर मेरी यन्त्रणा मिटाओ। मैं तो निश्चय ही मर जाता, केवल तुम्हारी आशा के मार्ग को देखता हुआ बचा हुआ हूं। यह न हो तो मुझसे यही कह दो कि कि मैं तुम्हें कैसे पाऊंगा। जो कहोगे, मैं वैसे ही करूंगा। नाना* प्रकारके लोग मुझसे नाना प्रकार की बातें कहते हैं। अब तुम ही कहो कि मैं किस मार्ग से तुमको पाऊंगा ?"

* सत्यं केचित्प्रशंसंति तपः शौचं तथापरे
क्षमां केचित्प्रशंसंति तथैव शमसार्जवम् ॥
केचिद्दानं प्रशंसंति पितृकर्म्म तथाऽपरे
केचित्कर्म्म प्रशंसंति केचिद्वैराग्यमुत्तमम् ॥
केचिद्गृहस्थकर्म्माणि प्रशंसंति विचक्षणाः
अग्निहोत्रादिकं कर्म्म तथा केचित् परं विदुः ॥
मन्त्रयोगं प्रशंसंति केचित्तीर्थानुसेवनम्
एवं बहुविधान् वादान् प्रवदन्ति हि मुक्तये ॥ (शिवसंहिता)

मत — नैयायिक, वैशेषिक, प्रत्यक्षवादी, चार्वाक, विज्ञानवादी, शून्यवादी, सांख्यवादी (सेश्वर निरीश्वर) तथा बौद्ध, जैनी, इस्लाम, ईसाई इत्यादि इत्यादि शाखा-प्रशाखा देश, काल, पात्र के विचार से सब ही उपयोगी हैं, परन्तु इस युग में, घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वधर्मविवर्जिते।

वासुदेवपरा मर्त्यास्ते कृतार्था न संशयः ॥८२॥ संसारकूपपतितं विषयैर्मुषितं प्रभम्। ग्रस्तं कालाहिनात्मानं कोऽन्यस्त्रातुं महेश्वरः ॥

(भक्तिरत्नावली)

कीजे छल छांड़ि सेव राखिये न हिये भेव,
वही भलों देव जा पै जाहि की प्रतीति है।
तानसुरग्राम को न काम अनुरागै जो
न जासों मन पागै तौ न लागै भली रीति है॥
साँची रुचिराई मति राची अति जिन्हें,
पाई तेइ सुखदाई चलि आई यह रीति है।
और सब पती को राधा पा की रूप ही को गयो
सोई लगै नीको जग जापै जाकी प्रीति है॥-(दी०द०)

व्यामोहाय चराचरस्य ,जगतस्ते ते पुराणागमा-
स्तां तामेव हि देवतां परमिकां जल्पन्तु कल्पावधि।
सिद्धांते पुनरेक एव भगवान् विष्णुः समस्तागम-
व्यापारेषु विवेचनव्यतिकरं नीतेषु निश्चीयते ॥
भ्रान्तिमूलतया सर्वसमयानामयुक्तितः
न तद्विरोधात्कृष्णाख्यं परं ब्रह्म त्यजेद्बुधः ॥ (वि०गी०भा)-
जनिमसतः 'सतो मृतिमुतात्मनि ये च भिदां विपण-'
मृतं स्मरन्त्युपदिशन्ति च आरुपितैः।
त्रिगुणमयः पुमानिति भिदा यदबोधकृता
त्वयि न ततः परत्र स भवेदवबोधरसे ॥

(भा० २९-८७-१० वेदस्तुति)

टीका

जनिमसत इति—असतो जगतो जनिमुत्पत्तिं ये वैशेषिकादयो वदन्ति, असत एव ब्रह्मत्वस्योत्पत्तिं ये च पातञ्जलादयः, सत एवैकविंशति-प्रकारस्य दुःखस्य नाशं मोक्षं वदन्ति ये नैयायिकाः, उत अपिच ये सांख्यादयः आत्मनि भिदां भेदं च, ये मीमांसकाः विपणं कर्मफल-व्यवहारभूतं सत्यं स्मरन्ति वदन्ति ते सर्वे आरुपितै र्भ्रमैरेवोपदिशंति न तत्त्वदृष्ट्या, 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्', 'ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति', 'अनी-शया शोचति मुह्यमानः', 'अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पंडितं मन्यमानाः। जंघन्यमानाः परियंति मूढा अन्धेनैन नीयमाना यथान्धाः', 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म', 'एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः। एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रव'दित्यादि श्रुति-विरोधात्। किंच वस्तुतः पुरुषस्य सर्वमिदं संगच्छेत् ननु तदस्तीत्याह—त्रिगुणमयः पुमानिति भिदा यदबोधकृता त्वयीति। त्रिगुणमयः पुमानित्यनेन हेतुना या भिदा। उपलक्षणमेतत्। भिदादि सा यस्मात्त्वयि विषये अबोधकृता त्वद्विषयाज्ञानविजृम्भिता। तर्हि किमज्ञानमस्ति,वस्तुतः पुंसि नैवेत्याह। ततः अबोधात्परत्र परे असङ्गेऽवबोधरसे ज्ञानघने सः अबोधो न भवेत्। न सम्भवतीत्यर्थः ॥

मिथ्यातर्कसुकर्कशेरितमहावादान्धकारान्तर-
भ्राम्यन्मन्दमतेरमन्दमहिमंस्त्वज्ज्ञानवर्त्मा स्फुटम्।
श्रीमन्माधव वामन त्रिनयन श्री शङ्कर श्रीपते
गोविन्देति मुदा वदन्मधुपते मुक्तः कदा स्यामहम् ॥ (श्रीधरः)

श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतिर्विभिन्ना नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्
धर्म्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥ (म० भा०)

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति,
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां,
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥ (महिम्नस्तोत्र १)

बहुधाऽप्यागमैर्भिन्नाः पंथानः सिद्धिहेतवः ।
त्वय्येव निपतंत्यौघा जाह्नवीया इवार्णवे ॥ (रघुवंश १०-२६)

मनस्त्वं व्योमस्त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि,
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम् ।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा,
चिदानन्दाकारं शिवयुवतिभावेन बिभृषे ॥ ३५ ॥

(आनंदलहर)

हरित भूमि तृन संकुलित, समुझि परै नहि पंथ ।
जिमि पाखंड विवाद तें लुप्त होत सद्ग्रन्थ ॥ २२ ॥

(तु० रा० कि०)

कलिमल ग्रसेउ धर्म सब लुप्त भये सद्ग्रन्थ ।
दंभिन निजमत कल्प करि प्रगट कीन्ह बहु पंथ ॥३६॥

(तु० रा० उ०)

कोउ कहै आन कोई आप ही भगवान् बनै,
कोई कहै दूरि कोई नेरे ही लखाव रे ।

जैसे ही उस पुरुष ने सरल अन्तर से रोकर पुकारा, उसके मन में "है है" (ईश्वर है हैं) भाव का संचार हुआ। इस भाव को वह कैसे भी छोड़ नहीं सका और आंखें मूंदकर अश्रुपात करने लगा। इसी समय उसकी स्त्री बर्तन में दुध और खाने के पदार्थ लेकर और गोद में बालक को लेकर खड़ी हुई और स्वामी का व्यवहार देखने लगी।

अपने पति के मुख को देखकर उसका हृदय फट रहा था, परन्तु किसी प्रकार धैर्य धरके कहने लगी—'हे साधु, सुनिये, आंख खोलिये और दूध पीकर प्राण रखिये।'

यह सुनकर साधु मन में समझा कि रमणी दूध लेकर आई हुई है। मुख से पात्र लगाकर दूध पी लिया, परन्तु न तो उसने आंखें खोलीं, न बोला। स्त्री हाथ जोड़कर कहने लगी कि "अवश्य तुमको (भगवान् के) दर्शन मिलेंगे। हम दोनों आपके आश्रित हैं। हमको न भूलना और न ठगना (छोड़ना)। मेरी और कुछ इच्छा नहीं

कोई कहै रूप औ अरूपवान ,
कोई कहै निर्गुण कोई सगुण बताव रे ॥
ता मे मति भरमं औ भूलिके न वाद ठान,
तोहि क्या बिरानी पड़ी अपनी सुझाव रे।
अद्भुत प्रताप मूरि जीवन है रसिकन की,
सदा रसिक भक्तन के सरन रहु बावरे ॥
(कि० कौ० ईश्वरीप्रताप)

है, केवल इतना ही चाहती हूं कि मेरा चित्त आपके चरणों में* रहे।" यह कहकर उसने स्वामी के चरणों में प्रणाम किया और मुख देखती हुई खड़ी रही।

पुरुष सोचने लगा कि "क्या वर मांगूगा—प्रियजनों की ०वञ्चना करके (छोड़कर) मैं कैसे सुखी हो सकता हूं। भगवान् से यदि ‡ऐश्वर्य मांगा जाय तो उसमें पद-पद में विपत्ति है।

---

* स्त्रीणां पतिव्रतानान्तु पतिरेव हि दैवतम्।
स तु पूज्यो विष्णुभक्त्या मनोवाक्कायकर्म्मभिः॥

(पद्मे पाताल ख० ४४-५०।५२)

पतिव्रतात्परं नास्ति स्त्रीणां श्रेयस्करं व्रतम्।
धर्म्मं कामञ्च मोक्षञ्च सर्वमाप्नोत्यतो यतः॥
अन्येषामन्यधर्म्मः स्यात्स्त्रीणां पतिनिषेवणम्।
तीर्थस्नानाऽर्थिनी नारी पतिपादोदकं पिवेत्॥
विष्णोर्वा शङ्कराद्वापि पतिरेवाऽधिकः प्रियः॥ ना० ध०॥

० स तीव्रगन्धसंतप्तो देवदूतमुवाच ह
गम्यतां तत्र येषां त्वं दूतस्तेषामुपान्तिकम्।
न ह्यहं तत्र यास्यामि स्थितोऽस्मीति निवेदिताम्।
यत्संश्रयादिमे दूताः सुखिनो भ्रातरो हि मे॥

(म० भा० शां० प० युधिष्ठिरवाक्यं देवदूतं प्रति)

‡ अस्थिराः सर्व एवेमे सचराचरचेष्टिताः
आपदांपतयः पापा भावा विभवभूमयः॥

जो धन (वस्तु) एक से दूसरों के पास न हो, उसको लोग ऐश्वर्य कहते हैं। भगवान् सबका पिता कहा जाता है, उससे किस प्रकार कहा जाय कि औरों को न देकर केवल मुझ ही को दे। फिर ऐश्वर्य का सुख प्रभुत्व करने से अथवा औरों को दुःख देकर होता है। मैं बड़ा होऊँ और छोटे होवें, और नीचे बैठकर मेरे चरणों की सेवा करें, इससे जो सुख होगा वह शीघ्र ही नाश हो जावेगा। परन्तु दम्भ, अहंकार आदि बढ़ जावेंगे। औरों की छाती में पैर रखकर मेरा पद बड़ा होवे, इस प्रकार के चिन्तन को भी धिक्कार है। छिः, छिः ! ऐसे भोग से काम नहीं। इससे द्वेष, हिंसा, लोभ, दम्भ इत्यादि बढ़ जाते हैं और क्रम-क्रम से पशुवत् चरित्र हो जाता है और हृदय में जो कुछ भी साधु-भाव है, ऐश्वर्य-भोग से क्षय हो जाता है। जो लोग अष्टसिद्धि मांगते हैं, बड़े ही मूर्ख हैं। क्षमता से कभी सुख-वृद्धि नहीं होती। क्या जो महाराज हैं, उनकी तृप्ति हो जाती है ? राज्य में सुख का लवलेश भी नहीं है। जो लखपति हैं, उनको तीन लाख की आशा है, तीन लाख पाकर भी प्यास नहीं बुझती। क्षमता से आरम्भ में सुख मिल सकता है, पर वह तो भोगमात्र से क्षय हो जाता है।

राजानः केऽपि संसारे विविधैश्वर्य्यशालिनः।
वणिजो वित्तपूर्णा वा वस्तुतो धनिका नहि ॥ १०५ ॥
ऐश्वर्य्यञ्च धनं तेषां यतः स्यात्क्षणभंगुरम्।
अकिंचित्करमप्यास्ते पितरो नात्र संशयः ॥ १०६ ॥

(शम्भुगीता)

गत पृष्ठ में जो यह बतलाया है कि ममता से सुखवृद्धि नहीं होती और ऐश्वर्य की प्यास कभी नहीं बुझती, उसी पर ये श्लोक हैं—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥

अवनाथहिं अनुराग जाग जड़ त्याग दुराशा जीते ।
बुझै न कामअगिनी तुलसी कहुँ विषयभोग बहु घी ते ॥

इच्छति शती सहस्त्रं ससहस्त्रः कोटिमीहते कर्तुम् ।
कोटियुतोऽपि नृपत्वं नृपोऽपि वत चक्रवर्तित्वम् ।
चक्रधरोऽपि सुरत्वं सुरोऽपि सुरराज्यमीहते कर्तुम् ।
सुरराजोऽप्यूर्ध्वगतिं तथापि न निवर्तते तृष्णा ॥ सुभा०

राजानः केऽपि संसारे विविधैश्वर्यशालिनः ।
वणिजो वित्तपूर्णा वा वस्तुतो धनिका नहि ॥१०५॥
ऐश्वर्य्यञ्च धनं तेषां यतः स्यात्क्षणभङ्गुरम् ।
अकिञ्चित्करमप्यास्ते पितरो नात्र संशयः ॥१०६॥

तृष्णा—

निस्स्वो वष्टि शतं शती दशशतं लक्षं सहस्राधिपः,
लक्षेशः क्षितिपालतां क्षितिपतिश्चक्रेश्वरत्वं पुनः ।
चक्रेशः पुनरिन्द्रतां सुरपतिर्ब्रह्मास्पदं वाञ्छति,
ब्रह्मा विष्णुपदं पुनः पुनरहो आशावधिं को गतः ॥

सर्वसंसारदुःखानां तृष्णैका दीर्घदुःखदा ।
अन्तःपुरस्थमपि या योजयत्यतिसङ्कटे ॥ (रामः)

भीषयत्यपि धीरं मामन्धयत्यपि सेक्षणाम् ।

खेदयत्यपि सानन्दं तृष्णा कृष्णेव शर्वरी ॥

उत्खातं निधिशङ्कया क्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवो

निस्तीर्णः सरितांपतिर्नृपतयो यत्नेन संतोषिताः ।

मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः ।

प्राप्तः काणवराटकोऽपि न मया तृष्णेऽधुना मुञ्च माम् ॥

अशान्तस्य कुतः सुखम् ॥

(क–भा–२–पृ० १६५)

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः

नालमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत् (विष्णु पुराण)

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं, समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।

तद्वत्कामा य प्रविशन्ति सर्वे, स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥

(गी०–२–७०)

तस्य कार्यं न विद्यते

वस्तुतस्त्विह संसारे वानप्रस्थास्तपोधनाः ।

आत्मधर्म्मं तथैवात्मधनं सन्यासिनो गताः ॥१०७॥

ऐश्वर्यशालिनः सन्ति धनिकाश्चैव निश्चितम् ।

नैवात्र संशयः कार्य्यो भवद्भिः पितृपुङ्गवाः ॥१०८॥

(शम्भु गी० पृ० १६)

"जिससे सब इच्छायें पूर्ण हो जावें और आगे कुछ इच्छा न रहे, और जिसके भीतर-बाहर इच्छा न हो उसको क्षमता से सुख नहीं होता।

"मैं इस जगत् में सबका प्रेम-पात्र होऊँ, मैं सबको प्यार करूँ और सब मुझे प्यार करें। मैं मधुर वचन कहूँ और सुनूँ, औरों को सुख देकर उनका दुःख लूँ।*

---

* दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्व्वाणि भूतानि
समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहञ्चक्षुषा सर्व्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ (यजु०)
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः (श्रु०)
हे जिह्वे रससारज्ञे, सर्वदा मधुरप्रिये।
मधुरं वद कल्याणि, लोको हि मधुरप्रियः॥
एतावाञ्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु।
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेयश्चाचरणं सदा॥ (भा०)
अहो तेषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीविनाम्।
सुजनस्येव येषां वै विमुखा यान्ति नार्थिनः (भा०)
येन केन प्रकारेण यस्य कस्यापि जन्तुनः।
सन्तोषं जनयेद्धीमांस्तदेवेश्वरपूजनम्॥
प्राणिनामुपकाराय यदेवेह परत्र च।
कर्म्मणा मनसा वाचा तदेव मतिमान्भजेत्॥
परहित बस जिन्ह के मन माहीं,
तिन कंह जग दुर्लभ कछु नाहीं॥१॥ (तु० रा० अर०)

"मेरी स्त्री समझती होगी कि मैं ऐश्वर्य लेकर उसको भूल जाऊँगा, परन्तु मैं तो ऐश्वर्य नहीं लूँगा, मैं लूँगा माधुर्य*, जिससे मैं शीतल होऊँगा और दूसरों को शीतल करूँगा। रूप, रस, स्वाद का आनन्द भोग करूँगा। किसी की सम्पत्ति में बाधा नहीं दूँगा, आनन्द भोगूँगा, औरों को वञ्चित नहीं करूँगा। यह केवल रूप, रस, स्वाद में ही सम्भव है। जो आनन्द औरों का भाग देने से बढ़ता है, वही वर माँग लूँगा।"

पुनः

नारी के कार्य को देखकर पुरुष का हृदय द्रवीभूत हो गया और सोचने लगा कि "भगवान् ने कैसा मधुमय बन्धन सृजा है। मैं तो अनाहार से कुछ दुःख नहीं मान रहा हूँ, परन्तु रमणी व्याकुल होकर घर में नहीं रह सकती है। जिसने ऐसा मधुमय बन्धन सृजा है, वह निर्दय कैसे हो सकता है! जो पुत्र-जन्म से

अष्टादशपुराणानां व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

संत हृदय नवनीत समाना कहा कविन पै कहा न जाना।
निज परिताप द्रवै नवनीता पर दुःख-द्रवहिं सुसंत पुनीता ॥१॥

(तु० रा० उ०)

* श्याममेव परं रूपं पुरी मधुपुरी वरा।
वयः कैशोरकं ध्येयमाद्य एव परो रसः॥

पहले ही दूध स्तनों में देता है और मातृस्नेह देकर सन्तान को बचाता है, पीछे कोई माता स्तन न पिलावे, इसका उपाय यह करता है कि माता को बच्चे को दूध पिलाकर ही सुख मिलता* है, बछड़े के पीछे गाय 'हम्बा' शब्द करती जाती है, जिसका यह कौशल है वह निर्दय नहीं है। परन्तु निष्ठुर का काम वह नहीं करता, ऐसा भी नहीं है×। उसमें दोनों ही गुण हैं—सदय और निर्दय। जिसने फाल्गुनी पूर्णिमा बनाई है, उसीने भाद्र अमावस्या भी तो बनाई है।

"वह चेतन है, उसने सृष्टि भी चेतन बनाई है। अपने ही दोष-

---

* ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान्पतङ्गांछावचञ्चुषु ।
कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा ॥ (चं० १-३८)
मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान्प्रति ।
लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतान्किन्न पश्यसि ॥ (चं० १ ३९)

× भलेउ पोच सब विधि उपजाये ।
गनि गुण दोष वेद बिलगाये ॥३॥
कहंहि वेद इतिहास पुराना ।
विधि प्रपंच गुण अवगुण साना ॥४॥

❁ ❁ ❁

जड़ चेतन गुण दोषमय विश्व कीन्ह करतार ।
संत हँस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार ॥

(तु० रा० बा०)

गुण हमको दिये हैं। जो उसमें नहीं है, वह कहां से देवे* ? जो कुछ मनुष्य में है, उसमें भी मिलेगा। इसी युक्ति को लेकर जगत् का नाथ निश्चय ही मनुष्य के सदृश होगा।×

---

* नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। (गी०)

× ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥ (गी० १५-७)

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या
वृक्षान्सरीसृपपशून्खगदंशमत्स्यान्।
तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय
ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः॥ (भा० ११-६-२८)

सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा।
अबुद्धिपूर्वकः सर्गः प्रादुर्भूतस्तमोमयः॥
तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञितः।
अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः॥
पञ्चधावस्थितः सर्गो ध्यायतोऽप्रतिबोधवान्।
बहिरन्तोऽप्रकाशश्च संवृत्तात्मनगात्मकः॥
मुख्या नगा यतश्चोक्ता मुख्यसर्गस्ततस्त्वयम्।
तं दृष्ट्वा साधकं सर्गममन्यदपरं पुनः॥
तस्याभिध्यायतः सर्गं तिर्यक् स्रोताभ्यवर्तत।
यस्मात्तिर्यक् प्रवृत्तः सस्तिर्यक्स्रोतास्ततः स्मृताः॥

"जिसने अमानुषी सृष्टि की है, उसमें अवश्य मनुष्य से अधिक कुछ गुण होंगे। अतएव जो भगवान् होंगे, उनमें मनुष्य

पश्वादयस्ते विख्यातास्तमप्राया ह्यवेदिनः ।
उत्पथग्राहिणश्चैव तेऽज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥
अहंकृता अहम्माना अष्टाविंशद्वधात्मका ।
अन्तःप्रकाशास्ते सर्वे आवृताश्च परस्परम् ॥
तमप्यसाधकं मत्वा ध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत् ।
ऊर्द्ध्वस्रोतास्तृतीयस्तु सात्विकोर्द्ध्वमवर्तत ॥
ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तस्त्वनावृताः ।
प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्ध्वस्रोतोभवाः स्मृताः ॥
तुष्टात्मनस्तृतीयस्तु देवसर्गस्तु सः स्मृतः ।
तस्मिन्सर्गेऽभवत् प्रीति र्निष्पन्ने ब्रह्मणस्तदा ॥
ततोन्यं स तदा दध्यौ साधकं सर्गमुत्तमम् ।
असाधकांस्तु तान् ज्ञात्वा मुख्यसर्गादिसम्भवान् ॥
तथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्ततः ।
प्रादुर्बभूव चाव्यक्तादर्वाक् स्रोतस्तु साधकम् ॥
तस्मादर्वाक् प्रवर्तंते ततोर्वाक्स्रोतसस्तु ते ।
ते च प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोधिकाः ॥
तस्मात्ते दुःखबहुला भूयो भूयश्चकारिणः ।
प्रकाशा बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकाश्च ते ॥

(विष्णु पुराण)

का भी कुछ अंश होगा। जो उनमें मनुष्य से अतीत है,* उसको मनुष्य धारण कर सकता है, करके मैं प्रतीत नहीं कर सकता हूं। मनुष्य अपनी प्रकृति के सिवा कुछ समझने की शक्ति नहीं रखता है। मनुष्य में जो नहीं है और उसमें है, उसको मनुष्य चित्त में कैसे धारण कर सकता है ?

"हमको उनका उतना ही रूप ले लेना चाहिये, जितना हम अपने हृदय में रख सकें। सब लेने से ज्ञानातीत हो जाता है।× जो ज्ञानातीत है, उससे कुछ प्रयोजन नहीं है।"

अतएव

"जो हमारे भजनीय होंगे, उनका सम्पूर्ण हमारे ही समान होगा। बड़े भगवान् का भजन करने पर तो श्रम वृथा होता है,*

---

*यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह,
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन ॥ (श्रु०)

×अथवा बहुनैतेन किं ज्ञानेन तवार्जुन
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥ (गी०)

* रामायण में सम्पातिचरित्र, तथा अर्जुन का विराट् रूप-दर्शन से घबराकर प्रार्थना—

अदृष्टपूर्वं हृषितोस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देवरूपं प्रसीद देवेष जगन्निवास ॥
(गी० ११·२६)

और उसका अन्त नहीं मिलता है। यह सूर्य महासूर्य के चारों ओर घूमता है, यह बात हमको आंखों से तो दिखाई नहीं देती, ज्ञान से जानी जाती है। इस सूर्य की उपेक्षा करके उस (महासूर्य) के निकट जाने की इच्छा करने वाले को प्रकाश तो मिलेगा नहीं. पर परिश्रम वृथा होगा। यदि इस सूर्य लोक में जाया जाय, तो उस सूर्य में जाने का अधिकार भी होवे।

"फिर देखा जाता है कि इस जग में जीव-मात्र युग्म रूप से विराजमान हैं। सबही जीवों में प्रकृति पुरुष भाव ही देख जाते हैं* यही दो भाव भगवान् में भी होंगे। यदि कोई भजनीय वस्तु होवेगी, तो अवश्य मनुष्य के ही सदृश होगी। उसही की छाया हम सब युगल हैं। जिसकी छाया युगल है, वह भी युगल ही होंगे।

"हे माता - पिताओ (भगवान्), मुझे दर्शन दो। तुम्हारा सन्तान तुमको पुकारता है।

"मन में इच्छायें बहुत हैं। कोई-कोई अवश्य पूरी भी हो गई हैं। मैं देखता हूं कि प्यास और जल संग-संग हैं। प्रेम और प्रेमभाजन साथ-साथ हैं। फिर देखता हूं कि सैकड़ों इच्छायें पूर्ण नहीं हुईं, जो बारम्बार दुःख देती हैं। क्या तुम ऐसे क्षुद्र-चेता हो कि

---

* प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ॥
(गी० १२-१२)

निदर्शनं विश्वमत्र प्रधानपुरुषात्मकम् ।
अत्रैकं प्रकृतेः श्रोत्रः पुरुषस्येतरस्फुटम् ॥४८॥
सृष्ट्यादौ पुरुषो मूलप्रकृतिश्च ततः परम्
नरो नारी च सर्वत्र स्त्रीपुंभावस्तु विद्यते ॥४९॥
द्रष्टात्मा दृश्यदेहो यत्सर्वत्र परिलक्ष्यते
पुंभावः पुरुषे तत्र स्त्रीभावः प्रबलस्त्रियाम् ॥५०॥
पुंभावो जङ्गमे विप्राः स्त्रीभावः स्थावरे तथा ।
किन्तूत्कर्षापकर्षाभ्यां द्वौ भावौ स्तो द्वयोरपि ॥५१॥
(सू० गी०)

सच्चिद्भावसुविस्तारैरेकाऽद्वैतस्वरूपतः ।
अतुलं द्वैतरूपं हि धरन्ती युगलात्मकम् ॥ ११ ॥
पुरुषप्रकृतीभूय देवा आविर्भवाम्यहो
नात्र कंचन सन्देहो विद्यतेऽदितिनन्दनाः ॥ १२ ॥

❀ ❀ ❀

अहं स्वानन्दसत्तायाः प्रकाशायैव केवलम् ।
जगत्यां द्वैतरूपेऽपि प्रतिभासे न संशयः ॥१४॥ (शक्ति०)

❀ ❀ ❀

अहमेकाऽद्वितीयापि रूपं धृत्वाऽधिदैविकम् ।
पुरुषो वै स्वयं भूत्वा स्वां शक्तिं प्रकृतिं तथा ॥३७॥
निर्मायैव निमज्जामि श्रृङ्गारानन्दसागरे ।
ममाधिदैवरूपं हि मन्मायावशतः खलु ॥३८॥
(शक्ति० गी०)

इच्छा तो दो और उसको मिटाओ नहीं। बचने की इच्छा तो मन में दी है, परन्तु आपने ही मरण भी सृजा है। मन में यह विश्वास कभी नहीं होता कि तीन जगत् का स्वामी ऐसा नीचाशय हो। जिसने इच्छा दी है, वह अवश्य पूरी भी करेगा। इस लोक में न सही, परलोक में अवश्य करेगा। जब मन में बचने की प्रबल इच्छा है, तो इससे समझता हूं कि पर-काल भी है। जब भगवान् के लिये मेरा मन रोता है तो मैं जानता हूं कि तुम कोई हो। कोई कोई तुमको केवल तेजोमय* कहते हैं। मुझे तेज देखने की इच्छा नहीं है। यदि इच्छा होगी तो सूर्य की ओर देख लूंगा, जिसको कि आपने इतना तेज दिया है कि आंखों में नहीं रक्खा जाता है। कोई तुमको निराकार रूप से भजते हैं और निराकार+

---

* हठयोग

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियम्
ज्योतिः किंचन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते ॥
अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरं ।
कालिन्दीपुलिनेषु यत्किमपि तद् नीलं महो धावति ॥

+ वेदांत

क्लेशोधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ (गी० ५-१२)
निर्गुणं दुर्गमं यस्मात्सगुणोपासना ततः ।
सगुणब्रह्मणः पंचश्रेष्ठान्भावान्समास्थिताः ॥ (सू० गी०)

बतलाते हैं। कहिये निराकार का ध्यान हृदय में कैसे किया जाय? मैं तो समझता हूं जो तुम्हें निराकार रूप से भजते हैं, वे न तो प्रीति जानते हैं, न तुम्हें चाहते हैं, न उनका तुम से प्रेम है। तेज से सन्तुष्ट रहकर क्या होता है? कोई पुरुष प्रवास में हो, तो क्या उसकी रमणी की तृप्ति उसके पत्र से हो सकती है? मैं तो *पञ्चेन्द्रिय द्वारा तुम्हारा भोग करना चाहता हूं, तभी मैं तुमको

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह॥ (भा०)

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुञ्च परंतप॥ (गी० ११-५४)

नाहं वेदै र्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥ (गी० ११)

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुध्यात्मना वाऽनुसृतस्वभावात्।
करोमि यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत्॥
(भा० ११)

* स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये॥
मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दृशौ तद्भक्तगात्रस्पर्शेऽङ्गसंगमम्।
घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते॥
पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरो हृषीकेशपदाभिवंदने।
कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया यथोत्तमश्लोकजनाश्रया रतिः॥
(भा० ६)

दयामय कहूंगा । मैं आपका मुख देखूंगा, वचन सुनूंगा और इस तरह अङ्ग-घ्राण स्पर्श का आस्वादन करूंगा । सुख-दुःख की बातें कहूंगा, प्रेम करूंगा और प्रेम-पात्र होऊंगा । अपना समझकर निकट बैठूंगा । सब गुप्त रहस्य सुनूंगा, जहां नहीं समझूंगा, पूछ लूंगा । किस प्रकार क्या होता है, सब जान लूंगा । बड़े-बड़े अंक तो मुझ से सिद्ध नहीं हो सकते, पर टुकड़े-टुकड़े* करके समझ

प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जन्तवो ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसम्भृताम् ।
न वै यतेरन्नपुनर्भवाय ते भूयो वनौका इव यान्ति बन्धनम् ॥

(भा० स्क० ५-१६ अ० २५)

तुमहि निवेदित भोजन करहीं । प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं ॥२
शीस नवहिं सुर गुर द्विज देखी । प्रीति सहित करि विनय विपेखी॥३
कर नित करहि राम पद पूजा । राम भरोस हृदय नहिं दूजा ॥४
चरण राम तीरथ चलि जाईं । राम बसहु तिनके मन मांही ॥५
मंत्रराज नित जपहिं तुम्हारा । पूजहिं तुमहिं सहित परिवारा ॥६
तर्पन होम करहिं विधि नाना । विप्र जेवाई देहिं बहु दाना ॥७

सब करि मांगहिं एक फल, राम चरन रति होइ ।
तिनके मन मन्दिर बसऊ, सिय रघुनंदन दोउ ॥

(तु० रा० अ०)

* चतुर्विंशति तत्वानि पूर्वमुक्तानि यानि वै ।
जीवेश्वरौ द्विजा एते आत्मा नैव कदाचन ॥१२५
तत्त्वज्ञानाश्रयादित्थं नेति नेति विचारतः ।
सर्वस्थूलं त्यजन्तोऽलं सूक्ष्मान्वेषणतत्पराः ॥१२६

लूंगा। कविता लिखकर तुम्हें सुनाऊंगा और शुद्ध कर देने की विनति करूंगा। यदि इच्छा होगी तो गीत गाऊंगा या तुम्हारे गीत सुख से सुनूंगा।* यदि ऐसा हो तो जीवन सार्थक हो जावेगा। अष्ट-सिद्धि आदि तो विडम्बना-मात्र हैं।" ऐसे ही सोचते-सोचते उसको हसी आ गई और सोचने लगा. "इतने दिन बाद अब मैं पागल हुआ। यह जो मेरे मन की बातें हैं, हे पिता माता क्या तुम ने सुनी हैं? मैं तेरा स्पष्ट सुन सकता हूं, तो तुम बधिर÷

भवेयुश्चेन्निरासक्तास्तत्वातीतं पदं गताः।
तदा मां सर्वदा तत्र भवन्तो द्रष्टुमीशते ॥१२७
अतीतः सर्वतत्वेभ्यस्तथैव पञ्चकोषतः।
सच्चिदानन्दरूपोहमिति जानीत निश्चितम् ॥१२८

(धी० गी०)

* ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम् ॥

÷ सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ (गी० १३-११)

प्राणस्य प्राण उत चक्षुश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो ये मनो विदुः।

(छां० उ० ४-१८)

शब्दातीतोऽसि कर्णस्य श्रुतिशक्तिप्रदोऽपि हि।
त्वचि स्पर्शप्रदोऽपि त्वं स्पर्शातीतोऽसि सर्वथा ॥२२

कैसे हो सकते हो ? कभी नहीं। जो जो मैंने कहा तुमने सब सुना। तब हे बाप, उत्तर क्यों नहीं देते हो?" इसी समय अपने शिशु की "बाआ बाआ" उसने सुनी। उससे रहा नहीं गया। आंखें खोलीं तो रमणी की गोद में बालक को देखा॥

* * *

दृष्टिशक्तिप्रदोऽप्यक्ष्णोर्दृष्ट्यतीतोऽसि हे गुरो।
रसातीतोसि रसनाया रसशक्तिप्रदोऽप्यलम्॥५३
घ्राणातीतोऽसि भगवन् घ्राणाघ्राणप्रदोऽपि सन्
सर्वतत्त्वादिरप्यत्र तत्त्वातीतोऽसि विश्वभृत्॥५४
प्राणस्य प्राणरूपस्त्वं बुद्धेर्बुद्धिर्मनोर्मनः।
प्राणबुद्धिमनोभिस्त्वं तथापि नहि गृह्यसे॥५५
अनाद्यनन्तं विश्वं हि त्वय्येव विद्यतेऽनिशम्।
कदापि च न तत्र त्वमहो तव विचित्रता।५६
दयाप्रदर्शनायैव साधकानां दयामय।
एतत्सगुणरूपत्वं दधासि भक्तवत्सल॥५७
अपारकरुणादेव तवास्मासु ततो वयम्।
इदमानन्ददं रूपं दृष्ट्वा यामः कृतार्थताम्॥५८

(सू० गी० पृ० ६७)

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति सर्वं नहि तस्य वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥

(दै० मी० पृ० १४४)

वह हाथ में दूध का बर्तन लेकर पति के मुख को देखती हुई आंसू बहा रही है। वह दोनों के मुख को देखता रहा और मुख से बात नहीं निकली। दोनों आंखों में पानी भर आया। बालक के मुख को देख कर सोचने लगा कि "यह जीव शिशु चित्त को इतना आकर्षण करता है कि इसके लिये प्राण भी दे सकता हूं। पर मैं इससे कुछ भी नहीं मागता। ऐसा निःस्वार्थ बन्धन जिसने सृजन किया है वह अन्ततः हमारे ही समान होगा। यदि मैं बावा कह कर उसको पुकारूं तो वह आंखें खोलेगा और मुझे प्रसन्न करेगा। मैं तो आंख मूंद कर बैठा हुआ था और 'नहीं बोलूंगा' कह के सङ्कल्प किया हुआ था। इस ने बावा कह कर मेरा सङ्कल्प भङ्ग कर दिया और मेरा हृदय आनन्द से उछलने लगा। किस साधन से मैं उसका पुत्र होऊं और बावा कहकर उसका ध्यान आकर्षण करूं" ॥

* * *

फिर रमणी की ओर देखा जो सोने की प्रतिमा (के समान निश्चल) आंसू बहा रही थी। वह मन में सोचने लगा। "मैं इसके लिये निठुर हुआ। अथाह, बिना किनारे के, समुद्र में इसको छोड़ (बहा) दिया, इसको छोड़ कर वन में चला आया, पर यह मुझे छोड़ कर घर नहीं जा सकती है। बालक को गोद में लेकर दूध पिलाकर मेरे प्राण बचाती है। जिस बन्धन से मैंने इसे बांध रक्खा है उसी बन्धन से मैं ईश्वरको भी बांधूंगा। जैसे मुझको 'बाबा बाबा' कह कर बालक ने चैतन्य किया है, मैं भी अपने

बाप को चैतन्य करूंगा। मैं सरल* होऊंगा, और उसके मुख की तरफ देखूंगा और बाबा बाबा कह कर पुकारूंगा॥"

अपनी स्त्री से कहा, "मेरे आगे बैठो"। स्त्री बैठी और उसने हाथ में दूध दिया। (पुरुष) सन्तान के मुख को सतृष्ण देखता रहा और मन में बहुत कुछ सोचने लगा।

"प्रभु, यदि तुम पुत्र का रूप धरकर आओ तो मैं तुम्हारा भजन कर सकता हूं, मैं कभी तुमसे विरक्त न हूंगा और मैं तुमसे कुछ मांगूँगा भी नहीं। रात-दिन तुमको गोद में लेकर घूमूंगा। तुम्हारे मुख के आधे-आधे बोल सुनकर रात-दिन सुख के सागर में रहूंगा। यदि भगवान् मेरे पुत्र होते तो रात-दिन उनको प्यार करके भी इच्छा पूरी नहीं होती।"+

---

* आर्जवं ह्रीरचापलम्॥ (गी०)

÷ कदा वृन्दारण्ये नवघननिभं नन्दतनयं,
परीतं गोपीभिर्वरुचिमनोज्ञाभिरभितः।
गमिष्यामस्तोषं नयनविषयीकृत्य कृतिनो
वयं प्रेमोद्रेकस्खलितगतयो वेपथुभृतः॥
कदा वृन्दारण्ये विमलयमुनातीरपुलिने
चरंतं गोविन्दं हलधरसुदामादिसहितं।
अये कृष्ण स्वामिन् मधुरमुरलीवादनविभो
प्रसीदेत्याक्रोशन् निमिषमिव नेष्यामि दिवसान्॥

(सु० र० भा०)

फिर रमणी के मुख की ओर देखता है जिसमें माधुरी की छटा छा रही है। कहने लगा—"हे प्राणप्रिया, क्या तुम वही हो जिसे मैं भजन करने को ढूंढ रहा हूं ? हे प्रिया, सुनो, तुम भगवान् होओ। देखो मैं किस प्रेम से तुम्हारी पूजा करता हूं। हे भगवान्, तुम मेरी नारी होकर आओ, देखो, मैं कैसे हृदय खोल कर तुम्हारी पूजा करता हूं।"

क्षण-भर पुरुष नीरव रहा। फिर धीरे-धीरे कहने लगा—"रमणी-रूप से भक्ति नहीं होगी। क्योंकि पुरुष कर्ता (प्रभु) है और प्रकृति आधीन है।* सुन प्रिये, मैं तेरा पति हूं। मेरी पूजा करने में तुझे कोई दोष नहीं है। मुझको पूजकर मुझे शिक्षा दो कि मैं उस (ईश्वर) की पूजा कैसे करूँ। मेरे जितने भी दोष हों उनको भूल जाओ और मुझमें जितना तेरा प्रेम है सब को जाग्रत करो। मुझे अपने अन्तःकरण में भगवान् समझकर मेरी पूजा

एह्येहि वत्स नवनीरद कोमलाङ्ग
चुम्बामि मूर्धनि चिराय परिष्वजे त्वाम्।
आरोप्य वा हृदि दिवानिशमुद्वहामि
वन्देऽथवा चरणपुष्करकद्वयन्ते ॥ (दें० मी० पृ० ५४)

* मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥ (गी० ९-१०)
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ (गी० ९-८)

करो। गन्ध-पुष्प लाकर मेरी पूजा करो, और मैं देखता हूं। क्षण-भर इस प्रकार सेवा करो, मैं सेवा सीखकर भजन करूँगा। जैसे तुमने मुझे (प्रेम के बन्धन में) बाँध रखा है वैसे ही मैं भी उस (ईश्वर) को वश करूँगा।"

* * *

आनन्द से रमणी दौड़ी और पूजा की सामग्री ले आई। परन्तु प्रेम के तरङ्ग* में उससे सेवा नहीं हो सकी। चरण धोते हुए वह कांपने लगी और फिर पति के मुख को देखकर पुकारकर रो पड़ी। अटल पुरुष द्रवित हो गया और प्रेम से गद्गद होकर स्त्री की आंखों को चूमने लगा और उसको तीनों ही लोक सुखमय दीखने लगे।

फिर सोचा—'यही तो प्रीति महाशक्तिधर है। इसीसे परमेश्वर को बांधूंगा।× जगत् में ऐसी शक्ति और नहीं है। यदि बांधा जायगा, तो ईश्वर प्रीति ही से बांधा जावेगा।+

---

* शान्तिक भाव—ते स्तम्भस्वेदरोमाञ्चाः स्वरभेदोथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रुपातश्च इत्यष्टा शान्तिकाः स्मृताः॥
(चै० च० पृ० ५५६)

× रध अर्चने का विलोम धर = पकड़ना, धारण करना इत्यादि। मूल प्रकृति राधा–(परा)। ययेदं धार्यते जगत्। (गी० ९-७)

+ एवं संदर्शिता ह्यंग हरिणा भृत्यवश्यता।
स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे॥ १६॥

अतएव हे परमकारण ईश्वर, सुनो, मैं प्रेमडोर से तुम को बांधूंगा। यदि तुम इसमें मेरी सहायता नहीं करोगे तो मैं तुमसे प्रीति कैसे कर सकूंगा। मनुष्य के सङ्ग प्रीति करने के लिये तुम्हें मनुष्य होना होगा।* तुम मेरे प्रभु या पिता, भाई, भगिनी या

नेमं विरिंचो न भवो न श्रीरप्यंगसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात् ॥ २० ॥
नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥

(भा० १० स्क) यशोदा का दामबन्धन

बन्धनानि बहूनि सन्ति प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत्।
दारुभेदनिपुणोपि षडंघ्री र्निष्क्रियो भवति पङ्कजबद्धः ॥
स्वमातुः खिन्नगात्राया विस्रस्तकवरीस्रजः।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयासीत्स्वबन्धनः ॥

* यद्यद्धिया त उरगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥

(भा०)

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥ (गी०)

पति-पुत्र-सुहृद्-भ्रातृ-पितृवन्मित्रवद्धरिम्।
ये ध्यायन्ति सदोद्युक्तास्तेभ्योऽपीह नमो नमः ॥

(नारायणव्यूहस्तव)

यदा त्वहं देवयोनौ वर्तामि भृगुनन्दन।
तदाहं देववत्सर्वमाचरामि न संशयः ॥

प्राणनाथ या माता होओ। या बन्धु या दुहिता या पुत्र होओ। या मनुष्य होकर उदय होओ। अपने रूप और गुण से मेरे प्राणों को हरो। अपने शीतल चरणों में मुझे आकर्षित करो, तभी तो मैं चरणों में गिरकर, जैसे नारी पति के मुख को देखकर रोती है, रोऊँगा। अश्रुजल से आपके चरण धोऊँगा। आपके वचन सुनकर प्राण शीतल करूँगा।

"तुम निराकार हो या तेजोमय, मेरा इस से कोई हानि-लाभ नहीं। मेरा तो उद्देश्य केवल आपको पाने का है। निराकार से कैसे मिला जाय? वह तो (वटवृक्ष) कालागाछ के सङ्ग ब्याह के सदृश है। (प्रतिमा विवाह?)* ऐसी ही प्री॰

यदा गन्धर्वयोनौ वा वर्तामि भृगुनन्दन ।
तदा गन्धर्ववत् सर्वमाचरामि न संशयः ॥
नागयोनौ यदा चैव तदा वर्तामि नागवत् ।
यक्षराक्षसयोन्योस्तु यथावद् विचराम्यहम् ॥
मनुष्ये वर्तमाने तु कृपणं याचिता मया ।
न च ते जातसंमोहा वचो गृह्णन्ति मोहिताः ॥

(म० भा० उद्यो० ५४)

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥ (गी०)

* जिसका कोई रूप नहीं है, केवल तेज ही में प्रकाश पाता है, ऐसे से व्याह करना, और केले के पेड़ के साथ व्याह करना समान ही है, क्योंकि दो में से किसी को भी सुख नहीं है।

तेज को वरने की है। जो निराकार से प्रेम करते हैं, वे मुख से तो प्रेम कहते हैं, परन्तु प्रेम क्या वस्तु है, यह नहीं जानते। कोई आपको तेजोमय स्मरण करके सिर पीटते हैं और कहते हैं कि हम ईश्वर से प्रेम करते हैं। प्रेम का बहाना तो करते हैं, परन्तु वास्तव में डरते हैं। मस्तक कूटकर जिसको प्रसन्न किया जाय, वह तो बहुत हीन, निंदय और निष्ठुर होगा, और ऐसे को तुम मन में असुर समझते हो। भय बिना प्रेम नहीं होता। मुख से तो प्रेम कहते हो और मन में डरते हो, ऐसे प्रेम से मेरा प्रयोजन नहीं।" ऐसा कहते-कहते वह स्वप्न देखने लगा कि एक वन में कई एक नारी हैं।

पांच सखियों की सभा

रूप और रस की खान, भुवनमोहनी, जिसमें शैशव और यौवन का मेल होरहा था ऐसी एक नई बाला मालती लता के नीचे फूलों की सेज में अचेतन पड़ी हुई थी। उसके निकट बैठकर एक रूपवती युवती पंखा कर रही थी। बाला के मुख में जो तरङ्गें खेल रही थीं, उनको वह देख रही थी।

क्रम-क्रम से, न जाने कहां से, तीन और नारियां वहां आगईं और उस बाला के चारों ओर बैठकर उसे देखने लगीं, परन्तु कोई बोली नहीं।

रमणियों का मेला यह दैवयोग से मिल गया था। सब ही उस अचेतन बाला को देख रही थीं और एक मन से उसकी सेवा कर रही थीं।

अचेतन बाला ने आंखें खोलीं और एक-एक के मुख की ओर देखा। नहीं पहिचानकर पूछने को हुई, पर लज्जा से पूछ न सकी।

जितनी भी सखियां थीं, सब ही युवती और रूपवती थीं। और वह बाला सरल स्वभाववाली अबला थी। सुस्निग्ध नयन से परस्पर देखने पर उनमें सखीभाव उत्पन्न हो गया। एक सखी ने पूछा—"तू क्यों अचेत पड़ी हुई है, क्या तेरा नाम और कहां तेरा घर है? किसके हृदय को शीतल करती है? और तेरा प्राणेश्वर कहां है? इस घोर अरण्य में कैसे आई है? और क्यों अचेतन पड़ी हुई है? तेरे मुख की प्रसन्नता को देखकर यही प्रतीत होता है कि तूने अपना प्राणधन पा लिया है।"

यह बात सुनकर वह बाला लज्जा से कातर होकर धीरे-धीरे पूछने लगी—"हे भुवनमोहनी धनियो, तुम कौन हो? मुझे अपना परिचय दो।"

किसी ने किसी को कभी देखा तो था ही नहीं, इसलिये एक-दूसरी का मुख ताकने लगीं।

एक नव बाला, जिसका नाम रङ्गिनी था, निज कहानी कहने लगी। आग्रह करके कहानी सुनने को सब नारियां बैठ गई। मधुर मुस्काकर सखियों का मुख देखकर धीरे-धीरे बाला कहने लगी।

रसरङ्गिनी

*(शान्तरस)

रसरङ्गिनी ने कहा—"मेरे घर के चारों ओर एक सुन्दर बगीचा था, जिसे मैं झरोखे से देखा करती थी। कभी-कभी तो चंचल पक्षियों को (एक प्रकार के छोटे-छोटे पक्षी जिन्हें चुड़ुका कहते हैं) बगीचे में दौड़ते हुए देखती थी। एक दिन

शान्तरस

नास्ति यत्र सुखं दुःखं न द्वेषो न च मत्सरः।
समः सर्वेषु भूतेषु स शान्तः प्रथितो रसः ॥२६॥

(भ० र० सि० पृ० ३२४-३२५)

वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः शमिनां स्वाद्यतां गतः।
स्थायी शान्तिरतिर्धीरैः शान्तिभक्तिरसः स्मृतः ॥४॥

(भ० र० सिंह०)

विभावादि द्वारा शमतासम्पन्न भक्तों के हृदय में जो स्थायी शान्त रस का आस्वादन होता है, उसे शान्ति-भक्तिरस कहते हैं। जिसमें

और जिसके द्वारा प्रेम विभावित हो अर्थात् आस्वाद्यरूप से प्रकाशित हो, वह विभाव कहलाता है ।

यद्यपि शुद्धायाः सामान्या स्वच्छा शान्तिरिति भेदत्रयमुक्तं, तथापि शान्तेरेव रसत्वप्रतिपादनं, सामान्याया अस्फुटत्वात् स्वच्छायाश्चञ्चलत्वाद्रससामग्रीपरिपोषो न स्यादित्यभिप्रायेण ॥

शान्तरस में—(१)श्रीकृष्णनिष्ठा और (२) तृष्णा का त्याग ये दो गुण हैं ।

उदाहरण

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ गी०

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वतः ॥ गीता ६

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखे न गुरुणापि विचाल्यते ॥ (गी० ६)

विभाव के दो रूप

आलम्बन विभाव		उद्दीपन विभाव
(जिसमें प्रीति विभावित हो)		(जिसके द्वारा प्रीति उद्दीपित हो)
विषयालम्बन	आश्रयालम्बन	(जैसे श्रीकृष्ण के आभूषणादि श्रीकृष्ण का स्मरण कराते हैं ।
(प्रीति जिसके उद्देश्य से हो)	(प्रीति जिसके आधार से हो)	(नृत्यादि भी उद्दीपन कराते हैं, उसको अनुभाव कहते हैं)
(श्रीकृष्ण प्रेम श्रीकृष्ण	(श्रीकृष्ण भक्त-गण)	

अकस्मात् देखती हूं कि एक *दो दल का फूल मेरे सन्मुख खिल रहा है। उसकी एक कली लेकर देखती हूं तो उसकी चित्रकारी की तुलना नहीं कर सकती। उसके दल-दल में देखने से ज्ञात हुआ कि किसी ने कैसा सुन्दर उसे बनाया है। बलिहारी है उस रूप देने वाले को। देखो जितने भी फूल हैं, कैसे सुन्दर बने हैं और उनको कैसा सुन्दर रूप दिया है। मैं दिन-रात यही सोचती थी कि जो इन फूलों को वन में बैठकर बनाता है उसको अवश्य पकड़ूंगी। जो कोई भी मुझे सन्मुख मिलता था, उसी से उसका परिचय

भाव—भक्तिरस में स्थायी माने जाते हैं। साधन भक्ति में स्थायी नहीं माने जाते।

शान्तरस के उपासक—

सनकादि, कपिल मुनि, दत्तात्रेय आदि। भीष्मपितामह भी शान्तरस के उपासक थे।

तमिममहमजं शरीरभाजां, हृद्यधिष्ठितमात्मकल्पितानाम्।
प्रतिदृशमिवानेकधाऽर्कमेकं, समधिगतोस्मि विधूतभेदमोहः।

(म० भा०)

प्रेमांजनच्छुरितभक्तिविलोचनेन,
सन्तः सदैव हृदयेऽपि विलोकयन्ति।
यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणप्रकाशं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ (ब्रह्मसंहिता)

* एक प्रकार का सामयिक पुष्प जाड़ों में होता है।

पूछती थी जो फूलों को बनाता है। कोई कहता था—अबोध बालिका, वह सब अपने आप ही होता है। मैं उससे कहती थी, 'मन लगाकर तुमने *चित्र-विचित्रता नहीं देखी। यह देखो, एक ही फूल का पेड़ है, और एक ही उसका मूल है। अपने आप ही होता तो एक ही रूप होता। इसमें दो वर्णों के फूल क्यों हैं? प्रति दल में कितनी कारीगरी है। कोई मन लगाकर देखे तो जाने। और यह सब सौन्दर्य अपने आप होता है, यह कहने का भ्रम न रहे।"

कोई कहता—"बाला, क्या जाने कौन बनाता है, ढूंढ़ने से क्या फल?"÷ मैं मन में सोचती थी कि 'वह मुझे मिलता तो मैं उसके सङ्ग कालक्षेप करती। कैसे क्या होता है, कहां से रङ्ग लाता× है और कैसे फूलों में मलता है, किस लेखनी से

---

* भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥ (गीता ७-३)
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥ (गीता ७-५)
एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा॥ (गीता ७-६)

÷ अतर्क्यैश्वर्य।

× निरुपादानसंभारमभित्तावेव तन्वते।
जगच्चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघाय शूलिने॥ (क० कु० पृ २४)

केशव कहि न जाय क्या कहिये—ध्रु०

शून्य भीत पर चित्र रंगनहि विन तनु लिखा चितेरे।

धोये मिटे न मरे भीति दुःख पाइय एहि तनु हेरे॥

(तुलसी विनयपत्रिका)

Translation by Bhagawandass

A silent sleeper in this Seething Sea !
Plain we behold & yet speech may not be.
We wonder, wonder, search & then we find,
Dont find it in the silence of mind.
Who will believe the marvel, if we say,
Though it be plain, as the light of day,
That on the boundless wall of nothingness;
A Painter full of skill, but bodiless,
Limus phantom figures that will never fade,
Though to efface them time has ever essayed.
Limus forms of countless colours ceaselessly,
A serene sleeper of this stormy sea,
(Science of Peace)

किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनम् ।

किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ॥

अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्था हतधियः ।

कुतर्कोऽयं कांश्चित् मुखरयति मोहाय जगतः ॥ (महिम्न ५)

लिखता है, उससे पूछती और उसके ही मुख से सुनती। *

"एक बाला जो बड़ी मधुर-भाषिणी थी, मुझसे बोली कि "एक पुरुष जिसका नाम रसिकशेखर× है, वह निर्जन में बैठकर

* तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः॥ (गी० ४-३४)
तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणंति ते भूरिदा जनाः॥
(भा० रा० प० आ)

आत्मैवेदमग्र आसीत् पुरुषविधः।
स वै नैव रमते तस्मादेकाकी न रमते॥ (छां० उ० १ अ)

× "आपो ज्योतीरसोमृतं ब्रह्म"—स एव रसरूपो ब्रह्मौषधितृणानाञ्च रसरूपेण तिष्ठसि। रसोऽहमप्सु कौन्तेय॥ (गीता)
"रसो वै सः", रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।
रस एव परं ब्रह्म रस एव परा गतिः।
रसो हि शान्तिदः पुंसां रसो रेत इति स्मृतः॥
(ब्रह्मांड पुराण)

निर्गुणं ब्रह्म सगुणं निजानन्दाय जायते।
प्रकाशते च प्रकृतिं पुरुषालिंगनादयम्॥२८
रसो वै स इति श्रुत्या स आनन्दो रसो मतः।
स श्रृंगार इति प्राज्ञा जानन्ति परमर्षयः॥२९
शुद्धश्च मलिनश्चासौ श्रृंगारो द्विविधो रसः।
ब्रह्मानन्दमयः शुद्धो विषयानन्दकोपरः॥३० (सू० गी०)

फूलों को बनाता है।' आहा कैसा मधुर नाम 'रसिक शेखर' है, जिसे सुनकर मेरे कान शीतल हो गये। मैं अबोध बालिका थी, यह कुछ नहीं जानती थी कि इस नाम ने मुझे क्यों इतना सुख दिया। मैं यह भी नहीं जानती थी कि उसका कितना रूप है और वह शिर से पैरों तक कितना प्रियदर्शन और मधुर है। उसको सोचते-सोचते कितनी छवि चित्त में आती थी और सुख के तरंग उठते थे!

'मैं इस वन में उसको ढूंढ़ती फिरूंगी, जहां कहीं भी उसे पाऊं। मेरे मन में दिन-रात यही अभिलाषा रहती है कि आड़ में खड़ी रहकर फूलों को रंगते हुए देखूं। कितने फूल-से दल ओस से सरस हो रहे हैं और कितनी कलियां फूल रही हैं! इन को देख मन में यही आता है कि वह फूलों में रङ्ग देकर अभी भाग गया है। मैं यह समझकर कि वह निकट ही है, पकड़ने को दौड़ती हूं। अगर कोई निकुञ्ज मिल जाय तो दौड़कर चुपके से उसके ओट में जाकर झांककर देखूं, कदापि वह दिखाई पड़ जाय। रसिकशेखर को बगीचे में खोजते-खोजते मैं बड़ी कातर होगई। रात-दिन यही सोचती और खोजती हूं परन्तु कहीं नहीं पाया। कब आता है, किस जगह बैठता है और किस पथ से चला जाता है, कुछ पता नहीं। कुञ्ज-कुञ्ज में खोजती फिरती हूं। परन्तु कहीं भी उसका पदचिन्ह नहीं पाया। वह छिपकर चित्रण का काम करता है और इस भय से उनको छिपाकर रखता है कि कोई देख न ले। ऐसे मनुष्य को देखने की इच्छा द्विगुणित होगे

जाती है। कोठे के ऊपर की खिड़की खोलकर, फूलों के बगीचे की तरफ देखती हूं, और इस आशा से स्पन्दहीन* होकर खड़ी देखती हूं कि अकस्मात् कहीं वह दृष्टिगोचर हो जाय।

"अन्त में निराश क्षीणकलेवर और कातर होकर मन-ही-मन सोचा यह सब मिथ्या है। मेरा भ्रम वृथा है। यह केवल घोर विडम्बना-मात्र है। सोचते-सोचते प्राण द्रवीभूत हो गया और आंखों से आंसू निकल पड़े। इतने ही में मैंने छाया के समान रसिकशेखर 'हरि' को बगीचे में बैठा हुआ देखा।

* * *

'दौड़ कर गई तो, पायजेब की ध्वनि सुन कर वह वन में छिप गया। कितना ही ढूंढा पर पता नहीं लगा और मैं दुःख से लौट आई। मैं जागती थी या स्वप्न देखा, क्या सत्य ही मैं ने उसको देखा, इसका कोई निर्णय नहीं कर सकी। या तो मैंने उसके ध्यान में पागल हो जाने से ही ऐसा देखा और या मायादेवी ने ही मुझे ठगा। फिर भी आशा ने मुझे नहीं छोड़ा, मैं खोजती ही रही। झरोखे से खड़ी होकर देखती थी और 'हे रसिकशेखर' 'हे गुणसागर' कह कर रो रो कर पुकारती थी। न जाने क्यों

---

* स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ॥ (गी० ५-२७)
अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ (गी० ८-१४)

इतना परिश्रम करने पर भी मुझे क्लान्ति का ध्यान नहीं होता था। वरञ्च खोजते खोजते चित्त में सुख मिलता था, मन में शान्ति मिलती थी। बहुत दिनों पीछे देखा कि वह वन में अकेला बैठा हुआ कुछ कर रहा है। बलरामजी कहते हैं जो चुपके चुपके* जावेगा वही उसको देख सकता है।

* * *

"पैरों की अंगुलियों पर भार देकर मैं धीरे-धीरे चली। पायजेब उतार कर डरते २ आगे को बढ़ी। मार्ग में कहीं पकड़ी न जाऊं कह कर इधर उधर देखती जाती थी। गोपनीय मार्ग से होकर छिपते २ अन्त में कामिनी-लता के नीचे आ खड़ी हुई। यह तो समझी कि रसिकवर कुञ्ज के उस पार है, पर मन में यह चिन्ता हुई कि मैं अब क्या करूँ और क्या कहूं। मैं चुपके-चुपके सामने गई तो देखा कि कोई ÷भयङ्कर रूप धारण कर पेड़ से पीठ अड़ा कर बैठा है।

* * *

---

* शनैः शनैरुपरमेत्।

÷ रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥२३
नभस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो॥

(गी० ११-२४)

"उसको देख कर डर से प्राण उड़ गए और मैं स्तब्ध होकर खड़ी रही। उसका बड़ा शरीर अति भयंकर था जिसे देखकर मैं भय से थर-थर कांपने लगी, और यह समझी कि ये जो भी हों हमारी जाति के नहीं हैं। हम इनके संग नहीं मिल सकते हैं, यह तो एक स्वतन्त्र वस्तु है। उसके लोचन बड़े डरावने और दांत विकट थे। पास में एक खड्ग भी था। उस रूप को देखकर मैं डर से दौड़कर लौट आई। निराश होकर घर लौट कर भूमि में पड़ी रही और कहने लगी, क्या यही हमारे रसिकशेखर हैं जिनको देख कर भय से प्राण उड़ जाते हैं।

"मेरा रसिकशेखर से कुछ काम नहीं, न मेरा अपने प्राण बचाने से ही कुछ काम है। मैं जल में कूदकर प्राण छोड़ूंगी, ऐसा मन में दृढ़ निश्चय किया।

"इसी समय मैंने देखा कि एक प्रजाप्रति (तितली) उड़कर आया। वह ऐसा दिखलाई देता था कि अभी किसी ने उसे सुन्दर रङ्ग-कर छोड़ दिया है। कैसा सुन्दर बनाया है और कैसा रंग दिया है, मैं मुग्ध होकर देखती रही। उस चित्र को देखकर 'हे रसिकराय' कहकर मैं रो उठी। सोचने लगी कि इतना बड़ा शरीर, इतनी बड़ी अंगुलियों से उसने ऐसा सूक्ष्म चित्रित कैसे किया गया होगा

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥

(गी० ११-२५)

और कैसे लेखनी पकड़ी होगी! सोचा, मुझे भ्रम हुआ या किसी ने मुझे ठगा, इसका मैं अनुसन्धान लूंगी। इस समय मुझे भय ही क्या है, उसी के समीप जाकर पूछूंगी। उसके पास जाऊंगी, झगड़ा करूंगी और यदि वह मारने को दौड़े, तो मैं कहूंगी कि 'बालिका को मारेगा तो जग तेरे यश से भर जावेगा। मरूंगी कह के तो मैं तेरे निकट आई हूं। गला घोटकर मुझे मार। बचने से ही क्या फल है। मेरा रसिकशेखर असुर हो गया है।'

"मन को दृढ़ करके मैं धीरे-धीरे चली और छिपकर खड़ी हो गई। उसने मुझे नहीं देखा, पर मैं उसे देख रही थी और उसके हाव-भावों का निरीक्षण कर रही थी।

"हे सखी, वह चारों ओर देखकर और किसी को नजदीक न देख, क्रम-क्रम से अपनी अङ्ग का साज उतारने लगा। मैं देखकर स्तब्ध होगई। वह तो (मुकण्डा) मुखोस (mask) पहिनकर भयंकर हो रहा था। उसके बड़े-बड़े दांत बड़े-बड़े हाथ कुछ भी तो *नहीं थे। सबको फेंककर वह मनुष्य होगया और तब सूक्ष्म लेखनी लेकर एकाग्र चित्त से लिखने लगा× और मैं पीछे जाकर खड़ी हो गई।

* * *

---

* दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्य जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः॥ (गी० ११-५१)

× जगच्चित्रं समालिख्य स्वेच्छातूलिकयात्मनि।
स्वयमेव समालोक्य प्रीणाति परमेश्वरः॥ (कामकलाविलास)

"जिसको वह रङ्ग रहा था, वह एक अत्यन्त सुन्दर जङ्गली फूल था। उसे रंगकर उसने तृणों में रक्खा। कितने ही लोग आते जाते थे, परन्तु उसको किसी ने नहीं देखा, क्योंकि वह संसार के कामों में लगे हुए थे।* अपने आप ही बनाकर, बैठकर वह देखता था और उसकी आंखों से आंसू बहते थे। मैं खड़ी हूं यह भी उसको ज्ञान नहीं था। अपने ही आनन्द में अपने को भूला हुआ था। लेखनी द्वारा यत्न से सुगन्ध के छींटे फूल में देता था। हंसता था और क्षण में ही चौंक उठता था। फिर शम्बुक (घोंघी Shell) को लेकर रंगने लगा। अकस्मात् मुझे देख लिया तो त्रास से समुद्र में फेंक दिया और मुख नीचा कर लिया।

"वह लज्जित होकर मुख नहीं उठाता था। मुझे भी बड़ी लज्जा हुई और मैं शून्यमति होकर अपने को भूली हुई-सी शिर नीचा किये खड़ी रही।

* * *

"मैं थर-थर कांपती थी. मेरी छाती दुर दुर करके धड़कती थी, और मुख से शब्द नहीं निकलता था। हृदय में लज्जा और

---

* उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढ़ा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥
(गी० १०-१५)

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैव पश्यन्त्यचेतसः ॥ (गी० १५-११)

आतंक, आशा और आनन्द खेलते थे। मैं समझी मेरी अवस्था देखकर उसको शायद दया आगई। ईषत् हंसकर उसने इङ्गित (इशारा) से मुझे पास बुलाया। धीरे-धीरे मैं उसके नजदीक गई। उसने कुछ नहीं कहा। मैं स्तब्ध होकर, शिर नीचा किये खड़ी रही। क्षण-भर के पीछे उसने धीरे-धीरे पूछा—'किस प्रयोजन से आपका आगमन हुआ?' आहा, अमृत की धार जैसा उसका कंठ-स्वर था। हे सखी, मुझे मोह हो गया। मैं शिर नीचा किये किये चुपचाप खड़ी रही। सङ्गीत के समान मधुर वचन सुनकर मुझको आश्वासन हुआ। साहस बांधकर लज्जा छोड़कर मैंने कहा—'मुखोस (Mask मुकुण्ड) पहने आप बैठ रहे थे, इससे मैं भय के कारण नहीं आ सकी। मैंने कितना सोचा और कितना रोई और आ-आकर लौट गई।'

"वह कुछ कहने को हुआ, पर कहा नहीं। उसके मन को कौन जाने। क्षण-भर रुककर उसने फिर पूछा—'कैसे आना हुआ?'

"मैंने कहा—'आपके चित्रों को चारों ओर देखकर मैं मुग्ध हो गई और पूछने को आई हूं कि आप क्यों बनाते हैं और इन्हें क्यों छिपाकर रखते हैं। चित्र बनाने से आपको क्या सुख मिलता है। जिसके लिए बनाते हैं वह तो नहीं देखता। फिर इतना श्रम किसलिये?'

"रसिकशेखर कुछ क्षण मुख नीचा करके रहा, फिर ईषत् हंसकर कहने लगा—'लोग खुश होंगे और मेरे चित्रों को देखकर मेरी प्रशंसा करेंगे, इसलिये बनाता हूं।'

"मैंने कहा—'यदि ऐसा है तो सुचित्र बनाकर सागर में छिपाकर क्यों रखते हो ?'

"रसिकशेखर फिर शिर झुकाये रहा। फिर कुछ हंसकर धीरे-धीरे कहने लगा—'जो कोई मेरे चित्रों को देखकर खुश होगा, मैं जहां कहीं भी रखूं, वहां आप ही खोज लेगा। या चित्र अच्छे नहीं होते, इसलिये छिपाकर रखता हूं, जिससे उनका गौरव बढ़े। जो चित्रकार होगा, वह यह स्वीकार करेगा कि चित्रकारी के समान और सुख नहीं है। चित्र बनाने में मुझे बड़ा सुख मिलता है। मैं चित्र बना-बनाकर कालक्षेप करता हूं। तुम नवबाला ने उन्हें देख, आनन्द पाया है, इससे मेरा परिश्रम सफल हो गया।

* * *

"कहते-कहते वह अदृश्य होगया, मानो कोई छाया लोप हो गई। मैं सोच-सोचकर समझ नहीं सकी कि वह क्यों अकस्मात् चला गया। मैं समझ ही नहीं सकी कि वह कैसा मनुष्य है। मैं आश्चर्य में रह गई। शायद मैं अचेतन थी, इसलिये वह चला गया, अथवा मैंने स्वप्न देखा।

* * *

"फिर ढूंढ़ते-ढूंढ़ते उसको मैंने देख पाया। वह एकान्त स्थान में बैठा हुआ था। मैं भी उसकी बांई ओर बैठ गई। वह एकाग्र चित्त से हाथ में बुरुश (लेखनी) लेकर चित्रण कर रहा था। मैं इस डर से कि कहीं उसका हाथ कांपे, निस्पन्द होकर तिरछी दृष्टि से

देखती रही। चित्र पूरा हुआ तो उसने मेरे सन्मुख उसको रक्खा। देखा तो उसमें बहुत ही सूक्ष्म काम था। सूक्ष्म-से-सूक्ष्म जो काम थे, उन्हें मैं कुछ नहीं देख सकी तो मैंने आंखों में चश्मा लगाया (सूक्ष्मदर्शी कांच का यन्त्र)। तब देखा तो एक मक्खी के शिर में एक अति सूक्ष्म चित्र है। बलिहारी उस कारीगरी को। उस से मेरा अङ्ग पुलकित होगया।

"मेरी आखों से एक बूंद जल टपका और मैं मुख नीचा किये रही। उसी समय उसने एक धुर्ये का पत्ता बनाया। उसको मैंने हाथ में लिया। पत्ते में मानो चन्दन के छींटे लेखनी से दिये हैं। मैंने पोखर में जाकर कितना ही धोया, परन्तु दाग कैसे भी नहीं छूटा। मैं उसके मुख की ओर देखती रही। फिर मैंने उससे मृदु स्वर में कहा—'तुम्हें देखकर न जाने क्यों रोने को जी होता है।' इससे रसिक लज्जित होकर मेरे मुख की ओर देखने लगा। उसके मुख को देखा तो दोनों आखों में आंसू डबडबाये हुए थे। कौन जाने उसके मन में क्या था। आंखों से आंख मिलीं, उसने मुख नीचा कर लिया। मैं समझ न सकी कि शिर नीचा करके उसने धीरे-धीरे क्या कहा ?

* * *

"देखते-देखते एक मयूर आया और पूंछ फैलाकर नाचने लगा। उसके नाच को देखकर तालियां बजाकर वह ताल देने लगा. और मग्न हो कर देखने लगा। मैंने धीरे-धीरे कहा—'लोग तो कहते

हैं कि यह अपने आप ही होता है।' मेरी ओर उसने ऐसे देखा, जैसे व्यङ्ग करता हो, मुख से कुछ नहीं कहा।

"इसी समय एक छोटा पक्षी आम की डाल में बैठकर गाने लगा। वह कान लगाकर उसके मधुर गीत सुनने लगा। और उसके मुख में मीठी हंसी थी। उसी समय एक गधा रेंकने लगा और पक्षी उड़ गया। मुझको सुनाकर वह कहने लगा—'इस संसार में विपरीत वस्तु न होने से कभी-कभी रस का ज्ञान नहीं होता। अमावस्या विना चांदनी का भोग कौन कर सकता है? चांदनी का भोग कराने को अमावस्या हुई, परन्तु लोग नहीं समझते हैं। यदि लोग रोज ही पूर्ण चन्द्र देखें तो चांद को देखने से आनन्द न हो। लोग इस निगूढ़ रहस्य को न समझकर संसार में नाना प्रकार के दोष देखते हैं।' मैंने उनसे पूछा—'गधे के रेंकने में क्या कारीगरी है?' वह धीरे-धीरे कहने लगा कि सुन्दर और कुत्सित दोनों ही ईश्वर के बनाये हुए हैं और दोनों में ही उनका समान कौशल है।

* * *

"इसी समय एक जोड़ा कपोत और कपोती प्रीति करने को वहां आकर उपस्थित हुए। मुझको देखकर वह कुछ मुसकाया, और कौतूहल से उनका रंग देखने लगा। कपोत कपोती के सामने गला फुला कर वकम्-वकम् करता हुआ जाता था। यह रंग देखकर, वह मुख ढककर और हंस कर, मेरे मुख की ओर देखने लगा।

"इसके बाद दो बिल्लियां युद्ध करने को आकर सामने खड़ी हुईं। विपरीत दिशाओं में वे रहकर एक-दूसरे को ताकती थीं और क्रोध से विकट गर्जन करती थीं। इस भाव को देखकर वह धैर्य्य छोड़कर हंसते हुए भूमि में लोट-पोट हो गया। मैं भी उसके संग हंसने लगी और आंखों से आनन्द के आंसुओं की धारा बह चली। यह सब देखकर हंसते-हंसते वह बड़ा ही चपल हो गया। क्रम-क्रम से उसके और मेरे बीच का संकोच दूर हो गया। उसने कहा—'यदि तेरे मन में रस आस्वादन करने की है तो आओ वन में घूमें।' रसिकशेखर उठकर चला और मैं उसके संग गई। उसी मार्ग से कोई पुरुष जा रहा था, रसिकशेखर उसके पीछे-पीछे चला, और चुपके-चुपके उसके पीछे पहुंचकर उसने अकस्मात् हुंकार छोडी। डरकर वह विधाता को गाली देता हुआ भाग गया। मेरी ओर देखकर हंसते-हंसते उसको और भी डराने लगा।

* * *

"एक और पुरुष को उसने डराया, परन्तु वह भागा नहीं। भय न पाकर वह पीछे फिरा और हंसकर देखता खड़ा रहा।* इससे

---

* नमो नरकसंत्रासरक्षोमण्डलकारिणे।
संसारनिम्नगावर्ततरिकाष्ठाय विष्णवे॥
अतसीपुष्पसंकाशं पीतकौशेयवाससम्।
ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम्॥

रसिक अप्रतिभ होकर मेरे समीप आया। मैंने कहा—'जैसे चतुर हो, वैसा ही हुआ है।' रसिक ने कहा—'मैं ऐसे ही भय दिखाता हूं और गाली खाकर भी हंसता हूं। कभी भय दिखाने पर भय न पाकर कोई मुझे भी हंसता है। प्रायः देखा जाता है कि लोग भय पाकर भाग जाते हैं और पीछे नहीं देखते हैं। जो फिरकर देखते हैं, वे तो नहीं डरते। उनके निकट मैं हार मान-कर लज्जा पाकर लौट आता हूं। इस कुंज वन में मैं ऐसे ही खेल कर रात-दिन व्यतीत करता हूं।'

* * *

"यह देखो कोई धूलि में पड़ा हुआ दुःख से रो रहा है। चलो, उसके समीप जाकर उसके ही मुख से सुनें, वह क्यों रो रहा है।' हम दोनों ने उसके समीप जाकर उससे कहा—'इस सुखमय वृन्दावन में सभी तो सुख से हैं, केवल तुम ही दुःखी दिखाई देते हो। तुमको क्या दुःख है?' उसने कातर मुख से मेरी ओर देखकर कहा—'यहां क्या सुख है? जहां मांस और मद्य नहीं, वहां क्या कभी जीव को सुख मिल सकता है।'*

"मैंने उससे कहा—'देखो, कैसा सुगन्धयुक्त मन्द मृदु वायु बह रहा है। शान्त शुद्ध स्थान है, शुक, सारिका, पिक और भृङ्ग सुख से गा रहे हैं।' उसने हंसकर कहा—'इन सब से सुख होता

---

* यावज्जीवेत्सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥ (नास्तिकचार्वाक)

है, यह केवल कवियों की उक्ति है।* मैं तो यह कभी नहीं मान सकता कि मांस और मद्य के बिना कुछ सुख हो सकता है। यदि मेरा कुछ उपकार करो तो मुझे उस स्थान में ले चलो, जहां मद्य मांस मिले और मैं खा-पीकर अपने प्राण रक्खूं।'×

* * *

"रसिक ने मेरी ओर देखकर कहा—'जिसकी जैसी रुचि होती है, वह उसी स्थान को पाता है। कोई तो यहां आकर जाना नहीं चाहता है, वह पुरुष अवश्य यहीं रह जाता है, किसी को इस स्थान में आकर अच्छा नहीं लगता, वह अपने देश को फिर जाता है।+ आने-जाने से हृदय का शोधन होता है, फिर जाने की इच्छा नहीं होती।'

* * *

---

* अभ्यासाद्य उपाधिजात्युनुमितिव्याप्त्यादिशब्दावले-
जन्मारभ्य सुदूरदूरभगवद्वार्ताप्रसंगा अमी।
ये यत्राधिककल्पनाकुशलिनस्ते तत्र विद्वत्तमाः
स्वीयं कल्पनमेव शास्त्रमिति ये जानन्त्यहो तार्किकाः ॥४॥
(चै० चन्द्रोदयम् पृ० २४)

× अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्म्मस्याऽस्य परंतप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ (गी०)

\+ श्रद्धामयोयं पुरुषः यो यच्छ्रद्धः स एव सः। ('गी० १७-३)
यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजन्त्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवेति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ (गी० ८-६)

"फिर रसिकशेखर ने मेरी ओर देखकर कहा—'यहां ठहरो, मैं अभी आता हूँ।' ऐसा कहकर वह चला गया।

"मैंने देखा कि सामने काठ की पुतलियां नाना प्रकार के खेल* कर रही हैं। कोई पुतली दूसरी को आलिंगन करती और कलह करती हैं। कोई धूल लेकर यत्न से रखती है, तो कोई मोतियों को फेंक रही है। कोई अनर्थक रो रही है, कोई मिथ्या काम करने में ही सुखी है। कोई अपने ही हाथों से विष खाकर पीछे औरों को दोष लगाती है। कोई बाजार में बैठकर खरीद-फरोख्त कर रहे हैं और बड़े व्यस्त दिखाई देते है। उनको अब सांझ होगई है और घर जाना होगा, यह भी ज्ञान नहीं है।+ कोई साधु गोद में कथा (पुराण) लेकर दाँत पीस रहा हैं और अन्न-

---

यांति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्यां यान्ति मद्याजिनोपि माम् ॥
(२५-६ गीता)

आब्रह्मभुवना लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ (गी० ८-१६)

* क्वचिद्विद्वद्गोष्ठी क्वचिदपि सुरामत्तकलहः।
क्वचिद्वीणानादः क्वचिदपि च हा हेति रुदितम् ॥
क्वचिद्रम्या रामा क्वचिदपि जराजर्जरतनु-
र्न जाने संसारः किममृतमयः किं विषमयः ॥ (सु० र० भा०)

+ (उड़ जा रे पखेरू दिन तो रह गया थोड़ा)

भोजी की ओर मुँह उठाकर अति घृणा की दृष्टि से देख रहा है। कोई अपनी प्रतिमा बनाकर भक्ति-भाव से पूजा कर रहा है और प्रतिष्ठा की अग्नि जलाकर उसमें सर्वस्व स्वाहा कर दे रहा है।* कोई अपना कार्य साधन करके दूसरे का वेतन चाहता है। कोई दूसरे के कन्धे में चढ़ने की लालसा से भूमि में गिर रहा है। एक अन्धा दूसरे को मार्ग दिखाते हुए दोनों गढ़े में गिर रहे हैं।× कोई लंगड़ा होकर पर्वत लांघने के लिये दूसरे को अपने कन्धे पर बिठा रहा है। कोई बोझ लेकर पानी में कूदकर बीच धार में डूब मर रहा है। कोई बोझ लेकर नौका में चढ़कर अनायास ही पार चला जा रहा है। कोई उड़ने के लिये देह शीर्ण कर रहा है,

---

* हूं हू' हूमिति तीव्रनिष्ठुरगिरा दृष्ट्याप्यतिक्रूरया
दूरोत्सारितलोक एष चरणावुत्क्षिप्य दूरं क्षिपन्।
मृत्स्ना .लिप्तललाटदोस्तटगलग्रीवोदरोराः कुशै-
र्दीव्यत्पाणितलः समेति तनुमान्दम्भः किमाहो स्मय ः॥

(चै० चन्द्रोदय २'८)

× अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पंडितंमन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥

(कठ० उप० द्वि० व०)

न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णु' दुराशया ये बहिरर्थमानिनः।
अन्धा यथान्धैरुपनीयमाना वागीशतन्त्यामुरुदाम्नि वद्धाः॥

(भ० रत्नावली प्रह्लाद)

परन्तु उड़ नहीं सकता है।+ कोई भार लेकर पुष्प-विमान में चढ़कर अनायास ही उड़ा जारहा है।* पुतली-पुतलियों को देखकर मैं हँसते हँसते मर गई। इस रंग को यदि रसिकशेखर देखता तो कितना हँसता। कहां छिप गया और किस काम को गया, अब तक नहीं लौटा। ढूँढते-ढूँढते मैंने उसे एक कुंज-वन में छिपा हुआ पाया। वह अपने को खूब छिपाकर बैठा था और तागे से बांधकर पुतली नचा रहा था।× जैसे जी में आता, वैसे पुतली नचाता था और देखकर हंसता था। यह देखकर मुझे हसी आई,

---

\+ हठयोग उड्डीयानबन्धः आसनसिद्धिः।

* त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि समाधिनावेशितचेतसैके।
स्वत्पादपोतेन महत्कृतेन कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम्॥
संसार निम्नगावर्ततरिकाष्ठाय ते नमः।
मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम्।
अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम्॥

(प्रह्लाद)

× सूत्रे मणिगणा इव। (गी०)
एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा॥ (गी० ७-६)
ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान् विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि॥ (गी० ७-१२)
त्रिभिर्गुणमयैर्भावैः। (गी० ३-२७)

और रसिक ने मुझे देख लिया। शरमाकर और कुछ हंसकर धीरे-धीरे मेरे पास आया और मैंने हंसकर कहा—'यह तो अच्छा नहीं, जो छिपकर लोगों को बहकाते हो।' वह हंसकर कहने लगा—'क्या खेल प्रकाश में आकर होता है ?'*

रंगिनी बोली—'हे रसिकशेखर, तुम्हारी आंखों में न नींद है, न देह में क्लान्ति है ? चरखी भी तो तुमसे हारती है। क्या घाट में, क्या मैदान में, क्या भूमि में, क्या आकाश में, तुम्हीं को देखती हूं। प्रभात के समय जब उठकर देखती हूं तो तुम्हें सारी रात जागे हुए ही पाती हूं और यही प्रतीत होता है कि तुम वन में, बाग में हर स्थान में विचरते ही रहे, क्योंकि तुम्हारे लिए कोई स्थान

---

* नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोयं नाभिजानाति लोकोयमजमव्ययम् ॥ (गी० ७-२५)

दारुनटी (कठपुतली)

तेरी है कछु गति नहीं दारु चीर को मेल।
करै कपट पट ओट में वह नट सब ही खेल ॥
वह नट सब ही खेल खेलि फिरि दूर रहै है।
ह्वै बिन बनै प्रपंच कहो को कूर कहै है ॥
बरनै दीनदयाल कला वा पै बहुतेरी।
जो जो चाहे नाच कढै सो सो गति तेरी ॥

अत्यद्भुतं कर्म न दुष्करं ते कर्मोपमानं न हि विद्यते ते।
न ते गुणानां परिमाणमस्ति न तेजसो नापि बलस्य नद्धेः ॥

अगम्य तो है ही नहीं। (प्रातःकाल नये फूल, नये रंग हर जगह दिखाई पड़ते हैं, यह उनका ही काम है) आगन-वागन सभी स्थानों में तुम घूमते हो, तुम्हारे लिये कहीं भी अगम्य नहीं। यह बड़े आश्चर्य की बात है, तुम सदा घूमते रहते हो, परन्तु तुमको कोई नहीं देखता। एक क्षण स्थिर रहो और विश्राम करो। तुम बड़े चञ्चल-चित्त हो।'

"वह हंसकर कहने लगा—'मैं इतने बड़े संसार का भार अपने कन्धे पर उठाये हुए हूं। मैं आराम करना तो चाहता हूं, पर कर कब सकता हूं।'* कहते-कहते वह जाने कहां अदर्शन हो गया, मैं नहीं देख सकी। यह दर्शन मैंने सत्य किया या स्वप्न देखा, मैं नहीं कह सकती। मैं तो समझती थी कि देखूंगी, सुनूंगी, रहस्य समझूंगी और उसके संग रहूंगी। उस को खोजकर और पता न पाकर दुःख से मेरा ऊर्ध्व श्वास बहने लगा। फिर खोजते-खोजते मैंने उसे पाया। देखती हूं कि एक भारी सभा लगी हुई है और उस सभा में जितने भी मौलवी हैं, उनकी दाढ़ी नाभि तक लम्बी हैं। शिर में पगड़ी बांधकर और सामने हुक्का रखकर अमीर साहब बीच सभा में बैठे हैं। उनकी

---

* यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ (गी० ३-२३)
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥ (गी ३-२४)

दाढ़ी एक हाथ लम्बी है, और गम्भीरतापूर्वक हंस-हंसकर लोगों से अरबी में बात कर रहे हैं।* सब ही उसके मुख की तरफ देख रहे हैं और भक्ति कर रहे हैं।

"इस अमीर को मैं पहचानती हूं, परन्तु पहचान लिया, कहकर भी नहीं पहचान सकी, क्योंकि दाढ़ी से मुख ढका हुआ है। इसी समय अकस्मात् उसने मेरी ओर देखा। आंखों से आंखें मिलीं। मैंने पहचान लिया कि निश्चय ही यह मेरा रसिकशेखर है। यह वेश देखकर मुझे बड़ी हंसी आई और मैंने अञ्चल से मुँह ढांक लिया। लज्जा पाकर उसने आंख के इशारे से मुझे चुप रहने को और किसी से प्रकाश न करने को कहा। कुछ समय पीछे वह उस

---

* अर्रहमान अर्रहीम इय्याकनुबुद् व इय्याक नस्ताईन इहदा नस्सरातुल मुस्तकीन सिरातल्ला जिना अनम्त अलेहिम् गैर इल मगजूब इं अलेहिम वला अज्जलीन (कुरान)

O Lord of mercy and benificence, thee do we serve and thee beseach for help, teach us the path on which thy blessings rest, the straight path, not of those who go astray on whom descends thy wrath and punishment.

(Quran)

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥ (गी० १०-४१)

स्थान को छोड़कर मेरे साथ आया। मैं तो मार्ग में हंसते-हंसते जाती थी, पर वह मन में लज्जित था। मैंने कहा--'मुझे मत छूना, क्योंकि तुम्हारे अंग से प्याज और लहसन की गन्ध आती है। हे सखा, अब तुमने जाति खो दी है, तुम्हारा पुनः संस्कार कराऊंगी।'

"रसिक ने कहा—'मैं तो छिपकर गया था, तुमने मुझे खोज निकाला। जो चिर दिन मुझे खोजता है, उसको मैं पकड़ाई देता हूं।* मैं सदा छिप-छिपकर घूमता हूं, जो आंखें खोलकर देखता है और थोड़ा धैर्य रखकर मेरे पीछे-पीछे फिरता है, वही मुझको पकड़ सकता है। इन लोगों ने मुझे भक्ति से दाढ़ी लगा दी है और इसी रूप से ये सुख पाते हैं, इसलिये मैं ऐसा रूप

---

* यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः॥ (गी १५-११)
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वञ्च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ (गी० ६-३०)
शनैः शनैरुपरमेद्बुध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्॥ (गी० ६-१५)
अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥
(गी० ८-१४)
जिन ढूँढा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ॥

धारण करता हूं।× तुम जैसा रूप चाहती हो, वैसा ही रूप धारण करता हूं और प्याज की गन्ध भी दूर कर देता हूं। मैं तुम्हारी आंखों में सदा रसिक ही होकर मिलूंगा।'

*   *   *

"और एक दिन मैं उसके समीप बैठकर उसके मुख की ओर देखने लगी तो वह अन्यमनस्क सुधीर और गम्भीर मालूम पड़ा। मानो ब्रह्मांड की चिन्ता में मग्न हो रहा है। गम्भीर होकर उस ने मेरी ओर देखकर कहा--'मन को चञ्चल मत करना, जो कुछ देखे, पाषाण से प्राण बांधकर स्थिर ही रहना।' मैंने जो उस के मुख को देखा तो पहले का जैसा भाव उसमें नहीं था। इस समय वह अटल और गम्भीर हो गया था। चपल रसिक ऐसा क्यों हुआ कहकर मेरे मन में चिन्ता हुई। रसिक को सदा चपल देखकर मेरी श्रद्धा में त्रुटि हो गई थी। उस दिन उसका यह भाव देखकर वह भ्रम छूट गया और वह भयंकर बोध हुआ। उस समय मैंने देखा, एक नवीना युवती अपने मृत पति को लेकर रो रही है। उसके पति का नया यौवन मदन के समान था, जिसे वह अपनी गोद में लिये हुए थी। उस स्त्री ने अपने स्वामी को प्रसन्न करने को अपना शृंगार कर रक्खा था और वेणी बांध रक्खी थी। उसका प्राणेश्वर रात में सर्पाघात से मर गया था।

× यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥ (गी० १-७)
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्॥ (गीता)

"युवती—'हम दोनों मिलकर एकांत में अपना खेल खेलते थे। विधना को इसे मारकर क्या* सुख मिला होगा। जिसके वदन में मैं भय से चन्दन भी नहीं मल सकती थी, आज वही गुणनिधि धूल में लोटा हुआ है, ऐसा कहकर उसने सिर नीचा करके अपने पति के मुख को चूमा। अबला के दुःख को देखकर त्रिजगत् स्तम्भित हो गया।

* * *

"उस समय मैंने फिर रसिकशेखर से कहा—'कहो तो मैं सुनना चाहती हूं, क्या यही तुम्हारी रीति है कि आप तो परम आनन्द से बैठकर चित्र बनाते हो और जीव दुःख से मरते हैं, आंख से भी नहीं देखते हो। नाम तो तुमने रसिकशेखर ले रक्खा है और कर्म निष्ठुर की भांति सर्वदा करते रहते हो। जिस हाथ से तुम बनाते हो, उसी* हाथ से अबला की छाती में शूल मारते हो। छिः कैसे कुत्सित पुरुष हो ? पुरुष, तुम्हारे चरित्र को देखकर लोग दुःख पाते हैं, पर भय से कुछ नहीं कहते हैं। तुम्हारे संग से कुछ प्रयोजन नहीं इससे तो अच्छा मैं ×आकाश का भजन करूंगी।'

---

* अहो विधातस्त्वमतीवबालिशो यस्त्वात्मसृष्ट्यप्रतिरूपमीहसे
परन्तु जीवस्य परस्य या स्मृतिर्विपर्ययस्ते त्वमसि ध्रुवः परः ॥
(भा० ४थ स्क० ६ अ० १४)

× आकाशवदनन्तो'हं घटवत्प्राकृतं जगत्।
इति ज्ञानं तथैतस्य न त्यागो न ग्रहो लयः ॥
(अष्टावक्र सं० ६ प्रक०)

ऐसा कहकर मैंने उसके मुख की ओर देखा तो उसका मुख दुःख से काला हो गया था। उसके दुःख को देखकर मैं लज्जित हो गई। उसको क्यों दुःख हुआ, मैं नहीं समझ सकी। मैं अवाक

पोलहि में उपजे सबै, पोलहि में निवसंत।
पोल कहत आकाश सूं ताको आदि न अन्त ॥१२॥
आदि न जाकौ है कछु, अन्त न कबहू होय।
सदा एकरस रहत है पोलि कहावे सोय ॥ १३ ॥

सूनिकासार का उदाहरण

जित देखो तित सुन्नहि दीसे, सुन्नहि है सब ईश उनीसै।
सुन्नहि माया सुन्नहि ब्रह्म, सुन्नहि में सब झूठौ भ्रम ॥ १ ॥
सुन्नहि पिंड शून्य ब्रह्मण्डा, सुन्नहि सात द्वीप नव खंडा।
सुन्नहि धरणी शून्य अकाशा, सुन्नहि चन्द्र सूर परकाशा ॥२॥
सुन्नहि ब्रह्मा विष्णु महेशा, सुन्नहि कूर्म्म शून्य ही शेषा।
सुन्नहि गुरु शून्य ही चेला, सुन्नहि दूजा शून्य अकेला ॥३॥
सुन्नहि देवल शून्य ही देवा, सुन्नहि करै शून्य की सेवा।
सुन्नहि करै शून्य को जाप, समझि करै गुरु के परताप ॥४॥

* * *

आदि सबन की पोल तैं, अन्त पोलि ठहराइ।
मध्यहु में पुनि पोलि है, सतगुरु दई बताइ ॥१०॥
सब तैं ऊंची पोल है, सब तैं नीची पोलि।
मध्यहु में पुनि पोल है, सतगुरु कहि दइ खोलि ॥११॥

(ठाकुर दयाराम, हाथरस)

होकर देखती रह गई और उसके मुख को देखकर छाती फटी जाती थी।

"वह एक क्षण इसी प्रकार चुप रहा। फिर मुख उठाकर धीरे-धीरे कहने लगा—'तू अटल रहने के लिये सम्मत हुई थी, और अब ज़रा-सा ही देखकर घबड़ा गई। तू तो नितांत बालिका है, तेरा ज्ञान थोड़ा है और जानना चाहती है मेरा संकल्प! यदि जन्म-समय में ही समस्त बातों को जान जाओ, तो फिर बड़ी होकर क्या जानोगी? मेरी बातों को यदि बालिका जान जावे तो तुझ में और मुझमें क्या भेद रहे? चिरकाल ही इसी तरह से ज्ञान-लाभ करना होगा।* एक सन्देह दूर होगा तो दूसरा नया आ जावेगा। जितनी जीव की आशायें हैं, सब पूर्ण हो जावेंगी। आशा के साथ-साथ आकांक्षित वस्तु मिल जावेगी। जितनी क्षुधा दी है, उतना ही आहार भी दिया है। जीव के मन में चिरकाल तक बचने की इच्छा दी है तो वही इच्छा साक्षी है कि जीव नहीं मरेगा। प्रीति के डोरे से जीव जीव को बांधता है और वही प्रीति साक्षी है कि जीव फिर मिलेगा। जीवों के मन की इच्छाओं का विचार करने पर, जीव का परिणाम गोचर होगा।

"रमणी ने कहा—'आज मैं अपने मन की बात कहूंगी। तुम्हारी निन्दा सुनकर मेरे मन में व्यथा होती है। कितनी बाधायें

---

* अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥

हुई, मैंने कुछ भी नहीं मानीं, खोज-खोज करके तुमको पकड़ पाया। तुम्हारे गूढ़ रंग को देखकर मन प्रसन्न और अङ्ग पुलकित होता है। तुम्हारे गुणों को गाने से तृप्ति नहीं होती।* इच्छा तो

---

* दृष्टं सर्वमिदं मनोवचनयोरुद्देश्यतच्चेष्टयो-
र्वंनात्ये कविसंकुलं कलिमलश्रेणीकृतग्लानितः।
कृष्णं कीर्तयतस्तथानुभजतः साश्रून्सरोमोद्गमा-
न्वाह्याभ्यन्तरयोः समान्वत कदा वीचामहे वैष्णवान् ॥
(चै० च० नाटक १०)

तुण्डे ताण्डविनी रतिं वितनुते तुण्डावलीलब्धये।
कर्णक्रोडकडम्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम् ॥
चेतः प्राङ्गणसङ्गिनीं विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं।
नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी ॥ (वि० मा०)

लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।
(गी० ३-२०)

सन्मात्रानिर्विशेषा च्चिदुपधिरहिता निर्विकल्पा निरीहा:
ब्रह्मैवास्मीति वाचा शिव शिव भगवद्विग्रहे लब्धवैराः।
येऽमी श्रौतप्रसिद्धानहह भगवतोऽचिन्त्यशक्त्याद्यशेषा-
न्प्रत्याख्यान्तो विशेषानिह जहति रतिं हन्त तेभ्यो नमो वः ॥५॥
(विदग्धमाधव)

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः ॥ (गी० ३-७)

तब ही मिटेगी, जब सब गावें। कोई तो तुम्हें मानता भी नहीं। वे सब प्रकार से निश्चिन्त रहते हैं। हम तुम्हारे होकर दुःख पाते हैं। किसी ने तुम्हारे गले में मुण्ड-माला दी है। लेखनी छीनकर शूल हाथ में दिया है। तुम्हारे भय से साक्षात् कुछ कर नहीं सकते हैं, पर मुँह पीछे अपवाद करते हैं। हम सब तुम्हारे जन (भक्त) होकर यह कैसे सहें ? जगत् में अपना परिचय दो, नहीं तो मैं निश्चय तुम्हारे साक्षात् ही मरूंगी। सब के भरण-पोषण करने वाले यदि तुम ही मारोगे तो कौन बचावेगा ? तुम नहीं समझाओगे तो कौन समझावेगा ? अब और कितने दिन छिपे रहोगे ? तुम्हारा संसार छार-खार हो गया है। बलराम कहता है कि इनको अवसर कहां है ?'

* * *

"रसिक ने कहा—'मेरी चिर दिन से यह प्रतिज्ञा है कि जो जिसकी वासना हो, उसको पूर्ण करूंगा। बाहर से तो वासना, भीतर से नहीं। सचमुच वह तो चाहता ही नहीं, तभी नहीं पाता है। तेरी इच्छा तत्व जानने की हुई है, जितना समझ सकती है, तुझसे कहता हूँ।

"इस संसार में बुरा कुछ भी नहीं है।* अवस्थानुसार भला

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥
(गी० २-२९)

* अमन्त्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः ॥

और बुरा होता है। चूना मुख में देने से जलाता है, परन्तु पान के संग नहीं ! इसलिये चूने को बुरा कहना उचित नहीं। जिह्वा में लवण देने से दुःख होता है, इसी से वह बुरा नहीं है। इत्र का स्थान नासिका है, परन्तु आंख में लगाने से दुःख का उदय होता है। जिस अग्नि के ताप से सुख बोध होता है, उसी के परिमाण-दोष से अंग जल जाता है। स्थान और परिमाण विकृत होने पर संसार में दुःख की उत्पत्ति* होती

ग्रह भेपज जल पवन पट, पाइ कुयोग सुयोग।
होइ कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहिं सुलक्षण लोग ॥८॥
सम प्रकाश तम पाख दुहुँ, नाम भेद विधि कीन्ह।
शशि पोषक शोषक समुझि, जग यश अपयश दीन्ह ॥९॥

(तु० रा० बा०)

* युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्म्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ (गी० ६-१७)

किन्तु मानवदेहेषु पूर्णे जीवत्व आगते,
जैवमुत्पद्यते कर्म्म तत्र तत्क्षणमेव तु।
अस्वाभाविकसंस्कारप्रवाहो वहते ध्रुवम्।
जैवकर्म्मप्रभावात्स वैश्ववैचित्र्यसंकुलम् ॥
त्रितापप्रचुरं स्वेदावागमनचक्रकम्,
जैवकर्म्मप्रभावाच्च तस्मादेव भवन्त्यमी।
नरकप्रेतपित्रादिभोगलोकाः स्वरान्विताः,
मृत्युलोकात्मकः कर्म्मलोकश्च विबुधर्षभ ॥

है। यदि परिमाण और स्थान ठीक हों तो जगत् में निरवधि सुख है। मैंने किसी को पींजरे में तो बन्द नहीं कर रक्खा है और जीव जितनी धारणा कर सकता है, उतनी उसे स्वाधीनता दे रक्खी है। स्वाधीनता पाकर यदि स्थान भ्रष्ट करे तो अपने शिरमें दुःख लाता है। किंवा अपने ही दोष से परिमाण बाहुल्य से अपने दुःख के किवाड़ खोलता है। पींजरे में रखने मे यह दुःख नहीं पाता, किन्तु उसे परिणति का ज्ञान नहीं होता। जीव यदि नहीं बढ़ता तो उसका मरना और बचना समान होता।* यह स्वाधीनता

उत्पद्यन्ते तथेमानि भुवनानि चतुर्दश,
विद्याऽऽस्ते मामकी माया पूर्णसत्वगुणान्विता।
एतस्याः करणत्वेन शक्तिरैशस्य कर्म्मणः,
विचित्रास्ति तयोस्ताभ्यां कर्म्मभ्याञ्च सहायिका॥

(श्री धर्म्मकल्पद्रुम भवानी-देवता-सम्वाद)

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ (गी० ६-५)

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥ (गी० ५-१५)

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्॥ (गी० ५-१६)

* मन्निध्नं सहजं कर्म जैवं जानीत जीवसात्।
जीवाः सन्ति पराधीनाः सहजे कर्मणि स्वतः॥ (शक्ति गी०)

मानवेषु महाराज ! धर्म्माधर्म्मौ प्रवर्ततः ।
न तथान्येषु भूतेषु मानुष्यरहितेष्विह ॥
उपभोगैरपि त्यक्तं नात्मानं मादयेन्नरः ।
चांडालत्वेपि मानुष्यं सर्वथा तात शोभनम् ॥
इयं हि योनिः प्रथमा यां प्राप्य जगतीपते !
आत्मा वै शक्यते त्रातुं कर्म्मभिः शुभलक्षणैः ॥

(महाभारत ध० क० पृ० ४)

जैवे स्वाधीनतां यान्ति जीवाः कर्मणि निर्ज्जराः ।
सन्त्यतो मानवाः सर्वे पुण्यपापाधिकारिणः ॥ २२ ॥

(शक्तिगीता)

जैवस्य कर्मणो देवाः द्वे गती स्तः प्रधानतः ।
जीवानेकागतिर्जैवी ह्यधस्तान्नयते तयोः ॥१०६॥
प्रापयते जडत्वं च देवाः सास्ते तमोमयी ।
यतश्चाधर्मसम्भूता वर्ततेऽसौ दिवौकसः ॥१०७॥
ऊर्ध्वं प्रापयते जीवान् द्रुतं जैव्यपरा गतिः ।
स्वरूपं चेतनञ्चासावभिलक्ष्य प्रवर्तते ॥१०८॥

(शक्ति० गी० ६६)

* * *

भवद्भिशिष्टसाहाय्याल्लब्धानां किन्तु भूतिदाः ।
पिंडानां मानवीयानां वैलक्षण्यं किमप्यहो ॥५४॥
एते शक्तिविशेषाणां वर्तन्ते पितरो ध्रुवम् ।
आकर्षणोपयोगित्वाच्चतुर्वर्गफलप्रदाः ॥५५॥

पशुओं में नहीं है। इसलिये वृद्धि सुख-दुःख उनमें नहीं है। स्वाधीनता पाकर उसका दुर्व्यवहार करने पर भी परिणाम में उस का भला ही होता है। अपनी इच्छा से अपने ऊपर दुःख लाता है, इसीमे सृष्टि होती है और नये-नये सुख होते हैं।* अत्याचार

निश्रेयसफलोत्पत्तिकारिणो विटपस्य हि।
मानवीयो हि पिंडोऽयं बीजमास्ते न संशयः ॥४६॥
एतन्निःश्रेयसं नूनं वर्तते देवदुर्लभम्।
यस्मान्न पुनरावृत्तिस्तन्निःश्रेयसमुच्यते ॥४७॥

(शम्भु गी० ४३-४)

* * *

कथं न विप्रणश्येम, योनितोस्या इति प्रभो!
कुर्वन्ति धर्मं मनुजाः श्रुतिप्रामाण्यदर्शनात् ॥
यो दुर्लभतरं प्राप्य मानुष्यं द्विषते नरः।
धर्म्मावमन्ता कामात्मा भवेत्स खलु वञ्चकः ॥

(दै० मी० पृ० १६७)

स्वतन्त्रा मनुष्या परतन्त्रास्त्वन्ये ॥ (दै० मी० पृ० १६६)

* कर्मणी ऐशे सहजे शुद्धे एव सदामते।
शुद्धाशुद्धविभेदस्तु जैवकर्म्मसु विद्यते ॥१७॥
उभे एते समाख्याते कारणं पुण्यपापयोः।
कामनाजनितावेतौ भेदौ हि परिकीर्तितौ ॥१८॥
अनाद्यनन्तौ वासनायाः प्रवाहो ह्येव कारणम्।
सृष्टेरनाद्यनन्तयाः प्रवाहस्य सुरर्षभाः ॥१९॥ (वि० गी०)

करने से ज्वर बुलाता है, परिणाम में कलेवर कुछ स्वस्थ होता है। अति दुःख से अपने शिर में मृत्यु लाता है, फिर उत्तम शरीर से दिव्यलोक को जाता है। रोने में हंसी और हंसने में रोना, यही सृष्टि का नियम है। जिससे आंखों में आँसू आते हैं, उसी का परिणाम सुख का उदय है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण रोकर देख लो, जितना रोओगे, उतना ही हंसोगे। दुःख ही सुख का बीज है, यह बात सोचने योग्य है। दुःख के बीज से सुख का उदय है। दुःख और सुख से बीज की वृद्धि होती है। पतिहीना नारी तेरे सम्मुख रोई है और उसको देखकर तू हा-हा करके रोई है। उस दुःखिनी ने जितना दुःख पाया है, उसी परिमाण से मैं उसका शोधन आप ही करूंगा। जितनी कंगालिनी हैं, वे मेरी महाजन हैं। मैं उनको सूद सहित जमा दूंगा। मुझे ऋण शोधन करने में बड़ा सुख मिलता है, तुम्हारी कृपा से मेरा भण्डार अक्षय है। आपाततः तुम दुःख देखकर व्यथित होती हो, परन्तु मैं दूर की सोचता हूं।' यह सुनकर मैं गम्भीर हुई और छल-छल आंखों से उसे देखती रही।

The world's illusions are kept afresh by death— R. N. T.

Thou art in life & death too— R.N. T.

In sorrow it is thy feet that press my heart. —Ravindranath Tagore.

"मैं हृदय से जानती हूं तुम दयामय हो। हृदय की बात मिथ्या नहीं होती। तो भी मेरे मन का सन्देह नहीं जाता कि क्यों तुम्हारे भक्त इतना दुःख पाते हैं। सर्वशक्तिमान होकर क्यों उन्हें इतना दुःख देते हो। यदि दुःख न देकर संसार में आनन्द ही देते तो संसार की सारी गड़बड़ी मिट जाती।'

* * *

"रसिक ने कहा—'मैंने भला-बुरा समझने को ज्ञान* दे रक्खा है, वही तो जीव की उन्नति की सीढ़ी है। भला-बुरा का भेद अन्तर

---

* यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्म्मः (कणाद वैशेषिकदर्शन)

वेदप्रणिहितं कर्म्म धर्म्मस्तन्मङ्गलं परम्।
प्रतिषिद्धक्रियासाध्यः सगुणोऽधर्म उच्यते ॥१॥
प्राप्नुवन्ति यतः स्वर्गमोक्षौ धर्म्मपरायणे।
मानवा मुनिभिर्नूनं स धर्म्म इति कथ्यते ॥२॥
सत्ववृद्धिकरो योऽत्र पुरुषार्थोऽस्ति केवलः।
धर्म्मशीले ! तमेवाहु र्धर्म्मं केचिन्महर्षयः ॥३॥
या बिभर्ति जगत्सर्व्वमीश्वरेच्छा ह्यलौकिकी।
सैव धर्म्मो हि सुभगे ! नेह कश्चन संशयः ॥४॥

(ध० क० पृ० ४)

उन्नतिं निखिला जीवा धर्म्मेणैव क्रमादिह।
विदधानाः समाधाना लभन्तेऽन्ते परं पदम् ॥ (व्यासः)

(ध० क० पृ० ३-४)

में समझकर, भला होने की सदा चेष्टा करे। भले-बुरे को समझकर, अभाव देखकर ज्ञान-अभिमानी लोग स्रष्टा की निन्दा करते हैं। केवल मैं ही पूर्ण हूं* और सब अपूर्ण हैं, इसी कारण सृष्टि में दोष है। यदि भले-बुरे की बूझ का ज्ञान न होता तो उस दोष को देख नहीं सकते। इस ही ज्ञान से लोग अच्छा होने की चेष्टा करते हैं, और इस ही ज्ञान के दोष से मुझमें दोष देखते हैं और मेरी निन्दा करते हैं। क्रम-क्रम से× उन्नति और अभाव पूर्ण होता है, और क्रम-क्रम से नर मेरे समान होता है। क्रम से विकास होने का नियम है और क्रम से ही संसार की सृष्टि अच्छी होती है। चिर परिणति जीव की गति है। बिना जाने आरम्भ होकर क्रम से उन्नति होती है। इस ही से संसार में बुरा दिखाई देता है। आरम्भ से ही कोई वस्तु निर्दोष नहीं हो सकती है। हे नव-बाला, मन लगाकर सुन, वियोग के बिना संयोग नहीं हो सकता। जैसे अभाव के बिना पूर्ण नहीं हो सकता है वैसे ही वियोग बिना संयोग नहीं होता। वियोग और संयोग के बीच सुख-दुःख ही सेतु है, इसलिये संसार में सुख-दुःख के कारण भी बनाये गये

---

* पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावतिष्ठति ॥ (उ०)
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः।

× शनैः शनैरुपरमेत्। (गी० ६-२५)
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥

हैं। संयोग-वियोग संसार का नियम है और सदा वियोग से ही योग संभव है। दुःख का कारण अभाव अथवा वियोग है और पूर्ण संयोग से सुख का भोग होता है। अभाव बिना वृद्धि नहीं होती। वृद्धि बिना जीव को कुछ सुख नहीं। जो किसी कारण से सुख का उदय होता है तो भोग से उस आनन्द का क्षय हो जाता है। दुःखी को लक्ष मुद्रा मिलने से आनन्द होता है। परन्तु लक्षपति को उससे सुख नहीं होता है। पतिप्राणा सखी पति के संग रहती है और सदा संग करने से प्रीति कम होती है। परन्तु वही पति यदि परदेश जावे तो वह प्रेम का धन होजाता है। जितना ही वियोग उतना ही संयोग। जितना शोक, उतना ही भोग। जितना ही किसी को प्रमाद (कष्ट) होगा, उतना ही निश्चय प्रसाद (फल) भी मिलेगा। जितना दुःख किसीको हो, वही उसके सुख की खान है। जिसको दुःख नहीं उसको सुख भी नहीं+ और उसके लिये मरना और बचना समान है। अभाव के बिना वृद्धि नहीं होती। जिसकी

+ सुखाद्बहुतरं दुःखं जीविते नाऽत्र संशयः।
स्निग्धत्वं चेन्द्रियार्थेषु मोहान्मरणमप्रियम्॥
परित्यजति यो दुःखं सुखं वाऽप्युभयं नरः।
अभ्येति ब्रह्म सोऽत्यन्तं तं न शोचन्ति पंडिताः॥

(दै० मी० पृ० १६०)

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥ (गी० २ ५६)

वृद्धि नहीं, उसको सुख भी नहीं। किसी के हृदय में दुःख का पोखर कटा हो तो उतना ही नापकर अमृत भी रक्खा है। बालकपने में कितना दुःख मिलता है पर क्या वह जवान होने पर मन में रहता है? स्वप्न में कितना दुःख* मिलता है, पर वही दुःख प्रातःकाल आनन्द का कारण होता है। क्रमशः आनन्द बढ़ता जाता है और पूर्वकाल का दुःख मिटता जाता है। जिसको वियोग नहीं हुआ, उसके लिये सुख-दुःख, जीना-मरना और बचना समान है।× केवल वियोग प्रीतिवर्द्धक है और जीव का सर्वोत्तम साधन प्रीति ही है। तू जिसको मन में मरण समझ रही है, हे बाला! वह केवल नूतन जीवन है।'+ कहते-कहते रसिक कुछ मुस्कराया और कहा—'नव बाला, देख तो।'

"मैंने देखा, वही नारी अपने पति को पाकर दोनों एक-दूसरे का मुख देख रहे हैं। नारी पति का मुख देखकर संशयमग्न हो पूछ

---

* यः पश्यति मृतं स्वप्ने स भवेच्चिरजीवनः।
आरोग्यो रोगिणं दृष्ट्वा सुखिनञ्च सुखी भवेत् ॥

(स्वप्नाध्याय-श-क-पृ० १८२९)

× येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्म्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥ (गी०)

\+ मृतिबीजं भवेजन्म जन्मबीजं भवेन्मृतिः ॥
वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

(गी० २-२२)

रही है, 'क्या तुम वही मेरे खोये धन हो ? मैं तो आशा नहीं करती थी कि तुमसे मिलन होगा।' इससे कोटि गुणा सुख बढ़ गया था, आनन्द से वे बोल नहीं सकते थे और आंखों से अश्रुपात होता था। फिर-फिरकर दोनों एक-दूसरे का मुख देख-देख रहे थे और पागल की भांति प्रलाप कर रहे थे, एक-दूसरे के गले में लिपटकर खड़े हुए। रसिक का मुख प्रसन्न हुआ। तब मैंने बिगड़कर कहा —'क्या तुमने उनकी प्रकृति देखी ? तुम्हारी कृपा से उनकी सुख सम्पत्ति हुई और तुम्हीं को भूलकर वे सुख में अतिमग्न हैं।' रसिक ने कहा—'ज़रा धैर्य धरो, इस समय वे आनन्द में अचेतन होरहे हैं। मेरा विषय पीछे होगा। उन दोनों का मुख देखकर आंखें ठण्डी करो।'

"तब वे युगल होकर और गले में वस्त्र डालकर भूमि में लोटकर प्रणाम करने लगे और कहने लगे—'हम दोनों को जितना दुःख हुआ था, उससे कोटि गुणा अब सुख मिल रहा है। हमने रोकर आपके चरणों में अपराध किया था, श्री कर-कमलों* से आशीर्वाद करो।'

"तब ईषत हंसकर रसिक ने कहा—'साधु लोग कहते हैं— प्रीतिमग्न होने से अधःपतन होता है, बन्धन टूटने से अति उच्च स्थल में लोग जाते हैं।'

"पुरुष ने कहा—'बन्धन टूटने से हृदय विदीर्ण होता है, हम दोनों मिल कर (युगल होकर) तुम्हारा भजन करेंगे।

* करसरोरुहं कान्तकामदं शिरसि देहि नः श्रीकरग्रहम्॥ (भा०)

हम दोनों पृथ्वी और चन्द्र हैं। तुम सूर्य हो। हम दोनों तुम्हारे चारों ओर परिक्रमा करेंगे। मैं गीत गाऊंगा और प्यारी नाचेगी। हम दोनों मिलकर तुमको सजावेंगे। हम दोनों माला बनावेंगे और मन को चोरनेवाले कृष्ण का भजन करेंगे। दोनों के परस्पर मिलकर रहने में अधोगति भी अच्छी है, और वियोग में स्वर्ग से भी क्या फल है।'

"उस समय रसिक ने मलिन मुख से मेरी ओर देखा और करुण स्वर से कहा– 'जीव के सौभाग्य के लिये मैंने प्रीति बनाई है, जिसने जीव को जीव से बांध रखा है। जीव एक दूसरे से मिलकर शीतल हो जाता है और शान्ति प्राप्त करता है। जीव एक दूसरे के रूप पर मोहित होकर अपने प्रेमास्पद के लिये प्राण तक न्यौछावर करने को प्रस्तुत हो जाते हैं और अपने प्रिय को सुख देकर आप भी सुख पाते हैं। दोनों के बढ़ने से प्रेम बढ़ता है। जीव के विमल सुख के लिये मैंने युगल बनाया और उसे प्रीति से बांधा है। दोनों से दोनों का दुःख निवारण होता है। यह निर्भय आश्रम सब अभावों को पूरा करने वाला है। दोनों एक दूसरे से प्रीति सीखें। उसी अमृत को पीकर मेरी तृप्ति होती है। देखो, दोनों रस के रूप हैं। इसी से तो मेरा नाम रसिकशेखर है। अबोध लोग वियोग देखकर करुणा से रोते हैं और मुझको बुरा कहते हैं। वियोग न हो तो संयोग न होगा, इसीलिये वियोग का सृजन हुआ। यदि वियोग का दुःख न हो तो प्रीति का सुख-स्वाद किस प्रकार हो? यदि दोनों जनों को यह निश्चय हो कि हम

अवश्य मिलेंगे तो मिलन में सुख क्या रहे ? जीव का वियोग जैसे वज्राघात है। और जिसको आशा नहीं उसी को अकस्मात लगता है। दारुण वियोग में अकस्मात् मिलन से सुख कोटि गुणा बढ़ जाता है। क्या तू मुझे ऐसा पाखण्डी समझती है कि मैं प्रेमडोर से बांधकर उसको खण्ड-खण्ड करूं! ऐसा मूढ़ तो तीन लोक में कोई न होगा, जो माता की गोद में से बालक को निकाल लेवे, किम्वा पति-पत्नी का वियोग करावे और उनका वियोग कराकर सुख पावे। ऐसा काम तो मूढ़ भी नहीं करेगा, तू क्यों समझती है कि मैं ऐसा करूंगा ? यदि वियोग के पश्चात् संयोग न होवे तो तू समझना कि मुकुन्द* निठुर है और उसको मत भजना। यदि मुझसे अधिक दयाल कोई हो तो वह मेरा भजनीय होगा। यदि वियोग और संयोग न हों तो संसार अन्धकारमय हो जाय और ईश्वर का अस्तित्व लोप हो जाय।'

"हरि की बातें सुनकर मेरा हृदय द्रवीभूत हो गया। मुझसे कुछ न कहा गया और चुप हो रही।

"मैंने कहा—'रस के लिये तुमने युगल सृष्टि की और उसे आंखों से देखकर आनन्द-भोग करते हो तो किस लिये तुम इतना निष्ठुर होगये कि स्वयम् एकाकी रहकर औरों को दुःख देते हो ? जब

---

* राजन्पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां देवंप्रियः कुलपतिः क्व च किंकरो वः।
अस्त्वेवमंग भजतां भगवान् मुकुन्दो मुक्तिं ददाति कर्हिचिन्नहि भक्तियोगम्

(भक्तितरंगिणी १०१)

करुणा से तुम्हारा मुख मलिन होता है तब प्रिया पास न होने से तुम्हारी आंखों को कौन पोंछता है ? यदि तुम्हारी प्रिया उस समय तुम्हारे पास होती और तुम्हारी आंखों को स्नेहपूर्वक पोंछती तो तुम्हारी करुणा शतगुण होकर धाराओं में बहती और जग का भला होता। जब तुम आनन्द की तरंगों में तैरते हो तब प्रिया सङ्ग न होने से उसका भाग किसे देते हो ? वन-फूलों से किस को सजाते हो और बाईं ओर बिठाकर किसका मुख देखते हो ? हम लोगों के मन की बनावट ऐसी है कि किसी को भी अकेला देखकर हृदय फटता है। मैं समझती हूं कि इस संसार में जो अकेला विचरण करता है, वह बड़ा ही तापित (दुःखी) है। तुम हमारे प्रिय हो और एकाकी घूमते हो, इस तरह की वार्ताओं को हम तुम्हारे भक्त (जन) होकर कैसे सह सकते हैं ? यदि हमको सुख देना चाहते हो तो प्राणप्रिया को लाकर बाईं ओर बैठाओ। भुवनमोहनी रूपवती लाकर युगल होकर सिंहासन में बैठो। जितने तुम्हारे भक्त हैं, तुम दोनों को साथ बैठा कर, तुम्हें घेर कर नाचें और गावेंगे।'

"रसिक ने कहा—'तुम मुझे प्यार करती हो और मुझे अकेला देखकर कोई संगिनी देना चाहती हो। अपने मन की-सी मैं कहां पाऊं, जिसको मैं अपना प्राण (मन) सौंप दूं। मेरे जन जितने हैं, वे मेरे ही पालित हैं और अपने ही सुख के लियेॐ सभी लाला-

* कांक्षतः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा॥ (गी० ४-१२)

यित हैं। कोई भूषण, कोई वसन, कोई सम्पदा लेकर मग्न हैं। मेरे ऐश्वर्य को लेकर मेरे ही जन मुझको भूलकर अचेत हैं। मैं किस को भजूँ और किसको अपना जीवन सौंपूं। इन तीन भुवनों में एक जन भी ऐसा नहीं है, जो मुझको मेरे लिये भजे और जिसको मैं अपने प्राण और हृदय सौंपूं।'+

*　　*　　*

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥　　(गीता ७-१२)

+ ये तु सर्वाणि कर्म्माणि मयि सन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥　　(गी० ६·१२)

भुक्ति-मुक्ति-स्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते।
तावद् भक्ति-सुखस्याथ कथमभ्युदयो भवेत्॥

(भक्तिरसामृतसिन्धु)

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥　　(गी० ७-२)

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने॥

निर्विशेषं परं ब्रह्मैवासीन्नात्रास्ति संशयः।
तथापि तस्य चिच्छिक्तिसंयुतत्वेन हेतुना
प्रतिच्छायात्मिके शक्तिमायाऽविद्ये बभूवतुः॥४

(सुगी० ३ अ०)

"रसिक के नयनों से छल-छल आंसू टपकने लगे। तब मैंने कातर वचन से कहा—'तुमको जो प्रसन्न करे, ऐसा इन तीन भुवनों में कौन है ? भुवनों में ढूंढ़ने पर भी कोई नहीं मिलेगा। जीवों में तो ऐसा कोई नहीं, जो तुमको प्रसन्न कर सके। इस कारण अपने ही दो भाग करो और प्रकृति-पुरुष* होकर अपने भक्तों को सुख दो।'

* * *

"हे सखियो, सुनो, मैं इस वन में रसिक के गुणों को गाती फिरती हूं। प्रति पद में उसकी कारीगरी को देखती हूं और सुख के आवेश में रो-रोकर मरती हूं।"

'मेरा रसिकशेखर सुखी रहे', बलरामदास यही वर मांगता है।

---

* दर्पणार्पितमालोक्य मायास्त्रीरूपमात्मनः ।
आत्मन्येवानुरक्तो वः शिवं दिशतु केशवः ॥
मीमांसार्णवसोमं लसदर्कं तर्कपद्मस्य ।
वेदान्तविपिनसिंहं वन्दे गोविन्दसाभिधं ब्रह्म ॥

कंगालिनी की उक्ति

(दास्य)

दूसरी सखी की कहानी

अत्यन्त दयावान् और सुन्दर ठाकुरजी हैं और मेरे ही निकट रहते हैं। मैं लोगों के मुख से उनकी बातें (प्रशंसा) सुनती हूं* और आशा करती हूं कि मैं उन्हीं की दासी होऊंगी। मैं निराश्रय

---

* जा दिन ते कान्ह कथा काहू तें

परी है कान ता दिन तें सुनति री।

कैसे मिले सांवरो सुजान पट पीत वारो

झांवरो भयो तन सीसहि धुनति री॥

लगो है बसी कर सों दीनदयाल जासु नाम

आठो जाम बैठी गुनगन कों गुनति री।

रंच न परति कल कंचन महल मांह

स्याम बिरहानल में हृदय हुनति री॥११२

(दी० द०)

हूं और अबला हूं, इस संसार में मैं भटकती फिरती हूं और मेरा कोई अपना जन नहीं है, यही मैं दिन-रात सोचती रहती हूं और मन सदा व्याकुल रहता है। यही इच्छा है कि मैं उसके योग्य होऊं, उसके समीप रहूं और उसकी पलङ्ग के नीचे बैठूं, और उसके दोनों रक्त कमल-सदृश चरणों को हृदय में रखकर दुःख को दूर कर दूं। मैं एक दिन गौरव करके, आरसी सन्मुख रखकर शृंगार करने बैठी, पर अपना मुख आरसी में देखकर भय हुआ। मुझे कभी भी यह नहीं ज्ञात हुआ था कि मैं इतनी कुरूपिणी हूं। मेरा हृदय सूख गया। मैंने सोचा कि शायद आरसी मैली हो गई हो, इससे मुख ऐसा दिखाई दिया। दर्पण मलकर देखा तो और भी अधिक कुत्सित रूप देखने में आया। जितनी आरसी मली, मेरा मुख उतना ही कुत्सित दिखाई पड़ने लगा और मेरे दुःख की सीमा न रही। फिर देखा तो मुख में फुन्सियों तथा माता के चिन्ह विद्यमान हैं। घाव तो सूख गये हैं, पर उनके चिन्ह सदा के लिए साक्षी* रूप रह गये हैं। उन दागों के नीचे घाव रह गये हैं, जो रह-रह कर जल उठते हैं। मैंने विचार कर देखा तो ज्ञात हुआ कि उनके कारण मुझे शान्ति नहीं मिलती है। औरों को दुःख देने को मैंने जैसा मुख बनाया था, वैसा ही

द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्काग्नियमानिलाः
रात्रिसंध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम् ॥८६

(मनु० अ० ८)

मेरा मुख हो गया।* जैसा मुख मैंने बनाया था, वैसा ही रह गया। मैं अपने ही दोष से आप डूब गई,+ मैं अपना

---

* यस्माच्च येन च यथा च यदा च यच्च यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म्म।
तस्माच्च तेन च तथा च तदा च तच्च तावच्च तत्र च विधातृवशादुपैति॥

(सु भा० पृ० ६६-७१)

\+ आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथाऽऽत्मनः।
मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम्॥८४ (मनु०)

* * *

दया कीजै मोहि पै ग्रसित मोह मद मान।
छमिये मो अपराध को मोहन छमानिधान॥
मोहन छमानिधान महा मैं क्रोधी कामी।
कुटिल कलंकी कुमति अति तन में मानी॥
चाहत दीनदयाल देवपद सुरतरु छाया।
शरण राखिये श्याम ताप हरिये करि दाया॥

* * *

तो सो करुणा एन की करुणा कही न जाय।
बूड़त कै गज कै लिये धाये नांगे पाय॥
धाये नांगे पाय द्रौपदी दीन सुने रट।
राखी लाज समाज गरीबनेवाज बढ़े पट॥

दुःख किससे कहूं। दूसरे का छिद्र देखकर उसमें दोष सूंघने की चेष्टा की, इसी से नाक चपटी होगई। मेरा सर्वाङ्ग मलिन हो गया, देह में घाव होगये और उनमें सुख से कीड़े विचर रहे हैं। दुर्गन्ध निकल रही है और मक्खियां भिनक रही हैं। ऐसी अस्पृश्य पामर मैं हूं। सब संगिनियों को काटने के कारण मेरे दांत विकट हो गये

टेरत दीनदयाल दीन गुनि मोहूं पोसो।
प्रभु सो कौन कृपाल जगत् में आरत मों सो ॥

* * *

कारो जमुना जल सदा चाहत हो घनश्याम।
विहरत पुंज तमाल के कारे कुंजनि ठाम ॥
कारे कुंजनि ठाम कामरी कारी धारे।
मोरपंखा सिर धारे करे कच कुंचित कारे ॥
टेरत दीनदयाल रंग्यो रंग विषय विकारो।
श्याम राखिये संग अहै मन मेरो कारो ॥३५१
ठाडे अपने धरम में हैं खर सूकर स्वान।
मैं निज मानुष धरम को भूल्यो अघी अजान ॥
भूल्यो अघी अजान विषय वीथिन में धाओ।
रसना पाय विशाल न ता ते प्रभु गुन गाओ ॥
टेरत दीनदयाल पाहि बूड़त अघवाढ़े।
अधम उधारन नाम रहो अपने पैंठा के ॥

(दीनदयाल गिरी)

हैं। बार-बार क्रोध करने से मेरी दोनों आंखें लाल और भयंकर हो गई हैं। लोभ से कभी निवृत्ति नहीं हुई, इससे मेरी जिह्वा बाहर रह गई है। उससे लार टपकती है, यही मेरे वदन की शोभा है। 'हाय, मैं यह क्या देखती हूं' कहकर चीत्कार किया तो स्वर ऐसा निकला, जैसे छुरी की धार। साङ्गिनी से मैंने जो कुवचन कहे थे, उनसे मेरा स्वर गधे के सदृश होगया।

* * *

मेरा गर्व और मान चूर्ण हो गया ॥ ध्रु० ॥ सुन्दर ठाकुर का ऐसा घर पाऊंगी, जिसका आश्रय शीतल है—यह आशा और भी टूट गई। मैं अस्पृश्य पामर कुरूपिणी उसके योग्य नहीं हूं। मैं कैसे उसकी होऊं, वह तो सुन्दरों का शिरोमणि है। यदि कभी वह मिल जाय तो मैं किस मुख से उससे कहूंगी कि मुझे अपने चरणों* में शरण दो और मेरे मलिन देह को लो। मैं उसकी दासी होने योग्य कैसे होऊं, जिससे वह मेरे शिर में चरण रक्खे और मुझसे स्नेह की बातें कहे। मेरा ऐसा भाग्य किस साधन से होगा। * * *

---

* यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विनामशेषजन्मोपचितं मलं धियः।
सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती यथा पदांगुष्ठविनिःसृता सरित् ॥
(दैवी मीमांसा पृ० ३२)

कृष्ण कृष्ण मधुसूदन विष्णो कैटभान्तक मुकुन्द मुरारे।
पद्मनाभ नरसिंह हरे श्री राम राम रघुनन्दन पाहि ॥
(भ० ना० कौ०)

"हल्दी लगाकर धूप में बैठी, उससे मेरा वर्ण और भी बुरा हो गया। बेसन लगाकर वृथा श्रम हुआ, मलिन वर्ण कैसे भी नहीं गया। जोर करके टेढ़े अंग को सीधा किया, परन्तु जैसे ही छोड़ा फिर वैसा ही हो गया। जितना भी बुरा अंग था, वस्त्र से ढका, पर सब दिखाई देने लगा* और लोग देखकर हंसने लगे।

❀ ❀ ❀

---

* पुण्य करिय सो नहिं कहिय पाप करिय परकास।
कहिवे सों दोउ घटत बरनत गिरधरदास॥ (क० कौ०)

यथा यथा नरोऽधर्म्मं स्वयं कृत्वानुभाषते।
तथा तथा त्वचे वाहिस्तेनाधर्मेण मुच्यते॥२२९

यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति।
तथा तथा शरीरं तत्तेनाधर्मेण मुच्यते॥२३०

कृत्वा पापं हि संताप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते।
नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्या पूयते तु सः॥२३१

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विगर्हितम्।
तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन्द्वितीयं न समाचरेत्॥२३२

(मनुः अ० ११)

सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम्।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः॥

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपरांमुखम्।
न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुराकुम्भमिवापगा॥

"एक कोई चन्द्रवदनी धनी ढल-ढलकर चली जा रही थी। वह यौवन के भार से चल भी नहीं सक रही थी, उसके पैरों में झांझनियां रुन-झुन बज रहे थे। मैं उसको देखकर दौड़कर गई और उसके चरणों में× निवेदन किया कि यह रूप और रंग तुम्हे

केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः।
अघं धुन्वन्ति कार्त्स्न्येन नीहारमिव भास्करः॥
नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः।
अजामिलोपि येनैव मृत्युपाशात्तु मुच्यते॥
एतेनैव सघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम्।
यदा नारायणेत्येतज्जगाद चतुरक्षरम्॥
एतावताऽलमघनिर्हरणाय पुसां संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम्।
विक्रुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि नारायणेति म्रियमाण उपैति मुक्तिम्॥ (भगवन्नामकौमुदी)

न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवद्भिस्तथा विशुद्ध्यत्यघवान्व्रतादिभिः।
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतै स्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम्॥
(श्री विष्णुपुराणेपि)

प्रायश्चित्तान्यशेषाणि, तपःकर्मात्मकानि वै।
यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम्॥
प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परम्॥ (भगवन्नाम कौमदी)

× तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः॥

किस तपस्या से मिला ? उसने मधुर हंसी हंसकर मेरी ओर देख-कर कहा—'भगिनी, क्यों दुःख करती है ? तू नित्य यमुना में अपना देह मल और जितना हो सके, उसमें डूबी रह। जितने भी अंग में दाग हैं, सब मिट जावेंगे और देह मनोहर हो जावेगी। धैर्य्य रखकर नित्य देह धोना, तुझे ठाकुर वर मिलेंगे।'

❀ ❀ ❀

फिर कंगालिनी ने कहा—"साधु वाक्य मैंने शिरोधार्य किया ॥ध्रु०॥ मैं प्रति दिन घर का काम करके यमुना जाती ÷ और जल

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठाज्ञानस्य या परा॥
असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां सन्यासेनाधिगच्छति॥ (गी० १८-४८)

÷ संगमः खलु साधूनामुभयेषां च संमतः।
यत्सम्भाषणसंप्रश्नः सर्वेषां वितनोति शम् ॥१८

(भ० र० पृ० ५)

गिरिजा सन्त समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा सो होइ नहीं गावहिं वेद पुरान॥

(तु० रा० उ०)

गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुर्हरेत्।
पापं तापं तथा दैन्यं सद्यः साधुसमागमः॥६

(गर्गसंहिता)

के भीतर अंग मलती थी। मलते-मलते क्रम-क्रम से देह निर्मल और वर्ण सोने का सा हो गया। उसने मुझको छिपकर देखा और आकर खड़ा हो गया। उस रूप की उपमा ही नहीं है। हे

साधु का उपदेश—

नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥
(भगवन्नामकौमुदी)

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ (गीता)

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि॥ (गीता)

जन्मान्तरसहस्रेषु तपोदानसमाधिभिः।
नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते॥

जमुना के छोर आज लख्यो री किसोर,
तासु शोभा वरजोर मनो बाहिर ह्वै छलकैं।
बोलनि हंसनि वाकी अति अनमोलनि हैं,
कुण्डल की डोलनि कपोलनि में झलकैं॥
दामिनी-सी दमकैं दसन दुति दूनी,
ताहि मेरे दृग दीनदयाल देखवे को ललकैं।
पलकैं न लगैं लखि कलगी सुमोरवाली,
हलकैं हिये में वे मरोर वाली अलकैं॥

सखि, भरी आंखों से मेरी ओर देखकर गद्‌गद स्वर से कहने लगा--'मुझको भूलकर और कितने दिन रहेगी, मैं तेरे लिये मर रहा हूं।' मैंने हाथ जोड़कर कहा--'तुम मुझे न छूना, मेरे अंग से पीप चू रहा है।' मैं पीछे हटती जा रही थी, कहीं घाव उसके बदन में न लगे। परन्तु उसने हाथ फैलाकर* मेरा गला पकड़ लिया।

❀ ❀ ❀

हे सखि, मैं और क्या कहूं, मुझे कुछ स्मरण नहीं। मैं अचेत होकर पड़ी रही। उन चरणों के स्पर्श से मेरे चिर दुःख, जितने भी थे, आंखों के मार्ग से बह गये। कोई अन्य जन मुझे न देख ले, करके मैं इधर-उधर देखती थी, पर घर नहीं जा सकी। हे सखि, मैं जन्म-भर के लिये घर से बाहर हो गई, और उसके लिये वन में आगई। हे सखि, घर के गुरुजन बार-बार मुझे ले

* गोपालिकास्मि चतुरा न च मे मनीषा,
देहस्थिता विविधगोरसवासना मे।
किम्वा विधेयमिति चिन्तयती स्थिताहं
तावद्बलान्मिलित एव मया मुकुन्दः॥ (बोधसार पृ० ४४६)

सजि दीनदयाल विशाल प्रभा तजि बालसखा सब मोहन के
वन मोहि विलोकति मो ढिग में छलि आय गयो मिस दोहन के।
मुसुकाय लगाय गरै गहिके चितयो सुमरोरनि भौंहन के
सखि सो वन बीच परी लखिके मनमोचन लोचन मोहन के॥७४
(दी० द०)

जाने को आते थे। मैं सब ही के पैरों पड़ती थी और कहती थी कि प्राण, मन, धर्म्म जिसको अर्पण कर दिया है, उसको छोड़-कर* कहां जाऊं ?'

❀ ❀ ❀

उसके तीन नाम 'हरि', 'कृष्ण', 'राम'× पुकारती हुई वन में

---

* छोड्यो गृहकाज कुल लाज को समाज
सबै एक ब्रजराज सों कियो री प्रीति पन है।
रहत सदाई सुखदाई पद पंकज में
चंचरीक नाई भई छाड़ैं नहिं छन है॥
रतिपति सूरति विमोहनि को नेम धरि लिखै
प्रेमरंग भरि मति के सदन है।
कुंवर कन्हाई की लुनाई लखि माई,
मेरो चेरो भयो चित्त औ चितेरो भयो मन है॥
(दीनदयाल)

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलंघयतेन्त्यच्युता गताः।
गतिविदस्तवोद्गतिमोहिता कितवयोषितः कस्त्यजेन्निसि॥
(भा० गो० गी०)

× दयितदृश्यतां तावकस्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते।
(भा० गो० गी०)

वनरुहाननं चारु दर्शय (गो० गी० भा०)

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्,
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ।
करसरोरुहं कान्तकामदं शिरसि देहि नः श्रीकरग्रहम् ॥

(गो० गी० भा०)

कलिसन्तरणोपनिषद्

हरि ॐ । द्वापरान्ते नारदो ब्रह्माणं जगाम ।
कथं भगवन् गां पर्यटन् कलिं संतरेयमिति ॥१
स होवाच ब्रह्मा साधु पृष्टोऽस्मि सर्वश्रुतिरहस्यं तच्छृणु ।
येन कलिसंसारं तरिष्यसि । भगवत आदिपुरुषस्य नारायणस्य
नामोच्चारणमात्रेण निर्धूतकलिर्भवति ॥२
नारदः पुनः पप्रच्छ । तन्नाम किमिति । स होवाच हिरण्यगर्भः
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मषनाशनम् ।
नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते ॥
इति षोडशकलावृतस्य पुरुषस्य आवरणविनाशनम् ।
ततः प्रकाशयते परं ब्रह्म मेघापाये रविरश्मिमण्डलीवेति ॥३
पुनर्नारदः पप्रच्छ भगवन् कोऽस्य विधिरिति । तं होवाच नास्य
विधिरिति ।
सर्वदा शुचिर्वा पठन् ब्रह्मणः सलोकतां समीपतां सरूपतां
सायुज्यतामेति ॥४
यदास्य षोडशकस्य सार्धत्रिकोटिं जपति तदा ब्रह्महत्यास्तरति,

स्वर्णस्तेयात्पूतो भवति, वृषलीगमनात्पूतो भवति,

सर्वधर्म्मपरित्यागपापात्सद्यःशुचितामाप्नुयात् ।

सद्यो मुच्येत सद्यो मुच्येत इत्युपनिषत् ॥५

(कल्याणभगवन्नामांक पृ० ४५)

इस मंत्र में तीन नाम हैं 'हरि, राम और कृष्ण' ।

हरिः='हरति योगिचेतांसीति' ।

२-हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः ।

अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥

रामः='रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति' ।

२-रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि ।

इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥

कृष्णः=कर्षति योगिनां मनांसीति 'कृष्ण': ।

२-कृषिभूर्वाचकः शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचकः ।

तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥

दो० सुनु व्यालारि कराल कलि, मम अवगुण आगार ।

गुनौ बहुत कलिकाल कर, बिन प्रयास निस्तार ॥१४८

कृतयुग त्रेता द्वापरहु, पूजा मख अरु योग ।

जो गति होइ सो कलिहि हरि नाम ते पावें लोग ॥१४९

कृत युग सब योगी विज्ञानी, करि करि ध्यान तरहिं भव प्राणी ॥१

त्रेता विविध यज्ञ नर करहीं, प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं ॥२

द्वापर करि रघुपति पद पूजा, नर भव तरहिं उपाय न दूजा ॥३

कलि केवल हरि गुण गण गाहा, गावत नर पावहिं भव थाहा ॥४

फिरती हूं और कहती हूं, 'हे दयामय, किधर हो, हे दुःखिनी के आश्रय दिखाई दो।' मैं उसके नाम के अतिरिक्त और कुछ भी

कलियुग योग यज्ञ नहि ज्ञाना, एक अधार राम गुण गाना ॥५
सब भरोस तजि जो भजु रामहिं, प्रेम समेत गाव गुण ग्रामहिं ॥६
सो भव तर कछु संशय नाहीं, नाम प्रताप प्रकट कलि माहीं ॥७
कलि कर एक पुनीत प्रतापा, मानस पुण्य होइ नहि पापा ॥८
कलियुग सम युग आन नहिं, जो नर कर विश्वास।
गाइ राम गुण गण विमल, भव तरु विनहि प्रयास ॥१५०
प्रकट चार पद धर्म्म के कलि महिं एक प्रधान।
येन केन विधि दीन हू दान करै कल्यान ॥१५१
कृतयुग धर्म होंहिं सब केरे, हृदय राम माया के प्रेरे ॥१
शुद्ध तत्व समता विज्ञाना। कृतभाव प्रसन्न मन जाना ॥२
सत्व बहुत कछु रज रति कर्मा, सब विधि शुभ त्रेता कर धर्मा ॥३
बहु रज स्वल्प सत्य कछु तामस, द्वापर हर्ष शोक भय मानस ॥४
तामस बहुत रजो गुण थोरा, कलि प्रभाव विरोध चहुँ ओरा ॥५
बुध युग धर्म जानि मन माहीं, तजि अधर्म रति धर्म कराहीं ॥६
काल धर्म नहि व्यापहि ताही, रघुपति चरण प्रीति अति जाही ॥७
नट कृत कपट विकट खगराया, नट सेवकहिं न व्यापे माया ॥८
हरि माया कृत दोष गुन बिन हरि भजन न जाहिं।
भजिय राम सब काम तजि, अस विचारि मन माहिं ॥१५२

(तु० रा०)

नहीं जानती । श्री नाम ही मेरा सर्वस्व धन है । ऊंचे स्वर से 'हरे कृष्ण हरे', 'हे हरि अपने श्रीचरण में शरण दो' कहकर पुकारती हूं ।

केवलमात्र हरि बोल ॥ध्रु०॥ योग नहीं, यज्ञ नहीं, तन्त्र नहीं, मन्त्र नहीं, केवलमात्र हरि बोल ।+

\+ अज्ञो वदति विज्ञाय सुज्ञो वदति विष्णवे ।
तयोरपि फलं तुल्यं भावग्राह्यो जनार्दनः ॥

कलियुग केवल नाम अधारा । सुमिरि सुमिरि भव उतरहिं पारा ॥
(तु० रा०)

ध्यायन्कृते यजन् यज्ञे त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥

– सत्यप्रतिपादकत्वात् सत्यविषयत्वात् नामसंकीर्तनादि भगवद्-भजनमेव सत्यम् । अतो द्वापरान्ते पुराणविभागात् कलियुगोत्पन्नाना-मेवोपकारकत्वं मुख्यमभिप्रेत्य सत्यप्रधानत्वमेवास्य भागवतस्य युक्तम् । अन्येषां ज्ञानादीनां युगान्तरीयाधिकारविषयत्वेनात्राप्युदाहरण-त्वेनेदानीन्तनानां प्रायशोऽनधिकारित्वाच्चानुवादरूपत्वं संगच्छते ॥

* ꙮ *

रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा स्मरन्मुक्तिमुपैति जन्तुः ।
कलौ युगे कल्मषमानसानामन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः ॥
हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

पुनः

श्रीमूर्ति गढ़कर पुष्प जल चढ़ाकर भक्ति से पूजा करती हूं।*कभी विह्वल होकर आंखों में आंसू भरे हुए उसके श्रीमुख को देखती हूं।

कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत् ॥

(जन्माद्यस्य-गूढार्थदीपिका भा० १-१)

कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ।
कीर्तनेनैव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत् ॥४८-५

नह्यतः परमो लाभो देहिनां भ्राम्यतामिह ।
यदा विन्देत परमां शान्ति नश्यति संसृति ॥४९-५

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम् ।
स्मरन्ति स्मारयन्ति ये हरेर्नाम कलौ युगे ॥५०-५

कलौ दोषनिधौ राजन् अस्ति ह्येको महान्गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत् ॥

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायाः कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥५२-५

(भक्तिरत्नावली)

* विशिष्टा पूजा यजनमितरत् ॥३७

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ (भाग)

पुष्प—

अहिंसा प्रथमं पुष्पं द्वितीयं चरणग्रहः ।
तृतीयकं भूतदया चतुर्थं क्षांतिरेव च ॥५१

जब वह नहीं बोलता, तब मैं कातर होकर उसके चरणों में लोट जाती हूं और रो-रोकर कहती हूं 'हे नाथ, बोलो'। श्री मूर्ति मेरे दुःख को देखकर हंसकर मेरी ओर देखते हैं। इससे आश्वासन पाकर मैं आनन्द से मत्त होकर उसकी सेवा करती हूं।

❀ ❀ ❀

उसको मैंने कमल के आसन में बिठाया ॥ध्रु०॥ मैंने हाथ

शमस्तु पञ्चमं पुष्पं दमः षष्ठं च सप्तमं ।
ध्यानं सत्यं तथाष्टमं च ह्येतैस्तुष्यति केशवः ॥४८
एतैरेवाष्टभिः पुष्पैस्तुष्यते वार्चितौ हरिः ।
पुष्पान्तराणि सन्त्येव बाह्यानि मनुजोत्तम ॥४६

(पद्मपुराण पातालखंड अ० ४२)

पूजा—

उपचाश विनिर्दिष्टाः पूजायामेकविंशतिः ।
आवाहनं स्वागतञ्च स्वासनं स्थापनं तथा ॥
पाद्यमर्घ्यं तथा स्नान वसनं चोपवीतकम् ।
भूषणं गन्धपुष्पे वै धूपदीपौ तथैव च ॥
नैवेद्याचमने चैव तांबूलं तदनन्तरम् ।
माल्यं नीराजनञ्चैव नमस्कारविसर्जने ॥
सू० — न तदर्पिताऽत्मीयत्वमनौचित्यात् ॥३६
तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥

जोड़कर उसके गुण गाकर प्रणाम किया और प्रभु मेरे स्तव से सुखी हुए। मैंने पंचदीप से उसकी आरती की। घण्टारव से मिल कर मेरे हाथों के कंकण और वलय बजने लगे। प्रभु मेरी सेवाओं से तृप्त हुए। मैंने यत्न से फूलों की शैया बिछाई, उसमें श्रीहरि सुख से निद्रा गये और मैं उनका मुख देखती हुई पाद-सेवा करने लगी, और उनके चरणों को हृदय में रखकर सो गई। फिर सिंहासन में बिठाकर, अपने बालों से उनके अरुण चरण को पोंछा। उनके चरणों की धूल ही मेरे अङ्ग का चन्दन हुई।' यह कहकर नव-बाला ने सखी* को प्रणाम किया और कहा, 'इस दीना-हीना पर दया करो। तुम लोगों की चरण-धूलि मेरा स्नान है और तुम लोगों का प्रसाद मेरा भरोसा है।' जाने कितनी अपराधी हो, इस तरह अधोमुख करके वह बाला कातर होकर मलिन मुख करके रोने लगी और मुख से कृष्ण नाम जपती हुई बोली—'हे प्रभो,

---

* तेषामहं पादसरोजरेणुमार्या वहे याधिकिरीटमायुः।
नित्यं यदा विभ्रत आशु पापं नश्यत्यमुं सर्वगुणा भजन्ति ॥
(भक्तिरत्नावली १७ पृ० ४१ पृथुः)

Good Sire, I should bear the dust of the lotus feet of His votaries on my crown as long as I live. He who does it, his sin is destroyed and all excellent qualities wait on him to become his.

मेरी मनोकामना पूरी करो और मुझे अपनी दासी की दासी* बनाकर रक्खो।' ऊर्ध्व नयनों से देखती हुई ऊंचे स्वर से उसे पुकारती है और धूलि में लोटती है और कहती है—'हे सखि, जिसको मैं अपने हृदय में रखती हूं, वह कहां भाग गया है, उसको मैं वन में खोजती हूं।'

---

* आनम्रायां मयि निजमुखालोकलक्ष्मीप्रसादं,
खेदश्रेणिविरचितमनोलाघवायां विधेहि।
सेवा भाग्ये यदपि न विभो योग्यता मे तथापि,
स्मारं स्मारं तव करुणतापूरमेवं ब्रवीमि॥

(कल्याण पृ० ८३१)

दीनबन्धुरिति नाम ते स्मरन् यादवेन्द्र पतितोहमुत्सहे।
भक्तवत्सलतया त्वयि श्रुते मामकं हृदयमाशु कम्पते॥ (क०)

ब्याधहूं ते विहद असाधु हूं अजामिल लौं
ग्राह तें गुनाहीक हौं तिन में गिनाओगे।
स्योरी हूं न सूद्र हूं न केवट कहूं को
त्यों न गौतमीतिया हूं जा पैं पग धरि आओगे
राम सों कहत पदमाकर पुकारि तुम मेरे
महा पापन को पारहु न पाओगे।
झूठे ही कलंक सुनि सीता ऐसी सती तजी
हौं तो सांचीहूं कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे?

(पद्माकर क० कौ०)

बलरामदास कहता है—'हे प्रभो, वांच्छित वस्तु को कपड़े में छिपाकर, निरर्थक सखी को क्यों धोखा दे रहे हो ? उसकी मनःकामना पूर्ण करो।'

उस समय रङ्गिनी ने मधुर हंसी हंसकर कहा—'तू पति का सम्मान चाहती है। सर्वदा उसे प्रणाम करने के लिये व्यस्त रहती है, यह सुनकर हंसी आती है। जीवन-मरण का जो कर्ता है, उसे दासी के प्रणाम करने से यदि सुख हो तो यही समझना चाहिये कि उस पुरुष को कुछ भी ज्ञान नहीं है। सिंहासन में बैठकर, हाथ में खड्ग लेकर जो ठाकुराली (हकूमत) करता है, और छोटे लोग जिसके सम्मुख हाथ जोड़कर डर से त्राहि-त्राहि करते हैं, जो सभी मुख से कहते हैं, 'तू बड़ा दयालु है' और यह सुनकर प्रसन्न हो जाता है, पर कुछ त्रुटि होते ही उसी समय उसे मार डालता है, और दिन-रात दूसरों के छिद्र ढूंढ़ता रहे, ऐसे प्रभु के मुख में आग लगे। जिसका इतना भय करती हो, उसकी भक्ति किस प्रकार हो, मुझे समझा दो।'*

कंगालिनी ने कहा—

'अहा उसके हृदय से श्री चरण अधिक× मधुर हैं॥ ध्रु० ॥

---

* He who worships God through fear
Will worship a devil should he appear.

× यद्ध्यायेत्सततं विधिः पदयुगं नाभ्यम्बुजे संस्थितः
गंगां यतपदसम्भवां स्मररिपु र्धत्ते स्वशीर्षे सदा

उसने तो मुझे हृदय दिया था, परन्तु मैंने श्री चरण मांग लिये, इससे मेरे बन्धु को दुःख हुआ। अहा, मैं उसके पदकमलों में रहती हूं, यदि हृदय में जाती हूं तो मुझे गिरने का भय रहता है, परन्तु चरणों में यह भय नहीं है। अहा, उसके हृदय में प्रेमाग्नि जलती है। मेरे हृदय में प्रेम नहीं है और बन्धु के प्रेम* से दुःख पाती हूं। इसलिये उसके स्निग्ध चरणों में जाना चाहती हूं। हे सखि, जब मैं अपने सुख के लिये उसकी स्तुति करती हूं और

यन्नित्यं कमला च सेवत इदं यत्नेन पादद्वयम्
तद् द्रष्टुं कमलापतेः सुकुटिला वामा च चूडा चिरम् ॥

तानानयध्वमसतो विमुखान्मुकुन्दपादारविन्दमकरंदरसादजस्रम्
निष्कञ्चनैः परमहंसकुलै रसज्ञैर्जुष्टा गृहे निरयवर्त्मनिबद्धतृष्णान्॥

(भा० ६-३-२८)

विहाय पीयूषरसं मुनीश्वरा ममांघ्रिराजीवरसं पिबन्ति किम्।
इति स्वपादाम्बुजपानकौतुकी स गोपबालः श्रियमातनोतु वः ॥

बार बार मांगौं कर जोरे। मम परिहरै चरन जनि भोरे ॥

(तु० रा० बा०)

* आदौ श्रद्धा ततः साधुसंगोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात् ततोऽनिष्ठारुचिस्ततः ॥
अथाऽसक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेम्नः प्रादुर्भावे भवेत्क्रमः ॥

दयामय कहकर पुकारती हूं, तो मेरा अंग शिथिल हो जाता है* और त्रिजगत् सुखमय देखती हूं। स्तुति सुनकर बन्धु को लज्जा आती है। मैं स्तुति करके सुख पाती हूं, यह देखकर दयामय बन्धु मुझे निषेध नहीं करते हैं। जब मैं अपने केशों से उसके चरणों को पोंछने लगती हूं, तब वह मेरे हाथ पकड़ता है और मैं कहती हूं, इन केशों ने तुम्हारा क्या अपराध किया है। हे सखि, एक बेर पोंछकर देखो। तुमने तो हे सखि, कभी पोंछा नहीं, मैं पोंछती हूं। देखो, हममें से कौन ज्यादा सुखी है ? क्या स्तुति सुनकर बन्धु प्रसन्न हो सकता है ? जब बन्धु प्रसन्न न हो तो क्या मैं उसे प्रसन्न+ कर सकती हूं वह तो मेरे अनुरोध से प्रसन्न होता है। कौन छोटा, कौन बड़ा, यह कौन जानता है। बन्धु छोटा होना चाहता है, परन्तु मैं नहीं होने देती। इसलिये

---

* महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी,
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथा वाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधिगृण-
न्ममाप्येषस्तोत्रे हरनिरपवादः परिकरः ॥ १ ॥ (महिम्न)

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम्।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथनबुद्धिर्व्यवसिता ॥ (म० ३)

\+ नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ॥

उसके संग ठेलाठेली÷ होती है। हे सखि, क्षुद्र निराश्रय जीव जिनको लेशमात्र भी शक्ति नहीं, उससे वाद (बहस) करते हैं। हे सखि, तू क्या बड़ाई करती है, तेरी सब सुख-सम्पत्ति उसीके चरणों की कृपा से* है। सभी उसके हृदय में जाना चाहते हैं। यदि मैं भी हृदय में जाऊं तो चरण-सेवा का भार किसको दूं ? क्या तू जानती नहीं कि नदिया का गौर हरि एक बार ही दास्य सुख आस्वादन करने में निमज्जित हो गया और व्रजपुरी भूल गया। वह सर्वेश्वर है, तुम्हारे निमित्त ही वह सब करता है, और करके भी निन्दा का भागी होता है और तुमसे कुछ भी नहीं चाहता है। यदि तुमको वह पञ्चेन्द्रिय+ नहीं देता, तो कहो. बलराम पूर्णानन्द गुणधाम के रूप रस को आस्वादन कैसे करते ?

÷ भक्त और भगवान् की ठेलाठेली कैसे होती है। (पंचम सखी की कहानी देखो)।

* सान्द्रानन्दपुरन्दरादिदिविपद्वृन्दैरमन्दादरा-
दानम्रैर्मुकुटेन्द्रनीलमणिभिः सन्दर्शितेन्दीवरम् ।
स्वच्छन्दं मकरन्दसुन्दरगलन्मंदाकिनीमेदुरं
श्री गोविन्दपदारविन्दमशुभस्कन्दाय वन्दामहे ॥४

(गीतगोविन्द सर्ग ७)

\+ वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां
हस्तौ च कर्म्मसु मनस्तव पादयोर्नः ।
स्मृत्यां शिरस्तव निवास जगत्प्रमाणे
दृष्टिः सतां दरशनेस्तु भवत्तनूनाम् ॥ (दे० भी० पृ० २०६)

कंगालिनी फिर कहने लगी—'हे सखि, सुन, फिर मैंने अभिमान से अन्धी होकर उससे कहा कि पुकारने पर मैं उत्तर नहीं पाती, यह मेरे मन में बड़ा धोखा है। तुम तो परम दयालु सदा से हो और निष्ठुर का काम करते हो।* रोकर पुकारने पर मुझे तुम्हारा पता नहीं मिलता, वधिर की मूर्ति धरते हो। सौ बार पुकारने पर एक बार भी दर्शन नहीं देते। जब मैं नहीं पुकारती तो आ जाते हो।'

तब—उस समय—

श्री हरि ने मेरे दोनों हाथ पकड़कर कहा—'तूने मुझे कितना पुकारा है और मुझे न पाकर मन खोलकर कितना रोई है। इसलिये मैं तेरा अपराधी हूं, मुझे क्षमा कर। अब ऐसा नहीं होगा। जिस समय तुझे मुझको देखने की इच्छा होगी, मुझको उसी समय पा लेगी।' यह बात सुनकर मैंने विकल होकर मन-ही-मन सोचा कि इतने दिन पीछे आज मेरा दुःख विमोचन हुआ और मेरी वासना पूर्ण हुई।× मैं आह्लाद से गलकर उसके चरणों में गिरी और कोटि बार प्रणाम किया। वह मलिन मुख से देखकर छिप गया और मैं मन के आनन्द में रही।

* * *

---

* शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुपादृशा
सुरतनाथ ते शुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥१०
(भा० गो० गी०)

× व्यपेतभीः प्रीतमना बभूव। (गी०)

मैंने पुकारा, 'हे जगन्नियन्ता, कहां हो ?' हरि छिपे हुए थे, दया करके आगये और मेरे सन्मुख खड़े हो गये। मैंने मन में आनन्दित होकर प्रणाम किया। मैंने कहा—'हे नाथ, सुनो, मेरा कोई प्रयोजन नहीं है, आपकी परीक्षा के लिये आपको पुकारा है। दूसरे दिन मैंने ऊंचे स्वर से पुकारा, इस बार भी श्री हरि कृपा करके आकर खड़े होगये। मैंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। इसी प्रकार मैंने बार-बार पुकारा और पुकारते ही तीन लोक के स्वामी मेरे सन्मुख आकर खड़े हो गये।

* * *

इसी प्रकार उनको पुकारते ही वे मिल जाते थे और जो मैं चाहती, वह मिल जाता। अब मेरे लोभ की कोई भी सामग्री नहीं* रही। क्रम-क्रम से मेरी वासना कम होने लगी और मन में यह निश्चय हो गया कि जो चाहूंगी, सो मिल जावेगा। सम्पूर्ण वासनाओं का क्षय हो गया। मन में श्रीहरि का मुख देखने की इच्छा होते ही मैं आनन्द के हिल्लोल में बहने लगती थी। क्रम-क्रम से

---

* जिमि सरिता सागर महं जाईं। यद्यपि ताहि कामना नाहीं॥

(तु० रा० बा०)

अपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥

(गीता)

देखने की इच्छा भी छूट गई।* अब दर्शन-सुख भी नहीं रहा। कभी उसको आंखें बन्द किये ही पुकारती थी। आगे आने पर मैं आंखें नहीं खोलती थी। मुझे यह निश्चय था कि पुकारते ही वह आवेगा। पुकारने की वासना हृदय से निकल जाने से आलस्य आगया।+ रात-दिन शयन करने लगी। परन्तु सारे दिन-

* वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यद्ब्रह्मदर्शनम्॥
यदास्य चित्तमर्थेषु समेष्विन्द्रियवृत्तिभिः।
न विगृह्णाति वैषम्यं प्रियमप्रियमित्युत॥
स तदैवाऽऽत्मनाऽऽत्मानं निःसङ्गं समदर्शनम्।
हेयोपादेयरहितमारूढं पदमीक्षते॥

(दै० मी० पृ० ६४)

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥ (गी०)

सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहुँ, राम कहत जमुहात।
राम प्राण प्रिय भरत कहं, यह न होइ बड़ बात॥

(तु० रा० अ०)

\+ अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित्तत्तत् कामस्य चेष्टितम्॥

(दै० मी० १८४)

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥ (गी० २-७१)

रात सोया तो नहीं जाता, आंखें मूंदकर भूमि में पड़ी रहती थी। पहले तो मैं उसे रोज-रोज पुकारती थी। अब पुकारने की प्रवृत्ति नहीं रही। श्री हरि की सहायता से भय* दूर होगया। और दुःख दूर होने से आंखों से जल नहीं आता था। हंस और रो भी नहीं सकती थी। मेरा मरना और जीना समान हो गया।

* * *

एक दिन अकस्मात् मन में आया कि मैंने बहुत दिनों से उसको नहीं बुलाया है। मैंने जम्भाई लेते-लेते उसको पुकारा। उसी समय देखती हूं कि श्री हरि सन्मुख हैं।× आंख खोलकर

तदा पुमान्मुक्तसमस्तबन्धनस्तद्भावभावाऽनुकृताऽऽऽशयाऽकृतिः
निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम् ॥

कवित्त—

* आये को हर्ष नहीं गये को शोक नहीं
ऐसो निर्द्वन्द होय समझ की बात है।
देह नेह नेरे नहीं लक्ष्मी को हेरे नहीं,
मन को कहूं फेरे नहीं पाहन सो गात है॥
काहू सों प्रीति नहीं लोगन की रीति नहीं
हार नहीं जीत नहीं वर्ण नहीं जात है।
ऐसो जब ज्ञान होत तब ही कुछ ध्यान होत
ब्रह्म के समान होत ब्रह्म में समात है॥

× राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिनहिं न पाप पुञ्ज समुहाहीं॥९
यह तो राम लाइ उर लीन्हा। कुल समेत जग पावन कीन्हा॥

देखती हूं कि श्री हरि हाथ जोड़कर खड़े हैं। उनको देखकर मैंने कहा, 'तुम मेरे आगे क्यों हाथ जोड़ते हो? मैं तुम्हारी दासी और तुम मेरे स्वामी हो, मेरा सन्मान तुम क्यों करते हो।' इस पर श्री हरि ने नीची गर्दन करके धीरे-धीरे कहा—'तुम मुझको बुलाती हो और मैं आ जाता हूं। मैं तुम्हारी इच्छानुसार चलने वाला हूं। और तुम मेरी प्रभु हो, इसीसे हाथ जोड़कर खड़ा रहता हूं। तुम मन में क्यों दुःखित होती हो?' यह सुनकर मुझे बड़ी लज्जा आई और मैंने हाथ जोड़कर विनती की कि हे प्रभु, सुनो, तुम ऐसा न करो, एक तो मैं मरी हुई हूं, उस पर यन्त्रणा मत दो।

* * *

वे चले गये और मैं मन में सोचने लगी कि मेरा मरना-जीना समान है, इससे मेरा मरना ही अच्छा है।* इस प्रकार के

स्वपच सवर खल जमन जड़, पामर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात ॥१६१

(तु० रा० अयो०)

* मुक्ताश्रयं यर्हि निर्विषयकं विरक्तं
निर्वाणमृच्छति मनः सहसा यथार्चिः।
आत्मानमत्र पुरुषोऽव्यवधानमेक-
मन्वीक्षते प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः॥ (दे० मी० ६४)

अधोक्षजालम्भमिहाऽशुभात्मनः शरीरिणः संसृतिचक्रशातनम्
तद्ब्रह्मनिर्वाणसुखं विदुर्बुधास्ततो भजध्वं हृदये हृदीश्वरम्॥

जीवन में सदा दुःख है, जीव के सौभाग्य की जो सीमा है, वह दयालु श्री हरि ने मुझे दी, मैं फिर उसको पुकारूंगी और उनसे मांगूगी कि ऐसा जीवन अब मुझको असह्य होगया है। मैं मरूंगी, मरूंगी, मुझे निर्वाण दो। हे भगवान, मुझे निर्वाण मुक्ति दो। यह कहते-कहते मेरा हृदय विदीर्ण हो गया। बहुत दिनों के पीछे मेरी आंखों में जल आया और हृदय के किवाड़, जो बहुत दिनों से दृढ़ बन्द थे, अभी खुले और तरङ्ग उठी, 'हे नाथ' कहकर मैं भूमि में गिरी और अचेत होकर पड़ी रही।

बहुत क्षण पीछे मैंने आंखें खोलीं। न जाने क्यों मेरा मन पुलकित था, देखा तो श्रीहरि मेरे शिरहाने बैठे हुए* करुणा से मुझे देख रहे हैं। उस समय मैं उठकर उनके चरणों में पड़ी और कहा—

---

* उदयन्नेव सविता पद्मेष्वर्पयति श्रियम्।
विभावयन् समृद्धीनां फलं सुहृदनुग्रहम्॥

माया वस जिमि जीव, रहहिं सदा संतत मगन।
तिमि लागहु मोहि पीय, करुणाकर सुन्दर सुखद॥

यदि प्रसन्नोसि मयि त्वमीश त्वत्पादमूले देहि भक्तिं सदैव।
त्वद्दर्शनादेव शुभाशुभं च नष्टं मदीयं ह्यशुभं च नित्यम्॥१६

त्वन्मायया नष्टमिमं च लोकं मदेन मत्तं बधिरं चांधभूतम्।
ऐश्वर्ययोगेन च यो हि मूको जातः सदादीनगुर्वादिकेषु॥१७

मे देहि चैश्वर्य्यमनुत्तमं त्वत्पादारविन्दस्य विरुद्धभूतम् (?)
त्वमेव मे देहि सतां च संगं तव स्वरूपप्रतिपादकानाम्॥१८

(गरुड़पुराण अ० २५ उत्तरखंड जाम्बवतीवाक्यम्)

'हे प्रभु, दीन जन को क्षमा करो। तुमने मुझे सुख में रख छोड़ा था, परन्तु मुझे अच्छा नहीं लगा और तुमको उपदेश देने को मन हुआ। मैं नहीं जानती किसको अच्छा और किसको बुरा कहते हैं? तो भी मैं अपने लिये वर मांग लेती हूं। इस समय तुम्हारे चरणों में यही विनती है कि जो तुम्हारी इच्छा हो, वह वर दो।'* नाथ 'तथास्तु, तथास्तु' कहकर अकस्मात् अदृश्य हो गये। क्या वर मुझे मिला, मैं नहीं समझ सकी, और सोचने लगी कि मैंने क्या वर पाया। फिर मैंने विचार किया कि उनको बुलाऊं और पूछ लूं कि क्या वर दिया है? यह सोचकर मैंने उनको जोर से पुकारा, 'हे हरि, दिखाई दो।' जब हरि न आये तो मुझे भय हुआ, मैंने मृदु स्वर से पुकारा कि 'हे राम, हे कृष्ण, हे हरि, दिखाई दो।' फिर ऊंचे स्वर से पुकारा, रात-दिन कातर स्वर से पुकारती हूं, परन्तु हरि नहीं दिखाई देते। उनको खोकर सारा संसार अंधेरा× मालूम होता है और मैं रात-दिन ढूंढ़ती फिरती हूं।

---

* मुनि कह मैं बर कबहु न जांचा समुझि न परै झूठ का सांचा।
तुमहि नीक लागै रघुराई, सो मोहि देहु दास सुखदाई ॥६
(तु० रा०)

× न देहं न प्राणान्न च सुखमशेषाऽभिलपितम्।
न चात्मानं नान्यत्किमपि तवशेषत्वविभवान् ॥
बहिर्भूतं नाथ क्षणमपि सहे यातुशतधा।
विनाशंस्तत्सत्यं मधुमथनविज्ञापनमिदम् ॥
(यमुनाचार्य्य क० कृ० ६४७)

युगायितं निमिषेण चक्षुषा प्रावृषायितम् ।
शून्यायितं जगत्सर्व्वं गोविन्दविरहेण मे ॥७

ब्रह्मरात्रिततिरप्यद्य शत्रोः सा क्षणार्धवदगात्तव संगे ।
हा क्षणार्धमपि वल्लविकानां ब्रह्मरात्रिततिवद्विरहेऽभूत् ॥

अटसि यद्भवानह्निकानने त्रुटियुगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जडवदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥

(भा० १० गो० गी०)

(भ० र० सिन्धु पृ० १६८)

अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजांगनाः ।
अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥

गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनम् ।
पप्रच्छुराकाशवदन्तरं वहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥

हे नाथ ! हे रमण ! प्रेष्ठ ! क्वासि क्वाऽसि महाभुज !
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥

हे देव हे दयित हे जगदेकबन्धो !
हे कृष्ण हे चपल हे करुणैकसिन्धो !
हे नाथ हे रमण हे नयनाभिराम !
हा हा कदानुभवितासि पदं दृशो मे ॥ (विल्वमंगल)

अनौपम्यमनिर्देश्यमव्यक्तं निश्चलं महत् ।
यथा ब्रह्म तथा तस्य विरहवेदनं भृशम् ॥

(सा० स० वा० दे० मा० पृ० ६४)

सू० तद्विस्मरणादेव व्याकुलतासाविति ॥ (नारदः)

सू० तीव्रसंवेगानामासन्नतमः ॥ (पतंजलिः)

संगमविरहविकल्पे वरं विरहो न सङ्गमस्तस्याः ।
सङ्गमे यदि सैका विरहे तन्मयं जगत् ॥

(पद्यावल्यां श्रीरूपगोस्वामी)

विरहा विरहा मत कहो, विरहा है सुल्तान ।
जा घट विरह न संचरे सो घट जान मसान ॥
हवस करै पिय मिलन की औ सुख चाहै अङ्ग ।
पीर सहे बिनु पदमिनी पूत न लेत उछङ्ग ॥
विरहिन ओदी लाकड़ी सपचे और धुंवाय ।
छूटि पड़ौं या विरह से जो सिगरो जल जाय ॥

(कबीर)

जिय बिनु देह नदी बिनु वारी, तैसेहिं नाथ पुरुष बिनु नारी ॥
जहं लग नाथ नेह अरु नाते, पिय बिन तियहि तरनि ते ताते॥
तनु धन धाम धरनि पुर राजू, पतिविहीन सब शोक समाजू॥
भोग रोग सम भूषण भारू, यम यातना सरिस संसारू ॥
प्राणनाथ तुम बिनु जग माहीं, मो कहं सुखद कतहु कोउ नाहीं॥

(तु० रा० अ०)

वस्ल में हिज्र का ग़म हिज्र में मिलने की ख़ुशी,
कुछ न पूछो कैसी नफ़रत हम से है ।
कौन कहता है जुदाई से विसाल अच्छा है,
हम हैं जब तक वह हमें क्योंकर मिले ?

बलराम कहते हैं, 'हे कंगालिनी, सुन, जीव के हित के लिये वे सुदुर्लभ हैं।'*

---

*. नाऽहन्तु सख्यो भजतोपि जन्तून्। भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये।
यथाऽधनो लब्धधने विनष्टे तच्चिन्तयाऽन्यं निभृतो न वेद॥
एवं मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानांहिवो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः (?)
मया परोक्षं भजता तिरोहितं मासूयितुं मार्हथ तत्प्रियं प्रियाः॥
(चै० मी० पृ० २३५)

कुलकामिनी

(सख्य)

तीसरी सखी की कहानी

मेरा ब्याह बाल्यावस्था में हुआ था, यह मैंने कानों से सुना था, न मैं जानती थी, न अपने मालिक को पहचानती थी। यौवन के अंकुरित होने पर मेरे मन में उसकी सुध आई और अनुमान करने लगी कि उसको कैसे पाऊँ। मेरा स्वामी परदेश था और मुझको उसका पता भी नहीं था।* मैं निराश्रय थी। कौन मेरा

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा

* हमर नागर रहल दूर देश, कोऊ नहिं कहि सक कुशल संदेश।
ऐ सखि काहि करब अपतोस, हमर अभागि पिया नहिं दोष॥
पिया बिसरल सखि पुरब पिरीति, जखन कपाल वाम सब विपरीति
मरमक वेदन मरमहि जान, आनक दुःख आन नहिं जान॥
भनइ विद्यापति न पुरई काम कि करत नागरि जाहि विधि वाम

(विद्यापति)

भरण-पोषण करेगा और कैसे मेरे धर्म्म की रक्षा होगी ? कभी खेल-कूद में भूल जाती थी, और किसी-किसी समय उसकी याद आती थी तो मैं खेल छोड़कर एकान्त में चली जाती थी, और निराशा से मेरे प्राण उड़ जाते थे। लाज छोड़कर मैं सबसे पूछती थी, परन्तु नाना प्रकार के लोग मुझ से नाना प्रकार की बातें करते थे। मैं कौन बुद्धि करूं और किस मार्ग से चलूं कि अपने कुल में मिलूं ?* कोई कहता था कि तेरा स्वामी मन्त्रौषधि से वश होगा और वह मुझे विविध क्रियायें सिखला देता। मैं रात-दिन वही करती थी। उपवास करके देह सुखाती, और मुख से मंत्र जपती थी। योगासन में बैठकर मैंने कितनी क्रियायें कीं मुझे याद भी नहीं है।×

मन्त्र जपने लगती थी तो मन्त्र छूट जाता था और कितनी

---

* श्रुतिर्माता पृष्टा दिशति भवदाराधनविधिं
यथा मातुर्वाणी स्मृतिरपि तथा वक्ति भगिनी।
पुराणाद्या ये वा सहजनिवहास्ते तदनुगा
अतः सत्यं ज्ञातं मुरहर भवानेव शरणम्॥

× श्रुतिमपरे स्मृतिमपरे भारतमपरे भजन्तु भवभीताः।
अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म॥
इदं ज्ञेयमिदं ज्ञेयमिति यस्तृषितश्चरेत्।
अपि कल्पसहस्रेषु नैव ज्ञेयमवाप्नुयात्॥
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि। (गीता १०)

ही बातें मन में आ जाती थीं।* फिर सोचती थी कि मेरा पति सर्प जाति तो है नहीं, जो मन्त्र से वश होवे। पुरुष प्रबल और मैं क्षुद्र नारी, वे स्वामी और मैं उनकी दासी।+ उनको छींटा-फांटा देकर क्या मैं बस कर सकती हूं ? यह सोचकर मुझे हंसी आती थी। किसी ने मुझे सिखलाया कि उस ही के नाम को रात-दिन मुख से जपो, पुकारते-पुकारते वह जल्दी आ जावेगा। केवल 'हरि बोलो'। उसका नाम लेते-लेतं मुख सूख गया, पर क्या करूं, बाध्य होकर जपती थी। जपते-जपते फिर-फिर देखती थी कि अब कितनी (माला) रह गई है। फिर कभी संसार में मग्न हो जाती थी और अभ्यास से नाम लेती रहती थी। नाम तो उसका लेती थी और बातें और करती थी,× इससे सतीत्व में कलंक लगता था।

---

* चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

\+ प्रकृतिः पुरुषाधीना यथा—
भूमिरापोनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥ (गी० ४ ५-७)
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। (गीता)

× मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ (गीता १४-२६)

उसका नाम लेने से जब हृदय द्रवीभूत हो,* तभी तो मैं उसके

धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाऽव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥

(गीता १८-३३)

पतिव्रता

पतिवरता को सुख घना जा के पति है एक ।
मन मैली विभिचारनी ता के खसम अनेक ॥ (कबीर)
पतिवरता पति को भजै और न आन सुहाय ।
सिंह बचा जो लंघना तो भी घास न खाय ॥
नैनों अन्तर आव तू नैन झांपि तोहि लेव ।
ना मैं देखौं और को ना तोहि देखन देव ॥
मैं सेवक समरत्थ का कबहु न होय अकाज ।
पतिवरता नांगी रहै वाही पति की लाज ॥

* नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदया गिरा ।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति ॥

नामापराधानि––

सतां निन्दा, श्रुतितदनुगतशास्त्रनिन्दनम्, हरिनाममाहात्म्यमर्थवादमात्रमिदमिति मननम्, तत्र प्रकारान्तरेणार्थकल्पनम्, नामबलेन पापे प्रवृत्तिः, अन्य शुभक्रियाभिर्नामसाम्यमननम्, अश्रद्दधानादौ नामोपदेशः, नाममाहात्म्ये श्रुतेऽप्यप्रतीतिरिति सर्वे एते हरिभक्तिविलासे प्रमाणवचनैर्द्रष्टव्याः । (भ० र० सि०)

चरणों की दासी कहलाऊं ! शुष्क नाम लेने से मन में भय होता था और अपराध* हुआ-सा लगता था । नियम करके नाम नहीं ले सकती थी, जब अच्छा लगता था, लेती थी । एकान्त में बैठकर

---

* सेवा नामापराधवर्जनमिति वाराहे पाद्मे च ॥

यानैर्वा पादुकैर्वापि गमनं भगवद्गृहे ।
देवान्तवाद्यसेवा च अप्रणामस्तदग्रतः ॥१
उच्छिष्टे वाप्यशौचे वा भगवद्वन्दनादिकम्
एकहस्तप्रणामं च तत्पुरस्तात्प्रदक्षिणम् ॥२
पादप्रसारणं चाग्रे तथा पर्यङ्कबन्धनम् ।
... ... ॥

शयनं भक्षणं चापि मिथ्याभाषणमेव च
उच्चैर्भाषा मिथोजल्पो रोदनानि च विग्रहाः ॥
निग्रहानुग्रहौ चैव नृषु च क्रूरभाषणम् ।
कम्बलावरणं चैव परनिन्दा परस्तुतिः ॥
अश्लीलभाषणं चैव अधोवायुविमोक्षणम् ।
शक्तौ गौणोपचारश्च अनिवेदितभक्षणम् ॥
तत्तत्कालोद्भवानां च फलादीनामनर्पणम् ।
विनियुक्तावशिष्टस्य प्रदानं व्यंजनादिके ॥
पृष्ठीकृत्यासनं चैव परेषामभिवादनम् ।
गुरौ मौनं निजस्तोत्रं देवतानिन्दनं तथा ॥
अपराधास्तथा विष्णो द्वात्रिंशत्परिकीर्तिताः ॥

वाराहे च येऽन्येपराधास्ते संक्षिप्य लिख्यन्ते—

राजान्नभक्षणं, ध्वान्तागारे हरेः स्पर्शः, विधिं विना हर्य्युपसरणम्, वाद्यं विना तद्द्वारोद्घाटनम्, कुक्कुरदृष्टभक्षसंग्रहः, अर्चने मौनभङ्गः, पूजाकाले विड्उत्सर्गाय सर्पणम्, गन्धमाल्यादिकमदत्वा धूपम्, अनर्हपुष्पेण पूजनम्। तथा

अकृत्वा दन्तकाष्ठं च कृत्वा निधुवनं तथा।
स्पृष्ट्वा रजस्वलां दीपं तथा मृतकमेव च॥
रक्तं नीलमधौतं च पारक्यं मलिनं पटम्।
परिधाय मृतं दृष्ट्वा विमुच्यापानमारुतम्॥
क्रोधं कृत्वा श्मशानं च गत्वा भुक्त्वाऽप्यजीर्णयुक्।
भुक्त्वा कुसुम्भं पिण्याकं तैलाभ्यङ्गं विधाय च॥
हरेः स्पर्शो हरेः कर्म करणं पातकावहम्॥ (भ० र० सिं०)

ध्यान रहे कि साधक का मन जप ध्यान करने में प्रायः चार शाखाओं में दौड़ता है। यथा—

१ आर्तम्—राज्योपभोगशयनासनसाधनेषु
स्त्रीगंधमाल्यमणिवस्त्रविभूषणेषु।
इच्छाभिलाषमतिमात्रमुदेति मोहाद्
ध्यानं तदार्तमिति संप्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥

२ रौद्रम्—संच्छेदनैर्दहनताडनपीडनैश्च
गात्रापहारदशनै र्विनिकृन्तनैश्च।
यस्येह राग उपयाति न चानुकम्पा
ध्यानं तु रौद्रमिति तस्य वदन्ति संतः॥

प्राणनाथ से बातें करती थी।* उत्तर न पाकर भी मैं आनन्द में मग्न रहती थी, क्योंकि स्वामि-चिन्ता बड़ी मधुर है। कहती थी—'मैं निराश्रय रही हूं, मेरी सुध लो, हे अशरणबन्धो!'+

---

३ धन्यम्—सूत्रार्थमार्गणमहाव्रतभावनानि
निर्बन्धमोक्षगमनागतिहेतुचिन्ता।
पंचेन्द्रियाद्युपशमश्च दया च भूते
ध्यानं तु धन्यमिति तत्प्रवदन्ति सन्तः॥

४ शुक्लम्—यस्येन्द्रियाणि विषयैर्न विचर्चितानि
संकल्पनाशनविकल्पविकाशयोगैः॥
तत्त्वैकनिष्ठधृतियोगभृतान्तरात्मा
ध्यानं तु शुक्लमिति तत्प्रवदन्ति सिद्धाः॥

प्रत्येक का फल—

आर्त्ते तिर्यगधोगतिश्च नियता ध्याने च रौद्रे सदा।
धन्या देवगतिः शुभं फलमथो शुक्ले च जन्मक्षयः।
तस्माज्जन्मरुजापहे हिततरे संसारनिर्वाहके
ध्याने श्वेततरे रजःप्रमथने कुर्यात्प्रयत्नं बुधः।

(भविष्योत्तरपुराण)

* विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥ (गीता १८-५२)

+ हे कृष्ण द्वारिकावासिन् क्वासि यादवनन्दन।
इमामवस्थां सम्प्राप्तां शरणं किन्न पश्यसि॥ (द्रौपदी)

मैं मन-ही-मन कहती थी—

लोग तो समझाते हैं, पर मैं नहीं समझती ॥ ध्रु० ॥ जो मुझे समझाने आते हैं, वे भी रास्ते-रास्ते रोते फिरते हैं। वे भी मेरी ही तरह दुःखी हैं*, हैं अथवा नहीं हैं, मुझसे कहो। एक बार मुझसे बोलकर अन्तर्ध्यान हो चले जाना। मैं उस ही का अवलम्बन करके रहूंगी। यदि कोई तत्व पाऊंगी तो सब दुख भी सहन करती रहूंगी, और नहीं छोड़ूँगी और सौ वर्ष तक राह देखती रहूंगी।× एक बार दो बातें तो कहो। मैं कब स्थिर होऊँगी और कितने दिन आकाश में आशालता को बांधे लटकती रहूंगी।

❀ ❀ ❀

सखी आई और मेरी ओर देखकर कहने लगी—'मन-ही-मन क्या सोच रही है ? भाई, कहीं पति का ठिकाना मिला ? किसी दिन आया है ?'

और एक कोई आकर जी जलाने लगी, और कहने लगी—

---

* मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ (गीता)

× यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमपि चापरे ॥ (गीता १८-३)
यज्ञ दान तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥
(गीता १८-४)

'कौन किसका पति ? जब ज्ञान होगा, तब जानेगी। यह सब मन की भ्रान्ति है।'*

मैंने कहा—'भाई, मैं उसका भजन करती हूं तो उसमें तेरी

---

* जे असि भक्ति जान परिहरहीं, केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं ॥
ते जड़ कामधेनु गृहत्यागी, खोजत आक फिरहिं पय लागी ॥
(तु० रा० उ०)

शुष्क ज्ञानी, केवल ज्ञान मार्ग वाले, जो कहते हैं—

भवोयं भावनामात्रं न किंचित् परमार्थतः ।
नास्त्यभावः स्वभावानां भावाभावविभाविनाम् ॥४
अयं सोहमयं नाहं इति क्षीणविकल्पना ।
सर्वमात्मेति निश्चित्य तूष्णींभूतस्य योगिनः ॥६
(अष्टावक्रसंहिता १८ प्रक०)

परन्तु

न ज्ञानेन विनोपास्तिर्नोपास्त्या च विनेतरत् ।
कर्मापि तेन हेतुत्वं पूर्वपूर्वस्य कथ्यते ॥२७
यद्वा यावन्नहि ज्ञानं तावन्नोपासनं मतम् ।
यावन्नोपासनं तावन्न ज्ञानं च कथंचन ॥२८
ज्ञानं यावन्न कर्मापि न तावन्मुख्यमीर्यते ।
यावन्न कर्म तावच्च न ज्ञानं साधुसम्मतम् ॥२९
यावन्नोपासनं तावन्न कर्मापि प्रशस्यते ।
यावन्न कर्मोपास्तिश्च न तावत्सात्विकी मता ॥

क्या हानि है। उस ज्ञान से मेरा क्या लाभ होगा, यदि पति नहीं मिला।* पति हो या न हो, मिले या न मिले, मैं तो उसी के अन्वेषण में रहूंगी। योगिनी बनूंगी, कानों में कुण्डल पहनूँगी, वन-वन फिरूंगी। यदि उसको पा लूंगी, तो अपने तापित हृदय

ज्ञानोपासनकर्माणि सापेक्षाणि परस्परम्।
प्रयच्छन्ति परां मुक्तिं नान्यथेत्युक्तमेव वः ॥३१

(सुः गीता पृ० ४०)

* * *

जे असि भक्ति जान परिहरहीं, केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं ॥१
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी, खोजत आंक फिरहिं पय लागी ॥२
सुनु खगेश हरि भक्ति बिहाई, जे सुख चाहहिं आन उपाई ॥३
ते शठ महासिन्धु बिनु तरनी, पैरि पार चाहत जड़ करनी ॥४

(तु० रा० उ०)

* उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः।
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां जायते परमं पदम् ॥
केवलात्कर्मणो ज्ञानान्नहि मोक्षोभिजायते।
किन्तूभाभ्यां भवेन्मोक्षः साधनं तूभयं विदुः ॥८

(यो० वा० प्रस०)

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥

(गीता ४-३०)

को शीतल करूंगी ।* यदि न मिले तो अधिक क्या होगा, जैसी हूं, वैसी ही रहूंगी !'

* * *

पुनः

मैं निर्जन में जाकर फूट-फूट कर रोयी और कहा—'हे प्राण-नाथ, आओ, आओ। मैं कातर होकर बहुत समय तक अकेली घूमी हूं। एक बार दिखलाई दो।' मैं सुवेष बनाकर सिंदूर लगाकर मार्ग में जाकर बैठ रही, देखते-देखते और रोते-रोते मेरी आंखों में अंधेरा छा गया। आंचल बिछाकर भूमि में सोकर मैं निर्जन घर में रोई। मैंने स्वप्न में देखा कि जैसे कोई आकर मुझे आलिंगन कर रहा है।

* * *

स्वप्न

बिजुली के समान वह पुरुष आया और बाहु फैलाकर उसने मेरा मुख चूमा और अल्प काल उसने मुझे अपने हृदय में रक्खा

---

* बन्धूर लागिया योगिनि 'हइव कुराल परिव काने।
जाव देशे देशे बन्धूर उद्देशे सुधाइव जने जने ॥
वन्धुया कोथा वा आछे गो ॥

Rivers to the ocean run.
Nor stay in all their course.

और आंख खुलते ही वह अदर्शन हो गया ।* नींद के आवेश से मेरी आंखे मत्त थीं, मैं अपने चित्त-चोर को देख नहीं सकी । मैं कई दिन तक पागल की भांति रही । यह नहीं समझ सकी कि यह सत्य था या स्वप्न था । जब सत्य समझती थी तो आनन्द होता था परन्तु जब मिथ्या समझती तो आंसुओं में डूब जाती थी ।

स्वामी का सम्वाद

उसके मन की कौन जाने । उस अशरणशरण ने मेरा स्मरण किया । मैं समझती हूं कि किसी दिन मेरे दुःख की बातें किसी ने उस से कही थीं । उसी को स्मरण करके उसने मेरे लिये विचित्र वस्त्र सिंदूर का छींटा लगाकर, विविध गहना और मुक्ता की

स्वप्न-दर्शन

* ओढ़े पट पीत सिर सजनी सुपन वीच
सांवरो सलोनो एक देख्यो आज रैन को ।
जानौं नहिं कौन हो कहां तें आयो मेरे ढिग
लै गयो छबीलो छलि मेरे चित्त चैन को ॥
कंजन से कर मनरंजन करत आनी
अंजन लगायो मेरे खंजन से नैन को ।
कहौं कर जोरि तो सै आनि री मिलाय मो सैं
मोहि अपसोंसैं दे भरोसे निज बैन को ॥

(दीनदयाल)

माला भेज दीं। कलम कागज़ और पढ़ने को पुस्तक भी उसके संग भेजीं। मैं मन में समझी कि अब मुझ को लिखना पढ़ना भी सीखना होगा। फिर मन में सोचा कि उस ही ने भेजी हैं इसका क्या प्रमाण है।* या किसी ने प्रवञ्चना की हो, उसका नाम लेकर भेजा हो।

सङ्गिनियां आईं (ध्रु०)। कोई तो बड़ी सुखी थी और कोई शोकाकुला। प्रत्येक नाना बातें कहती थी। कोई तो कहती थी तू धन्य है और कोई कहती थी तेरे भूषण कृत्रिम हैं। ऐसा तो कोई भी नहीं जो तेरे लिए इन्हें भेजे, यह सब तेरी तय्यारी है। कभी तो इन बातों को सुन कर मुझे व्यथा होती थी और कभी मैं इन्हें हंसी में उड़ा देती थी। अपना दुःख संगिनी से एकान्त में बैठकर कहती थी।

* * *

पुस्तक खोल कर देखा तो मेरे लिये दो भागवत, श्री चरितामृत और चन्द्रामृत-लोचन नाटक गीत भेज रक्खे हैं। पढ़ते समझते खोजते-खोजते अति सूक्ष्म वर्णों में छिपाकर उसकी लिखी हुई दो पंक्ति +देख पाई।

* * *

---

* संशयात्मा विनश्यति (गीता)

\+ मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु
मामेवैष्यसि सत्यन्ते प्रतिजाने प्रियोसि मे॥ (गी० ६५-१८)

मधुर बहिन ने मेरे नव* अङ्ग में भूषण पहिना दिये। और कहा, 'भाई, अपना मुख देख, तेरा रूप फिर गया है'। उसने हंसकर सींक से सिन्दूर लगाया और कहा कि 'यह तुझ को चिह्न देती हूं। आज से तू उसकी हुई।+ तू युग-युग उसको भज।' उसने लज्जा वस्त्र देकर मेरा अंग ढका और कहा 'आज से तुझ को यक्ष राक्षस अथवा नर कोई भी कुदृष्टि से देख अथवा छू न सकेगा।'×

* * *

---

* नव अंग—श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्

आत्मनिवेदन = सू० मुक्तिः समर्पणात् ॥३६

ये कण्ठलग्नतुलसीनलिनाख्यमाला
ये वाहुमूलपरिचिह्नितशङ्खचक्राः।
ये वा ललाटफलके लसदूर्ध्वपुण्ड्रा-
स्ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति ॥

\+ तमेवेकं जानीथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथाऽमृतस्यैष सेतुः।
इह चेदवेदीथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ॥
(उप० दे० मी० पृ० २०२)

× यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोपि यच्चिन्तने।
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो ब्राह्मोपि लोकोऽल्पकः ॥
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वञ्च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥

उस पुरुष ने छिपा कर जो लिपि लिखी थी उसे पढ़कर मेरी छाती धड़कती और मैं आनन्द में मग्न थी। मैं कहती थी कि क्या सच ही यह उसके हाथ की लिपि है या किसी ने मुझे धोखा दिया है। मेरी आंखों से बहुत आंसू गिरते थे तो सब सन्देह दूर हो जाता था। मेरे प्राणेश ने मुझे प्रीति-पत्रिका छिपा कर लिखी है! कैसी मधुर लिपि मेरे लिये लिखी है! मैंने उसको चूमकर हृदय में छिपा लिया। पत्रिका इस भाव से लिखी हुई थी कि उससे मेरी कितनी ही पुरानी जान पहिचान हो, उसमें यह स्वीकार किया था कि वे मेरे आत्मीय हैं। यही बार-बार पुस्तक में स्वीकार किया था।

❀ ❀ ❀

स्वामी का पत्र।

'मैं आ नहीं सका। इसी कारण यह कुछ पंक्ति लिखकर तुमको उपदेशपत्र भेजता हूं।* यदि तू अलंकार चाहती है तो तेरे लिये भेजूंगा। यदि मुझको चाहती है तो जल्दी आऊँगा। जैसा चाहेगी वैसा ही पावेगी।+ जब मुझे देखने को व्याकुल

---

* यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ (गीता)

+ प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते॥
शतायुषः पुत्रपौत्रान्वृणीष्व बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान्।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि॥२३

होवेगी तो निश्चय देख सकेगी। बहुत दिन हुए तुझ से परिचय था अब भी मिलने को हृदय चञ्चल हो रहा है। मैं तुझको क्या लिखूं और तू क्या समझेगी। क्रम-क्रम से पहिचान सकेगी।'*

मधुर से भी मधुर इस पत्र को पढ़ कर अंधकार दूर हो गया और हृदय द्रवीभूत हो गया। तो क्या वही पुरुष मेरा स्वामी है जिस की मुझ पर इतनी ममता है? हृदय में इतना आनन्द उठा कि मैं हाथ उठाकर 'हरि बोल' कह कर नाच उठी।+

* * *

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च।
महाभूमौ नाचिकेतस्त्वमेधि कामानां त्वा कामभाजं करोमि ॥२४
(क० उ०)

धनार्थी धनमाप्नोति दारिद्र्यं तस्य नश्यति
शत्रुसैन्यं क्षयं याति दुस्वप्नः सुस्वप्नो भवेत्।

'अच्युतं केशवं विष्णुं हरिं कृष्णं जनार्दनं हंसं नारायणम्' कहने के बदले में 'दृढ़ा भक्तिस्तु केशवे' चाहिये।

* यजन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥ (गी० ११-१५)
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥ (गीता)
शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया ॥
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्।
अनेकजन्मसंसिद्धः ततो याति परां गतिम् ॥ (गी० ६-२५)

\+ युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ (गी० ६-२८)

सङ्गिनी आई और मैंने उसके हाथ में लिपि दी। वह कहने लगी, 'अब तो तूने अपना प्राणनाथ पा लिया है। हे सखी, तू उसको चाहेगी तो वह अभी आ जावेगा।'

मैंने कहा—'भाई, मैं उसको कैसे चाहूं। अपने मन में विचार करके देख सखी, तुझको गूढ़ अर्थ मिलेगा। 'जैसी तू होवेगी, वैसा पावेगी।' मैं तो मलिन हूं,* प्रभु को पुकारने पर वह अङ्ग में भस्म लगा कर आवेगा। मैं तो निर्गुण हूं, यदि कहूं 'आओ' तो निर्गुण पुरुष पाऊंगी। इसलिये मैं पहिले व्रत साधन करूंगी,÷ पति को

---

* काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥ (गीता ३ ३७)

* * *

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्॥४०'

÷ तस्मात् त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहिह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥३-४१

यश्चैतान्प्राप्नुयात्सर्व्वान् यश्चैतान् केवलांस्त्यजेत्।
प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते॥

इन्द्रियाणान्तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम्॥

वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा।
सर्व्वान् संसाधयेदर्थानक्षिण्वन् योगतस्तनुम्॥ (दे० मी०)

नहीं चाहूंगी, सर्वाङ्ग सुन्दर होने से पति मधुर होवेगा, सुन्दरी होने से सुन्दर मिलेगा।'

* * *

तब मैं एकान्त में बैठकर श्रीमुख लिखकर देखती थी। कभी चरण लिखकर भक्तिपूर्वक उनमें लोटती थी। जब चित्र कुत्सित होता था, तब दुःख से मिटा डालती थी। बनाती और मेटती, मेटती और बनाती थी, यही मेरा रात-दिन का खेल था। अपने प्राणनाथ को मन-पसन्द बनाकर मन-पसन्द सजाती थी और सन्मुख रखकर एक दृष्टि से देखती रहती थी।* देखते देखते

---

*निमेषोन्मेषकं त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्यं निरीक्षयेत्।
यावदश्रूणि निपतंति त्राटकं प्रोच्यते बुधैः॥
निरीक्ष्य निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहिते।
अश्रुसम्पातपर्यन्तमाचार्यैस्त्राटकं मतम्॥
(घेरण्ड और अष्टावक्र सं०)

चित्रदर्शन

नंद के कुमार कों सवारहीं मिलाऊं तोहि
वार वार सौ प्रकार सौं बुझाय हारी मैं।
कहा उपचार करूं कछु ना विचार चलैं
चार ओर ढूंढत दयाल गिरधारी मैं॥
सूखि गयो शरीर चीर की न सुधि, नीर
पीवै नहिं नीर धर्‌यो रह झारी मैं।
मित्र श्याम के विचित्र चित्र को विलोकि बाल
बैठ रही चित्र सी विचित्र चित्रसारी सो॥११६ (दीनदयाल)

चित्त में भाव उठता था और इस संसार को भूल जाती थी।

वह चित्र, मानो जीवन पाकर, मुझे सप्रेम देखने लगा। मेरे मन में ऐसा भाव उठता था कि वह सकरुणा नेत्र से मुझे देखता है। उसके मुख की बातें सुनने को मैं उसके मुख की ओर देखती रहती थी। वह बातें नहीं करता था, चुप रहता था, इससे मुझे अति दुःख होता था। मैं मन में सोचती थी कि मुझ से क्यों बातें करे, मैं तो अति मूढ़ हूं। मैं हाथ जोड़कर कहती थी, 'हे प्राणेश्वर मुझ से दो बातें करो। तुम मेरे प्राणेश्वर हो, मैं तुम्हारी आश्रिता और चिरकाल से तुम्हारी दासी हूं।' मेरी सङ्गिनी आई और हंसकर कहने लगी—'क्या अपने प्राणेश्वर का चित्र बना रही है ? उसका कैसा रूप है और कौन गुण हैं और तेरा वर कितना बड़ा है ?'

मैंने कहा—'उन्होंने लिखा है कि जैसा बनावेगी, वैसा ही पावेगी।* देख तो सही, कैसा बनाया है, तेरे मन भाया है, या नहीं।' मैंने उसके कान में कहा—'मेरा प्राणेश्वर नवीन है, उसका मुख पूर्णिमा के चन्द्र जैसा है, और मुख में सदा हंसी रहती है।+

---

* सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत॥
श्रद्धामयोयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥ (गीता)

+ अयं कम्बुग्रीवः कमलकमनीयाक्षिपटिमा.
तमालश्यामांगद्युतिरतितरां छत्रितशिराः।

दरश्रीवत्साङ्कः स्फुरदरिदराद्यङ्कितकरः

करोत्युच्चै र्मोदं मम मधुरमूर्त्तिर्म्मधुरिपुः ॥

(भ० र० सि० पृ० १२४)

विद्यु दुद्योतवत्प्रस्फुरद्वाससं प्रावृडम्भोदवत्प्रोल्लसद्विग्रहम् ।

वन्यया मालया शोभितोरस्थलं लोहितांघ्रिद्वयं राजिवाक्षं भजे ॥

कुञ्चितैः कुन्तलैः शोभमानाननं रत्नमौलिं लसत्कुण्डलं गंडयोः ।

हाटकेयूरकं कङ्कणप्रोज्ज्वलं किङ्किणीमंजुलं श्यामलं तं भजे ॥

(अच्युताष्टक० स्तो० २०)

अयं नेता सुरम्यांगः सर्वसल्लक्षणान्वितः ।

रुचिरस्तेजसा युक्तो बलीयान् वयसान्वितः ॥१९

विविधाद्भुतभाषावित् सत्यवाक्यः प्रियंवदः ॥२०

वावदूकः सुपाण्डित्यो बुद्धिमान् प्रतिभान्वितः ।

विदग्धश्चतुरो दक्षः कृतज्ञः सुदृढव्रतः ॥२१

देशकालसुपात्रज्ञः शास्त्रचक्षुः शुचिर्वशी ।

स्थिरो दान्तः क्षमाशीलो गम्भीरो धृतिमान् समः ॥२२

वदान्यो धार्मिकः शूरः करुणो मान्यमानकृत् ।

दक्षिणो विनयो ह्रीमान् शरणागतपालकः ॥२३

सुखी भक्तसुहृत् प्रेमवश्यः सर्वशुभङ्करः ।

प्रतापी कीर्तिमान् रक्तलोकः साधुसमाश्रयः ॥२४

नारीगणमनोहारी सर्वाराध्यः समृद्धिमान् ।

वरीयानीश्वरश्चेति गुणास्तस्यानुकीर्तिताः ॥२५

समुद्रा इव पंचाशद् दुर्विगाहा हरेरमी ।
जीवेष्वेते वसन्तोपि विन्दुविन्दुतया क्वचित् ॥२६

❀ ❀ ❀

सदास्वरूपसम्प्राप्तः सर्वज्ञो नित्यनूतनः ।
सच्चिदानन्दसान्द्रांगसर्वसिद्धिनिषेवितः ॥३०

* * *

अविचिन्त्यमहाशक्तिः कोटिब्रह्मांडविग्रहः ।
अवतारावलीवीजः हतारिगतिदायकः ॥३१
आत्मारामगणाकर्षीत्यमी कृष्णे किलाद्भुताः ॥३२
सर्वाद्भुतचमत्कारलीलाकल्लोलवारिधिः ।
अतुल्यमधुरप्रेममंडितप्रियमंडलः ॥३३
त्रिजगन्मानसाकर्षी मुरलीकलकूजितैः ।
असमानोर्ध्वरूपश्रीर्विस्मापितचराचरः ॥३४
मुखं चन्द्राकारं करभनिभमूरुद्वयमिदं,
भुजौ स्तम्भारम्भौ सरसिजवरेण्यं करयुगम् ।
कपाटाभं वक्षःस्थलमविरलं श्रोणिफलकम् ,
परिक्षामो वक्षः स्फुरति मुरहन्तुर्मधुरिमा ॥

(प्रत्येक गुण की व्याख्या तथा उदाहरणों के लिए हरिभक्ति-रसामृतसिन्धु की दुर्गमसंगमिनी देखो) ।

उसके गले में वन-माला है और कमर पतली है और कमल-नयनों से देखता है। नासिका और ललाट में अलका (तमालपत्र) लगी है जो प्राण हर लेती है। श्री अंग से लावण्य चूता है। उसका सर्वाङ्ग मधुर है। वह कालाचांद बन्धु के प्रशस्त हृदय को शीतल करता है। मैंने फिर कहाः—

रागिनी अलया

मैं अपने बन्धु की क्या बातें कहूं, क्या मैंने उसे देखा है ? अकेली बैठकर मन ही मन में उसको अंकित किया। मैंने अपने कानों लोगों के मुख से सुना है कि वह परम सुन्दर है। कभी उनके मन में समा जावे और इस अभागिनी के घर आजावें, तब मैं तुझ से उनके रूप-गुण कहूं।*

* ❀ *

वकुल फूल रहा था। मैं उसके नीचे बैठी, और एक कमल की पंखड़ी हाथ में ली। आंखों के अंजन को आंसुओं से भिगोकर उस स्याही से लिखाः—

कुलकामिनी का पत्र

सखी के साथ वन में जाकर महा आनन्द से फूल तोड़कर

---

* तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
दुदामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ (गी०)

कितनी ही मालाएँ गूंथीं। माला तो गूंथीं, तुम नहीं थे, मैंने यमुना में डाल दीं। रात-दिन यही खेल किया।

मैंने कुसुमशय्या बिछाई थी (भ्रु०)। मोम की बत्ती जलाकर जागते हुये रात बिताई थी। मेरी यह शय्या विफल हुई। हे नाथ! आओ अब चतुरता छोड़ो। जो चाहोगे मैं दूंगी, कृपणता नहीं करूंगी। हम दोनों-जने रात-दिन खेलेंगे। क्या आप मेरा नाच देखना चाहते हो? आधा मुख ढक कर आंखों से आंख मिलाकर लाज और भय छोड़कर नाचूंगी। यदि आपकी आंखें उनींदी होवेंगी तो मैं अंचल से वायु करूंगी। तुम्हारे शिर को जांघ में रखकर उपन्यास सुनाऊंगी। आसपास रस की तकिया लगाकर हृदय में रखकर थपथपी देकर प्रेम से नींद सुलाऊंगी और अंग के आलस्य को मिटाऊंगी।

❀ ❀ ❀

विदेशी का आगमन

कोई एक पुरुष आया। उससे पूछने पर कि कौन उसकी माता, कौन पिता और कौन किंकर है, वह केवल यही कहता है कि 'मैं उसका हूं।' उसका कुछ और परिचय मुझे नहीं मिला। वह सदा मेरे संग रहता था और मुझसे मेरे प्राणनाथ की बातें कहता था।* यद्यपि वह सदा मेरे सङ्ग रहता था, तो भी मैं उसका

---

* बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात् तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥ (गी० १३-१६)

मुख नहीं देख सकती थी। मुझसे उसने कहा—'हे विरहिणी, तेरा स्वामी बड़ा निष्ठुर है। वह अपने भक्तों पर अत्याचार करता है और उनको बार-बार नाना प्रकार का दुःख देता है।' यह सुनकर मेरी चिर दिन की आशा तथा सुख का स्वप्न भंग हो गया। तब मैं सोचने लगी कि इस संसार में मैं क्या केवल दुःख भोगने को ही जन्मी हूं? क्या मेरा कोई अपना नहीं है? क्या मैं अदृष्ट के स्रोत में बहती जा रही हूं? मैं कातर होकर उठ खड़ी हुई और दोनों हाथ जोड़कर ब्रह्मा से कहने लगी कि 'क्या तूने मुझे निष्ठुर के हाथ सौंप दिया? किस अपराध के कारण मुझे इस संसार में लाया और अबला रमणी को निष्ठुर के हाथ सौंप दिया? वह यदि मेरा शिर तोड़े तो मुझे कौन बचावेगा? स्वामी सिवा दूसरा आश्रय कौन होता है? जब स्वामी निर्दय हो तो किसकी शरण जावे? तूने मुझे क्यों सिरजा?' रो-रोकर कातर होकर मैं अचेतन हो गई।

हे सखि, शिराने बैठकर वह पुरुष मुझसे मधुर वचन कहने लगा—'तेरा प्राणनाथ निठुर तो नहीं है।* देखने में तो कठोर है, परन्तु वास्तव में प्रेममय है। तुझको जो उसने लिखा है, उसको मत भूल जाना। जैसी तू होगी, वैसा ही पावेगी।'÷ यह सुनकर

---

* समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥ (गी० ९-२९)

÷ ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्॥ (गी०)

मन में धैर्य हुआ। सोचने लगी, अब किसी भी प्राणी को दुःख नहीं दूंगी। दयालु होने से दयालु को पाऊंगी।* अब पतिव्रता-धर्म का पालन करूंगी। वह कहने लगा—'हे पतिव्रता, सुन, तेरा स्वामी भुवनमोहन है। तू तो कुरूपिणी है, तुझे क्यों लेने लगा! तुझ-से तो उसके कितनी सेविका ही सुन्दर हैं।' यह सुनकर मैं विकल होकर रोई और आंखों के जल से मैंने अपने अङ्ग को धोया।+ मलिन समझकर पति मुझे छोड़ते हैं, तो क्या मुझे

---

* अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥ (गी० १२-१३)
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगै र्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥ (गीता १२-१५)
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः॥ (गी० १२-१७)
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः॥ (१२-१८)
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमति र्भक्तिमान् मे प्रियो नरः॥ (१२-१९)

\+ भवे लीने दीने मयि भजनहीने न करुणा,
कथं नाथ ख्यातस्त्वमतिकरुणासागर इति।
परे ये त्वत्पादश्रवणमननध्याननिरताः,
स्वयं ते निस्तीर्णा न खलु करुणा तेषु करुणा।

आश्रय देंगे ? तब वह हंसकर कहने लगा—'उसको प्यार कर, वह तुझको अपने हृदय में रक्खेगा।' इससे मुझको गौरव हुआ। तो वह कठोर बातें कहकर मुझे रुलाता था! किसी एक जन को मैं प्यार करती थी, उसको कोई आकर हर ले गया। मैं उसके लिए बहुत दिनों तक रोई। मेरी आंखों से अजस्र धारा बहती थी। मेरा सर्वाङ्ग मलिन हो गया और हृदय में ताप था। मेरे बाहर और भीतर कितने पाप हैं, यह सोचकर जो शोक हुआ, उससे मेरा हृदय द्रवीभूत हो गया और आंसुओं के रूप में बाहर निकल चला। जब मैं अधिक अधीर होती थी तो वह मुझसे मीठी बातें कहकर शान्त करता था। इसी प्रकार हमारे कितने ही दिन बीत गये। और क्रम-क्रम से मन कुछ शान्त हुआ। तब उसने मुझसे कहा—'मेरे साथ चल, मैं तुझे तेरा प्राणनाथ दिखलाता हूं।' मैं आनन्द के साथ चली। वह मुझे वन में ले गया और काँटों के वन में फेंककर कहीं को भाग गया।* मेरा सर्वाङ्ग क्षत हो गया और मैं घर लौट आई। तब वह कहने लगा—'पैर के कांटे बाहर

दीनबन्धुरिति नाम ते स्मरन् यादवेन्द्र पतितोहमुत्सहे।
भक्तवत्सलतया त्वयि श्रुते मामकं हृदय (?) कम्पते॥
तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥ (चैतन्य-चरिताऽमृत)

* क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति।
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्॥ (गी० २-५३)

निकाल दूं ?' मैंने कहा—'बस, रहने दीजिये, कुछ काम नहीं है। अब तुम्हारे धोखे में नहीं आऊंगी।' झारी लेकर जमना जल भरने जाती तो वह मार्ग में गढ़ा खोद रखता* और जब मैं गिरकर व्यथा पाती और झारी फूट जाती तो वह हाथ से ताली बजाकर खड़े-खड़े हंसता। मुझे धोखा देकर फिर कुए में गिरा देता, कृपा करके फिर निकाल लेता। मैं यदि अङ्ग में चोट लगने से दुःख पाती और रोती तो उसको कोई दुःख न होता, वह हंसी में उड़ा देता। इसी प्रकार मेरे सङ्ग वह रंग-राग करता। कभी तो मन में बड़ा क्रोध आता था, परन्तु फिर उसके सरल व्यवहार को देखकर मेरा हृदय उस की ही ओर खिचता था। कभी मेरे हाथ पकड़कर मेरे कान में कहता था कि 'मुझको भजो'। मैं क्रोध करती तो वह डरकर भाग जाता, दूर-दूर रहता और निकट नहीं आता था। मैं दुर्बल रमणी, पद-पद पर डरती हूं, यह विभीषिका देखकर मेरे प्राण उड़ जाते थे। स्वामी का तो पता नहीं और वह मनुष्य मेरी रक्षा के लिए सदा समीप रहता है। यह देखकर क्रोध दूर हो जाता था और उसकी बातों में फिर भूल जाती थी। एक दिन मैंने देखा, वह झाड़ में बैठा हुआ कातर होकर मृदु स्वर से रो रहा है। सब बातें तो उसकी मेरे कानों

---

* गागर ना भरन दे तेरो कान माइ।
अगर डगर बगर माहिं रार तो मचाइ।
यशोमति तैं भली बात लाल को सिखाइ॥

में नहीं गईं, परन्तु उसने जैसे आधे बोल से मेरा नाम लिया। मैं नहीं जानती कि उसके मन में क्या था, क्षण-भर के पीछे वह मुझसे मिला। उसके भाव को देखकर मुझे चिन्ता हुई और मैंने सोचा कि आज इसका परिचय लेना चाहिये। मैंने विनय के साथ कहा कि तुम मुझे मेरे पति के समीप ले जाओ। कहो मेरा पति के संग कैसे साक्षात् होगा? उसने मुझसे कहा कि मैं तुझे तेरे प्राणेश्वर के समीप ले जाऊँगा, जहां वह छिपा हुआ है। सोचते-सोचते मैं उसके साथ गई और देखा तो कितने ही लोग बैठे हुए हैं। मैंने पति को देखने के लिये इधर-उधर देखा और आनन्द से मेरा हृदय दुरु-दुरु करने लगा। मुझको दिखाकर कहने लगा, वह तेरा पति है। उसे देखकर बड़ा भय हुआ। उसके गले में हड्डियों की माला और अङ्ग में भस्म था।* निराशा की अग्नि से मेरा हृदय सूख गया। तब वह हंसकर कहने लगा कि तूने अपराध किया है। पति को देखकर आंखें मूंद ली हैं। मैंने कहा—'उनको देखकर तो भक्ति का उदय होता है, पर हृदय में रखने में भय होता है। प्राणेश्वर हो तो ऐसा हो कि उसे हृदय में रक्खूं और अमृत-सागर में डूबूं। ये तो गुरुजन हैं, इनको देखकर भक्ति होती है। कहो, कहो, मेरा प्राणेश्वर कहां है?'

---

* श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहरपिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटी परिकरः।
अमंगल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं,
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मंगलमसि॥

उसने कहा--'प्यार करती है, वह देख, स्वामी गजानन* बैठे हुए हैं। वे परम सुन्दर हैं, सुवलित देह हैं, आंख भरकर पति का मुख देख ले।' मैंने दुःखित होकर कहा--'महाशय, सुनो, मनुष्य और गज की प्रीति नहीं होती। गज के रूप को करिणी समझती है, उससे मनुष्य कैसे रीझ सकता है? जब प्यारे का मुख देखूंगी प्राणों में आनन्द उछलेगा।' इस पर वह व्यंग करके कहने लगा--तेरे मन का-सा पति कहां मिलेगा? फिर मुझसे कहा, देख अपने पति को। एक सभा में कितनी हीं रमणियां बैठी हुई थीं। कोई दश भुजावाली, किसी के हाथ में वीणा थी, और कोई नग्ना और विकटदशना+ थी। मैंने विरक्त होकर कहा--'क्या रमणी-रमणी का मिलन हो सकता है? ये तो कोई मेरी माता, कोई भगिनी, कोई बड़ी भगिनी अथवा संगिनी होती हैं, परन्तु मेरा मन तो पति के लिए रो रहा है। मैं रमणियों को लेकर क्या करूंगी? मैं समझती हूं, तुम मेरे संग हंसी कर रहे हो। मेरे मन के दुःख को

---

* उच्चैरुत्तालगंडस्थलबहुगलद्दानपाने प्रसक्त-
स्फीतालिव्रातगीतिश्रुतिविधृतिकनोन्मीलितार्धाक्षिपक्ष्मा।
भक्तप्रत्यूहपृथ्वीरुहनिवहसमुन्मीलनोच्चैरुदञ्च-
च्छुण्डादण्डाग्र उग्रार्भक इभवदनो वः स पायादपायात्॥

\+ मातंगी भुवनेश्वरी च बगला धूमावती भैरवी तारा छिन्नशिरो-
धरा भगवती श्यामा रमा सुन्दरी।

(वासकेश्वरतन्त्र)

कुछ भी नहीं देखते हो। तुम्हारे चरणों में विनति है, मुझे दुःख न दो। कहो ना, मेरा प्राणनाथ कहां है! मुझे आशा दे-दे कर नचा रहे हो? आपकी बातें सुन-सुनकर मैं भूल जाती हूं, आशा भंग हो-होकर आग लगती है और हृदय जलकर भस्म हो जाता है। मैं अति दुःखिनी हूं। मेरे स्वामी खोये हुए हैं। स्वामी का लोभ दिखा-दिखाकर मुझ जली हुई अबला को दुःख दे रहे हो, तुम्हारा हृदय बड़ा कठोर है।' यह कहकर मैं रोती-रोती बैठ गई और ऊंचे स्वर से रोई, 'ओहो, मैं मरी, मैं मरी' और अंचल से मुख ढाँप लिया।

उस समय—

वह हंसने लगा और चुप हो गया, पर क्षण-भर पीछे कहने लगा—'हे सखि, कृष्णा कंगालिनी, सुन, हे सुधांशुवदनि, मैं क्या कहूं, तुमसे कहने में डर लगता है। तेरा प्राणपति मुझ-सा है। मुख उठाकर मेरी ओर तो देख। यदि काला मुख तेरे मन आवे तो?'

मैंने मन-ही-मन सोचा, यह मुझसे हंसी करता है और मेरा रोना देख मन में हंसता है। किन्तु जब उसने भग्न स्वर से मुझसे कहा, तब मैं समझी कि यह अन्तरतम से रो रहा है। उस समय मैंने उसके मुख की ओर देखा। आहा, कमल-नयनों से कितना अमृत बरस रहा था! वह हंसना चाहता था, परन्तु आंखें चू गईं। मेरे हृदय में शूल-सा बिंध गया। उसने मुझसे

कहा—'हे सरलमति, मेरे ऊपर अकृपा न करो ।* मैं तुम्हारा पति हूं।'

* * *

मैंने अञ्चल से मुख ढक लिया ॥ ध्रु० ॥ चिर दिन से मन में जो दुःख सञ्चित था, वह उमड़ पड़ा। मैं रो-रोकर अधीर होगई। वह मेरे आगे बैठ गये। हाथ पकड़कर कहने लगे—'मैं तेरा पति हूं,+ और तुझसे प्रेम-भिक्षा मांगता हूं। मेरा कठिन हृदय तेरे दुःख को देखकर रो उठता है। आंखें पोंछ और मेरी ओर देख, मैं तेरे मुखचन्द्र को देखूँ। यदि मैंने कोई अपराध भी किया हो, तो भी मैं तेरा पति ही तो हूं।÷ तू पतिव्रता, मैं तेरा स्वामी हूं। हे कृपा-

---

* बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ (गी० ७-१०)
गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥ (गी० ६-१८)
(प्रलयकाल में सम्पूर्ण भूत जिसमें लय होते हैं, उसका नाम निधान है) ।

\+ निज सिद्धान्त सुनावौं तोही, सुनि मन धरु सब तजि भज मोही
(तु० र० उ०)

÷ दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा ।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥
(भा० २६-१० कृष्णवाक्यं गोपीं प्रति)

मयी, मेरे ऊपर कृपा कर।' मैं अवाक् रह गई और उसकी करतूत को देखती ही रह गई।

'यह क्या करते हो, क्या करते हो,' कहकर मैंने उनका श्री-कर अपने हृदय में रक्खा और कहा—'तुम सर्वेश्वर और सर्वोपरि हो। यदि तुम ही क्षमा मांगोगे, तो हे नाथ, आपकी यह दासी कैसे आपके शरण आवेगी? एक तो मैं अपराधिनी, तिस पर भी बारम्बार जल-भुनकर मर रही हूं। उसके ऊपर आप मानो कितने अपराधी हो, ऐसे क्षमा मांगते हो। यह कैसे सहन हो सकता है?' मैंने हाथ जोड़कर कहा—'हे नाथ, यह दैन्य छोड़िये, मेरा कलेजा फूटा जा रहा है। मैं दुर्मति, दुर्बला, अबला हूं, मेरा मन सदा भ्रान्ति में रहता है।* अपने कर्मों के दोष से सदा बहती रही

वृद्ध रोगवश जड़ धन-हीना, अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किय अपमाना, नारि पाव जमपुर दुःख नाना॥
(तु० रा०)

सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या प्रजावती।
मनोवाक्कर्मभिः शुद्धा पतिदेशानुवर्तिनी॥

* मोर दास कहाई नर आसा, करै कहहु तो कंह विश्वासा॥
अधम ते अधम अधम अति नारी।
तिन मह मैं अति मन्द गँवारी॥
माया वश मतिमन्द अभागी, हृदय-जवनिका बहु विध लागी।
सो सठ हठ-वस संशय करहीं, निज अज्ञान राम पर धरहीं॥
(तु० रा०)

हूं, अब किनारा मिला है। मैं अपने को मुख से पतिव्रता तो कहती हूं, परन्तु भक्ति मुझमें लेशमात्र भी नहीं है। मुख से तो मैं तुमको दयामय कहती हूं, परन्तु समझती निर्दय हूं। और भय से जन्म गँवाती हूं। है कि नहीं है, सब सच है या मिथ्या, मैं रहूंगी या लय हो जाऊंगी, यह सोचती हुई तुमको न भजकर जन्म क्षय कर दिया।* यदि मैं पहले ही जानती कि तुम गुणनिधि हो तो क्या मेरी यह दशा होती ? मैं तुमको ढूंढकर अपने यौवन को तुम्हारे रक्त-चरणों में अर्पण कर देती। यह मेरा यौवन गुणनिधि के विद्यमान होने पर भी वृथा चला गया। यह दुःख मेरे मन में खलता है। अपनी कंगालिनी को क्षमा करो। सहस्रों-सहस्रों दिन चले गये, यह (अनन्त) दुःख किससे कहूं। मैं तुमको भूलकर कैसे रही हूंगी ? तुम तो मेरे ही हृदय में सोये हुए थे !'÷ * * *

---

* सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहः स च विभ्रमः ।
यन्मुहूर्तं क्षणं वापि वासुदेवं न चिन्तयेत् ॥
जो न तरे भवसागरहिं, नर समाज अस पाइ ।
सो कृत-निन्दक मंदमति, आतमहा गति जाइ ॥६६॥
नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारकम् ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा ॥
(भाग०)

÷सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनञ्च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् (गी० १५ १५)

उन्होंने मुझे अपनी गोद में लिया और मेरे नयन पोंछे और कहा—'हे प्रिये, एक अति गुप्त रहस्य कहता हूं, सुन, यदि यह निश्चय करके जाना जाय कि मनोकामना अवश्य पूरी हो जावेगी, तो मिलने पर (कामना पूर्ण होने पर) क्या कभी अधिक आनन्द हो सकता है ? केवल सन्देह आनन्दवर्धक है, सन्देह ही जीव का अमूल्य धन है।* यदि वियोग और सन्देह नहीं रहते तो कहो,

---

पहलू में यार है मुझे उसकी ख़बर नहीं।
ऐसा छिपा है तन में मुझे आता नज़र नहीं॥

* कबीर हंसना दूर कर रोने से कर चीत।
बिन रोये क्यों पाइये प्रेम पियारा मीत॥
हंसौ तो दुःख ना बीसरे रोवौं बल घट जाय।
मनही माँहि बिसूरना ज्यों घुन काठहि खाय॥
हंस हंस के तन पाइया जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेले पिउ मिले तो कौन दुहागिनि होय॥

(कबीर)

Thus thy endless play goes on. (R. Tagore)

सन्देह

हानि अस लाभ ज्यान जीवन अजीवनहूं
भोगहू वियोगहू संयोगहू अपार है।
कहै पदमाकर इतै पै और केते कहूँ
तिनको लेख्यो न वेदहू में निराधार है॥

कभी संसार सरस होता ? इस समय तू मेरी गोद में है. तो भी सन्देह करेगी। सन्देह करके फिर रोवेगी।' यह कहा और मैं उसे न देख सकी, मुझे छोड़कर कहां चला गया ? मैंने क्या देखा, सत्य या स्वप्न ? बलराम कहता है, क्या उसके दर्शन मिलेंगे ?

जानियत या ते रघुराय की कला को कहूं
काहू पार पायो कोऊ पावत न पार है।
कौन दिन कौन छिन कौन घरी कौन ठौर
कौन जाने कौन को कहा होनहार है॥
(पद्माकर क० कौ०)

वात्सल्यरस

विभावाद्यैस्तु वात्सल्यं स्थायी पुष्टिमुपागतः ।
एष वत्सलतामात्रप्रोक्तो भक्तिरसो बुधैः ॥१

(भ० र० सिं० २६५)

तत्रालम्बना—

कृष्णं तस्य गुरूश्चात्र प्राहुरालम्बनान् बुधाः ।

तत्र कृष्णो यथा—

नवकुवलयदामश्यामलं कोमलाङ्गं
विचलदलकभृङ्गक्रान्तनेत्राम्बुजान्तम् ।
व्रजभुवि विहरन्तं पुत्रमालोकयन्ती
व्रजपतिदयिताऽऽसीत्प्रस्नवोत्पीडदिग्धा ॥
श्यामांगो रुचिरः सर्वसल्लक्षणयुतो मृदुः ॥२ (भ० र० सिं०)

वात्सल्यरस में भगवान् को ठीक बालक समझकर ही उनकी उपासना की जाती है । इसमें विभूति और ऐश्वर्यज्ञान नहीं रहता । यहाँ

सो जिस भाव से माता-पिता अपने छोटे बच्चों को स्नेह से पालते हैं और उनका सर्व प्रकार से हित-चिन्तन करते हैं, वही भाव रहता है।

श्यामसुन्दर के वात्सल्यरस के उपासकों में माता यशोदा, रोहिणी, देवकी, नन्दबाबा, वसुदेवजी आदि थे। (क० कृ० ४१६)

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः।
उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं साऽमन्यतात्मजम्॥

(भा० भ० र० सिं० ३१६)

वात्सल्यरस में शान्त के गौरव, दास्य के सेवाभाव और सख्य के असंकोच-भाव की अपेक्षा ममता की मात्रा अधिक होती है। इसी से ताड़न, लालन, पालन आदि प्रधान होते हैं। भक्त भगवान् को पालक न मानकर पाल्य मानता है।

यशोदा—'कृष्ण क्वासि करोषि किं'? पितरिति श्रुत्वैव मातुर्वचः
सार्शकं नवनीतचौर्यविरतो विश्रभ्य तामब्रवीत्।
कृष्ण—मातः कंकणपद्मरागमहसा पाणिर्ममातप्यते।
तेनायं नवनीतभाण्डविवरे विन्यस्य निर्वापितः॥

(कविकर्णपूर० क० कृ० ४५३)

जागो वंशी वारे ललना जागो मोरे प्यारे।
रजनी बीती भोर भयो हैं घर-घर खुले किवारे॥

नौमीड्यतेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय
गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु-
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपांगजाय॥

कृष्ण कृष्णारविन्दाक्ष तात एहि स्तनं पिब ।
अलं विहारैः क्षुत्क्षान्तः क्रीडाश्रान्तोऽसि पुत्रक ॥
हे राम गच्छ ताताशु सानुजः कुलनन्दन ।
प्रातरेव कृताहारस्तद्भवान् भोक्तुमर्हति ॥
प्रतीक्षते त्वां दाशार्ह भोक्ष्यमाणो व्रजाधिपः ।
एह्यावयोः प्रियं धेहि स्वगृहान्यातबालकः ॥
धूलिधूसरितांगस्त्वं पुत्र मज्जनमावह ।
जन्मर्क्षमद्य भवतो विप्रेभ्यो देहि गाः शुचीः ॥
पश्य पश्य वयस्यांस्ते मात्रिमिष्टान् स्वलंकृतान् ॥
त्वं च स्नातः कृताहारो विहरस्व स्वलंकृतः ॥
नवनीतमिवातिकोमलो व्यथते यो बत मातुरंकतः ।
स कथं खरपांशुशर्करातृणवर्षं सहते स्म मे सुतः ॥
जिन बांध्यो सुर असुर नाग नर प्रबल कर्म की डोरी ।
सोइ अवछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बांध्यो सकत न छोरी ॥
परमिममुपदेशमाद्रियध्वं निगमवनेषु नितान्तखेदखिन्नाः ।
विचिनुत भवनेषु वल्लवीनामुपनिषदर्थमुलूखले निबद्धम् ॥
निगमतरोः प्रतिशाखं मृगितं न तत्परं ब्रह्म ।
मिलितं मिलितमिदानीं गोपवधूटीपटांचले नद्धम् ॥
(क० कृ० ७४७)

नीतं यदि नवनीतं नीतं नीतं च किं तेन ।
आतपतापितभूमौ माधव मा धाव मा धाव ॥

प्रियवाक् सरलो ह्रीमान् विनयी मान्यमानकृत् ।
दातेत्यादिगुणः कृष्णो विभाव इह कथ्यते ॥३
एवं गुणस्य चास्यानुग्राह्यत्वादेव कीर्त्तिता ।
प्रभावानास्पदतया वेद्यस्यात्र विभावता ॥४ (पृ०)
अधिकं मन्यभावेन शिक्षाकारितयाऽपि च ।
लालकृत्वादिनाऽप्यत्र विभावा गुरवो मताः ॥५
ते तु तस्यात्र कथिता व्रजराज्ञी व्रजेश्वरः ।
देवकी ताश्च वल्लव्यो याः पद्मजहृतात्मजाः ॥६
देवकी तत्सपत्न्यश्च कुन्ती चानकदुन्दुभिः ।
सान्दीपनिमुखाश्चान्ये यथापूर्वममी वराः ॥७
व्रजेश्वरी व्रजाधीशौ श्रेष्ठौ गुरुजनेष्विमौ ॥

* ❁ *

यथा श्रीमद्दशमे—

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः ।
उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं साऽमन्यतात्मजम् ॥

यथा वा—

विष्णुर्नित्यमुपास्यते सखि मया तेनात्र नीताः क्षयं
शंके पूतनिकाऽऽदयः क्षितिरुहौ तौ वात्ययोन्मूलितौ ।
प्रत्यक्षं गिरिरेष गोष्ठपतिना रामेण सार्द्धं धृत-
स्तत्तत्कर्म दुरन्वयं मम शिशोः केनास्य सम्भाव्यते ॥
भूर्य्यनुग्रहचित्तेन चेतसा लालनोत्कमभितः कृपाऽऽकुलम् ।
गौरवेण गुरुणा जगद्गुरोर्गौरवं गणगरायमाश्रये ॥

यशोदावात्सल्यं यथा—

तनौ मन्त्रन्यासं प्रणयति हरेर्गद्गदमयी ।
सबाष्पाद्या रक्षातिलकमलिके कल्पयति च ॥
स्तुवाना प्रत्यूषे दिशति च भुजे कार्म्मणमसौ ।
यशोदा मूर्तेव स्फुरति सुतवात्सल्यपटला ॥

नन्दवात्सल्यं यथा—

अवलम्ब्य करांगुलिं निजां स्खलदंघ्रि प्रसरन्तमंगने ।
उरसि स्रवदश्रुनिर्झरो मुमुदे प्रेक्ष्य सुतं व्रजाधिपः ॥

(भ० र० सिं० ३११)

अहह कमलगन्धेरत्रसौन्दर्यवृन्दे ।
विनिहितनयनेयं त्वन्मुखेन्दोर्मुकुन्द ॥
कुचकलशमुखाभ्यामम्बरक्नोपमम्बा ।
स्रव मुहुरतिहर्षाद्वर्षति क्षीरधाराम् ॥
क्नोप = क्नोपयित्वा आर्द्रीकृत्येत्यर्थः ।

(नन्दवाक्यं विदग्धमाधवे)

वात्सल्यरसवापी

सेवन करत विधि आदि सनकादि
जासु भेद न लहत सब देवन को पति है ।
कालऊ को काल जगजाल को विशाल नट
जाहि दीनद्याल शम्भु शेष करैं नति हैं ॥
नेति नेति गाया वेद भेदहु न पाया तासु
माया पासु छाया अरु दाया जासु गति है ।

ताहि सुख पावे लहि नाच को नचावै गहि

मानि मोद गोद लै खिलावै जसुमति है ॥३६

कबधौं पहरि पीरे झगा कों सजैगो लाल

कबधौं धरनि धीर ह्वै क पद राखि है।

रगरि रगरि करि अंचरा गहैगो हरि

कब डरि झगरि झगरि करि माखि है ॥

मेरे अभिलाषन को पूरि करि साखन सौं

दाखन के संग कब माखन को चाखि है।

भैया भैया बोलि बल भैया सूं कहैगो कब

मैया मोहि को कन्हैया कब भाखि है ॥४०

मनि अंगनाई में निरखि प्रतिविम्ब निज

बार बार ताहि चाहि गहिबे कों धावे री।

बाजत पैंजनी के चकित होत धुनि सुनि

पुनि पुनि मोद गुनि पायन हलावे री ॥

सांझ समै दीपक को विलोकि फल जानि

कोऊ लेवे को चाहत दोऊ कर को उठावे री।

चैया वैया डोलत कन्हैया की बलैयां जाऊं

मैया मैया बोलत कुन्हैया को लखावै री ॥४१

* * *

किलकि किलकि कान्ह हिलकि हिलकि उठै

नेकु नहिं मानत कितेकु समझायो री।

रोदन को ठानत न खात दधि ओदन को
गोदन तें गिरो परै करै मन भायो री ॥
चौंकि चौंकि उठै पलना तै परै कल नाहिं
पलकु न पारै पल एको मेरो जायो री ।
गयो हुतो चारन गो ग्वारन के संग आज
खरिका में खेलत मों लरिका डरायो री ॥४३
गरे मुंडमाल धरे सीस पै मयंक बाल
लाल के विलोकन कों जोगी एक आयो री ।
भोगी लपटाये अङ्ग अङ्गन में खाये भंग
गंग जूट में बहायो री ।
नजरि बचावों बेरि बेरि मैं छिपावों वा तें
ताहि देखिकै विदेखि डावरो डरावे री ॥
लाखन उपाय करि हारी सारी रैन कान्ह
दाखन न छियै नेकु माखन न भायो री ॥४४

यशोदावचनं कृष्णं प्रति—

लाखन हैं गैया गेह तेरे हेत हे कन्हैया
चाहिये जितेकु तेतो माखन को खाय रे ।
चोरी नवनीत कित भाजत गुपाल परैं
डरै जनि लाल लोने मेरे ढिग आय रे ॥
पालन में झूलि घरैं खेलि प्रिय बालन में
लालन अजिर तजि बाहिरै न जाय रे ।

तापित मही है हाय तपि है सरोज पाय

माय बलि जाय ऐसी धूप में न धाय रे ॥४४

नवनीतमिवातिकोमलो व्यथते यो वत मातुरंकतः ।

स कथं खरपांशुशर्करातृणवर्षं सहते स्म मे सुतः ॥

(कृ० क० ११६)

जितचन्द्रपरागचन्द्रिकानलदेन्दीवरचन्दनश्रियम् ।

परितो मयि शैत्यमाधुरीं वहति स्पर्शमहोत्सवस्तव ॥२२

(नन्दः विदग्धमाधवे)

प्रेमतरंगिणी

(वात्सल्य)

चौथी सखी की कहानी

मनोहर निकुञ्ज में मधु खा-खाकर भ्रमरों के झुण्ड मत्त होकर गुंजार कर रहे थे। मैं सरल-स्वभाव अबला, जिसको प्रेम की ज्वाला नहीं थी, फूल तोड़ने जाती थी। मैं निर्जन पुष्प वाटिका में अपने मन के आनन्द में स्वच्छन्द घूमती थी। कभी फूल की डाली को पकड़कर, उसको सुख से देखकर, उसकी सुगन्ध से नाक को मत्त करती थी। कभी मालती तोड़कर उसकी माला बनाकर अपने ही गले में पहनती थी। आरसी लेकर वन में बैठकर अपना मुख देखती, गन्धराज हाथ में लेती, और मन में आती तो जूडा खोल देती थी। आनन्द में अज्ञान होकर सुख से गाती, और अङ्ग के वस्त्र फेंक देती। मैं नहीं जानती, क्यों कभी-कभी मन-ही-मन हंसती थी। फिर कभी न जाने मन में क्या होता था मैं वृक्ष के नीचे बैठकर रोती थी।

* * *

निर्जन वन में एक दिन मैंने सुना कि कोई शब्द करता है। मैं मन में समझी कि आड़ से कोई मुझे देखता है। इससे मैं कुछ कुण्ठित हुई, फिर मन में सोचा कि मुझे देखता है तो क्या हानि है, मैं उसको नहीं देखूंगी। कभी तो मैं उसको पीछे और कभी पास समझती थी। अन्यमना होकर जब कभी उसको देखती तो उसकी छाया जैसा देखती थी। जब वह जाता था तब उसके चरण रुन-झुन बजते से कानों मे सुनाई देते थे। पीछे फिर कर देखने पर दिखाई नहीं देता था, परन्तु उसके अङ्ग की सुगन्ध कान में आती थी। दूर से उसकी वंशी की ध्वनि* जैसी कान में आने से मन में न जाने क्या होता था। सुनने को जाती तो भय होता था कि क्या जाने वह कौन है ? कभी उसके देखने को मन होता तो हृदय कांप उठता। तिरछी नज़र से देखती तो नहीं देख सकती, पर तो भी मैं जानती थी कि वह पास ही है। मैं सदा सदा अकेली, जिसका कोई सङ्गी नहीं ! मुझे यह क्या दुःख हो

---

* अर्द्धांगुलान्तरोन्मानं तारादिविवराष्टकम् ।
ततः सार्द्धांगुलाद्यत्र मुखरन्ध्रं तथांगुलम् ॥१४६
शिरोवेदंगुलं पुच्छं त्र्यंगुलं सा तु वंशिका ।
नवरन्ध्रा स्मृता सप्तदशांगुलिमिता बुधैः ॥१५०
दशांगुलान्तरा स्याच्चेत् सा तारमुखरन्ध्रयोः ।
महानन्देति विख्याता तथा संपोद्दनीति च ॥१५१
(भ० र० सिं० द० १)

गया ! क्या सोचकर वह चरणों में मंजीरे पहनकर मेरे पीछे-पीछे फिरता है !

* * *

मैं मालती के पुष्प सूंघकर और आनन्दित होकर सोचती थी कि किसको सुंघाऊं ? अकेली सूंघने से तो तृप्ति नहीं होती थी। इसीसे उसका स्मरण आता था। एक अति मनोहर गुंजा-हार बनाकर मैंने सोचा कि किसको दिखाऊं ? कोई सुन्दर सुजन मिले तो उसको पहनाऊं। मैं अकेली फिरती हूं। यदि कोई मन का-सा मिले तो हम दोनों जने घूमें और सुख से बातें करें। और मैं माला गूंथकर उसको दूं।

* * *

वन में छिपकर उसने करुण स्वर मे वंशी-ध्वनि* की। उस

---

* अन्तर्मोहनमौलिघूर्णनवलन्मन्दारविस्रंसन-

स्तब्धाकर्षणदृष्टिहर्षणमहामन्त्रः कुरंगीदृशाम्।

दृप्यद्दानवदूयमानदिविषद्दुर्वारदुःखापदां

भ्रंशः कंसरिपोर्व्यपोहयतु वोऽश्रेयांसि वंशीरवः ॥२

(गीतगोविन्द १० सर्ग)

वेणुमाधुर्य्यम्

सवनशस्तदुपधार्य्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः।

कवय आनतकन्धरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥

(भ० र० सिं०)

सवनशः = वारं वारम्। कश्मलं = मोहम्। अनिश्चिततत्त्वाः = किमिदमिति निश्चेतुमशक्ताः ॥

लोकानुद्धरयन् श्रुतीन्मुखरयन् चोणीरुहान् हर्षयन्
शैलान् विद्रवयन् मृगान् विवशयन् गोवृन्दमानन्दयन् ।
गोपान् संभ्रमयन् मुनीन् मुकुलयन् सप्तस्वरान् जृम्भयन्
ॐकारार्थमुदीरयन् विजयते वंशीनिनादः शिशोः ॥

अजडः कम्पसंपादी शश्वादन्योनिकृन्तनः ।
तापनोऽनुष्णताधारः कोयं वा मुरलीरवः ॥३५

(राधा वि० मा०)

अजडः = हिमभिन्नः । निकृन्तनश्छेदकः । न उष्णतां धारयतो-
ऽस्यनुष्णताधारः ।

वंशीसारिका

किधौं है बसीकर की सी करि करति कैद
जान नहिं देत कहूं मन के मतंग को ।
किधौं है उचाटन भुलावे घाट वाटन तें
हाटन तें धावैं बहू छोड़ि सब संग को ॥
किधौं नेह घटा छजै दंत छन छटा छोर
ए री बीर बरसै सर सरस रंग को ।
किधौं यह मोहन की बांसुरी विमोहन है
सोहन लगति लिये गोहन अनंग को ॥

(दी० द०)

वंशी-ध्वनि को सुनकर न जाने क्यों मेरा हृदय द्रवीभूत हो गया। मैंने वृक्ष के नीचे बैठकर वंशी-ध्वनि सुनी तो आंखों से धारा बह चली। मैं अबला रमणी कुछ भी न जान सकी कि मैं धन-खोई-हुई-सी क्यों हो गई। धैर्य्य धरके मैंने उसके लिये एक मनोहर हार गूंथा और उसको वकुल की डाल में उठाकर रख दिया और समझा कि उसकी इच्छा होगी तो ले लेगा। वन में फिरकर फिर आकर देखा तो मेरा हार नहीं है। और उसके स्थान में नयी माला गूंथकर वहां रक्खी हुई है, जिसकी गन्ध से भ्रमर उन्मत्त हो रहे हैं। मैंने समझा कि मेरे लिये गूंथकर यह माला रक्खी हुई है और मेरी माला ले ली गई है। मैं अबोधिनी बाला यह निश्चय न कर सकी कि इसे लूं अथवा न लूं, या इसकी उपेक्षा करूं? मैं अभागिनी कैसे जान सकूं! मैंने सुन्दर माला देखी। जीर्ण पुष्पहार में इतनी शक्ति है कि वह फन्दे से गला बांधेगा! उस माला को लेकर सोच-समझकर मैंने गले में पहन लिया। मुख उठाकर देखा तो नवीन नीरद कान्ह दिखाई नहीं देता।

* * *

मैंने देखा, वह वृक्ष में लदा हुआ निश्चिन्त होकर खड़ा है।*

---

* कहा कहूं हेली मैं अकेली गई कुंज
गैल फूली ही चमेली छैल तहाँ वेनु टेरो री।
कटि को चलाय कै नचाय भौंह नैनन को
सैनन सौं कियो चित्त चंचल को चेरी री॥

क्या जाने मेरी आंखें पहले धुंधला गई हों, तब नहीं देख सकी होऊं। क्रम-क्रम से आँख खुलीं और परिष्कार हुआ। देखती हूं सम्मुख दो चरण हैं। रक्त चरण+ नवीन पल्लव जैसे अथवा अधखुले पद्म हों। और उनमें नृत्य करने को सुवर्ण की जंजीर सजी हुई है। कमर बँधी हुई है, वृक्ष पकड़े हुए हैं और अति क्षीण कमर है। अति सुकुमार नवीन नागर के गले में वनमाला लटक रही है। वह प्रेम से गला जा रहा है और उसका वर्ण मनोहर काला है। उस के मुख को देखने को आंखें नहीं* उठतीं, यह क्या दुःख होगया।

कुंज की गली में अली औचक सों आय

छली चुनति कली ही चुनि लियो मन मेरो री॥८४

(दी० द०)

\+ नन्द के कुमार सुकुमार मारहू ते

अति सुखमा सुमार कौन कहे अति काल की।

देखे वन जात वनजात से चरन आली

हंस की लजाति चाली लखि लाल की॥

आलसी हिये में वह आलसी चितौनि चारु

कहा कहूं दीनद्याल शोभा वनमाल की।

भाल की विशाल छवि देखि ससी हंसी होय

वसीकर बसी लसी मूरति गुपाल की॥८८

(दीनदयाल)

* इन दुखिया अंखियान को सुख सिरजोही नाहिं।

देखत बनें न देखते बिन देखे अकुलांहि॥ (विहारी शतसई)

ललाट देखते हुए आंखों से आंखें मिलीं। उसने रस से टलमल करते हुए नयन-कमल+ मेरे मुख में आरोपित किये। उसका प्रसन्न मुख, प्रेम का घर, मेरे हृदय में विंध गया।* किसी रसिका ने उसके चन्द्रमुख में अलका का तिलक÷ लगा दिया था। यह बड़े आश्चर्य की बात है, वह रूप-सरोवर मेरी आंखों में नहीं समा सका।× मैं स्तम्भित होकर देखती ही रह गई। आंखें कुछ भी

+ किधौं जुग दीनद्याल वारिजात हैं विशाल
किधौं खंजरीट बाल मुदके दयन हैं।
किधौं अनुराग लीन छवि के तडाग मीन
युगल कला प्रवीण करत चयन हैं॥
किधौं कोकनद पैं समद द्वै अनिल सोंहैं
मोंहैं करि गद्गद रूप के अयन हैं।
किधौं अनियारे रसवारे आली
किधौं रतनारे वनमाली के नयन हैं॥७६
(दी० द०)

* प्रहसितं प्रियप्रेमवीक्षणं विरहिणं च ते ध्यानमंगलं (?)
रहसि संविदो हृदिस्पृशः कुहकनो मनः स्मरं वीर यच्छति (?)
(भा० गो० गी०)

÷ वपुरलककुलावृताननाब्जम्।

× कालिन्दी के कूल गई फूल लेन
तहां एक छैल लखि मेरी मति धीरज न धारती।

नहीं समझती थीं। उसने अपने गुणों से रमणी का गौरव, लज्जा, और भय सब ही तो खींच लिया। उसके बिम्बा जैसे होंठ थर-थर कांपे और उसने धीरे-धीरे क्या कहा, मैं नहीं समझी। तमाल के वृक्ष को पकड़कर देखती ही रही।※ उसके मुख में नाना भाव खेल रहे थे और आंखें प्रेम से लबालब थीं। वह रुनू-झुनू चरण

एडिन को देख दबि जात कला रवि की
है किमि कैसौ दीनद्याल भनै कवि भारती॥
कहूं मैं कहां लौं मनु शोभा तिहुँ लोकन की
आनि ताकी सब आरती उतारती।
तूरति न बनै कली मोहि सुनि अली रही
मूरति सी ठाढ़ी वह सूरति निहारती॥२७
(दीनदयाल)

※ वा दिन की बात नहिं मो पै कही जात छैल
छवि कै छबीलो गैल घेरयो रंग घोरिकै।
मंद मंद मुसुकाय कह्यो कुछ नेरे आय
जोरि दृग देख्यो मोहि भौंहन मरोरिकै॥
करि चतुरायन को आपने सुभायन सों
रही मैं सजग ह्वै उपायन करोरि के।
डारत अबीर ए री बीर बलबीर मेरो
हथाहथी लै गयों अनेरो चित चोरिकै॥११६
(दीनदयाल)

बजाता हुआ धीरे-धीरे मेरे समीप आया। मेरा कलेजा दुर-दुर करने लगा। मैं भागना चाहूं तो शक्ति नहीं, आंखों ने मुझे वेधित कर दिया था। हृदय में तरंग उठती थी और देह विवश था, केवल कांपती थी। उसने कोई बात नहीं की, मेरा चिबुक पकड़ा और मुख चूमा। स्पर्श गन्ध पाकर मैं मूर्छित हो पड़ी और उसने मुझे अपनी गोद में रख लिया।

* * *

चेतना पाकर मैं दौड़ पड़ी और घर के कोने में छिप गई। एकान्त में बैठकर मैं रोने लगी, परन्तु चित्त धैर्य्य नहीं मानता था। मेरी प्रकृति फिर गई और मेरी आकृति फिर गई। मुझे सखियां न पहचान सकीं। मैं चञ्चल थी, गम्भीर हो गई और किसी से बात नहीं करती थी। अन्तःकरण स्वतः निर्मल हो गया, क्यों हुआ, मैं नहीं कह सकती। सदा हृदय में आनन्द खेलता था और रात-दिन प्रेमाश्रु गिरते थे।

मैं कौन हूं तब समझी, पहले मैं नहीं जानती थी। अब मैं समझी कि मेरा स्वामी है, मैं संसार में अकेली नहीं हूं।* मेरा घर है, संसार में यह घर मेरा नहीं है, मैं अपनी नहीं हूं।+ मैं तो

---

* त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

+ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पतिवेदनम्।
उर्व्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः॥ (यजुर्वेद)

उसकी हूं, यह ज्ञानोदय मुझे हुआ। जितने अपने आत्मीय हैं, अपना-अपना संसार लेकर हैं। केवल वह मेरा है और उसका कोई नहीं है। उसके अतिरिक्त मेरा कोई नहीं। केवल वह मेरा है, और कोई नहीं,* इससे आनन्द उदय होता है। जहां उसका कीर्तन, जहां उसका वास, वहीं मुझे मीठा लगता।× उसके सम्बन्ध में जो कोई प्रबन्ध हो, उसको मैं चुपके-से जाकर सुनती। आंखें बन्द करते ही हृदय-कमल में उस रस-रूप को देखती। सन्मुख दर्पण रखकर अपना मुख देखने लगती तो उस ही का चन्द्रमुख

---

* प्रेम्णोऽस्ति त्रिविधो भेदस्तत्राद्यः स ममेत्ययम्।
अहं तस्येत्ययं मध्यः सोऽहमस्मीति चान्तिमः ॥१४३

(शक्ति गी० पृ० २६)

दाम्पत्यप्रेम्ण एवैषा दशा सर्वोत्तमा मता।
द्वैतसंकुलसंसारे प्रेमाप्यमतिदुर्लभम् ॥४५ (श० गी०)

× मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥

(गीता ६-१६)

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जनाः ॥

(भा० रासपंचाध्यायी)

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां नित्यं नित्ययुक्ता उपासते ॥ (गी० ६-१४)

देखती। अति लज्जा पाकर पीछे फिरकर देखती तो उसको न देख पाती। रात में कितने ही स्वप्न देखती,* प्रभात होने पर याद नहीं रहते थे।

सदा ही हुताश और दीर्घश्वास रहती और रात-दिन उस ही का चिन्तन करती थी। चमक-चमक कर उठ खड़ी होती थी।÷ और सखियां मुझसे पूछती थीं कि 'तू पहले कैसी थी, अब कैसी हो गई है, तुझको क्या व्यथा हो गई है?' 'मैंने वन में एक

---

* किं स्वप्नस्य विलक्षणा गतिरियं किं जागरस्याथवा,
किं रात्रेरुपसत्तिरेव रभसादह्नः किमह्नाय वा।
इत्थं श्यामलचन्द्रिकापरिचयस्पन्देन संदीपितै-
रन्तःक्षोभकुलैरहं परिवृता प्रज्ञातुमज्ञाभवम् ॥४

(राधावाक्यं विदग्धमाधवे)

सततं कीर्तयन्त इत्यादि ॥ (गीता ९-१४)

अर्थ न धर्म्म न काम रुचि, गति न चहौं निर्वाण।
जन्म जन्म रति राम पद, यह वर दान न आन ॥

(तु० रा० अ०)

÷ क्षोणीं पङ्किलयन्ति पङ्कजरुचोरक्ष्णोः पयोबिन्दवः,
श्वासास्तांडवयन्ति पाण्डुवदने दूरादुरोजांशुकम्।
मूर्तिं दन्तुरयन्ति संततममी रोमांचपुंजाश्च ते,
मन्ये माधवमाधुरी श्रवणयोरभ्याशमभ्याययौ ॥३६

दन्तुरयन्ति = कण्टकितां कुर्वन्ति।

(विशाखावाक्यं राधां प्रति वि० मा०)

नवीन पुरुष देखा है। मैं नहीं कह सकती कि मैंने सत्य उसे देखा है या मेरी आंखें धुंधला गईं या दिन में ही स्वप्न देखा।' सखियों ने कहा—'हे सखि, तूने नन्द के लाल को वन में देखा होगा। उसका भजन करने से तो रोना होगा। हमने तो पहले ही तुझसे कह दिया था।' मैं वन में जाती और अति लज्जा से पुकारती और चकित हिरनी की भांति तिरछी दृष्टि से इधर-उधर देखती और पता न पाकर मर्माहत होकर लौट आती।* अब उसकी मुरली-ध्वनि+ नहीं सुनाई देती, न मंजीर की ध्वनि ही सुनाई देती। फूले हुए पुष्पों में गन्ध भी नहीं मिलती। सब ही निरानन्द दिखाई देता है।÷ घर में बैठकर खिड़की खोलकर देखती थी और आँखों से जल गिरता था। स्थिर होकर एक दृष्टि से देखती कि कहीं मेरा चित्तचोर तो नहीं जा रहा है। कभी रुन-झुन ध्वनि सुनती× तो चौंक पड़ती थी और उठकर देखने लगती।

---

* हरि रहीम ऐसी करी ज्यों कमान सर पूर।
खींच आपनी ओर को डारि दियो पुनि दूर॥ (रहीम)

\+ मुरली = हस्तद्वयमितायामा मुखरन्ध्रसमन्विता।
चतुःस्वरच्छिद्रयुक्ता मुरली चारुनादिनी॥
(भ० र० सिं०)

÷ नहिं पराग नहिं मधुर रस, नहिं वसन्त को काल।
अब अलि रही करील की अपत कटीली डाल॥ (विहारी)

× अवमर्दनस्य सखि, नूपुरध्वनिं
निशम्य संभृतगभीरसंभ्रमा।

देख-देख, मेरा प्राण-पत्ती कहां है — और नहीं दिखाई देता। मैंने मन में यह संकल्प किया कि वन में खोजूंगी,* तब प्यारा मिलेगा। यदि न मिले तो घर ही नहीं लौटूंगी, सदा वन में ही रहूंगी। अपने निज जनों को छोड़कर वन में रहूंगी — इस संकल्प से प्राण कांपने लगे, तो भी जितने भी अपने थे, उनसे मैंने मन-ही-मन विदा ली।+

* * *

अब वैशाख के महीने, सांझ के समय, कबरी में गन्धराज,

अहमीक्षणान्तरलिताऽपि नाभवं
बहिरद्य हन्त गुरवः पुरः स्थिताः ॥

* दृष्ट्या मया मधुरया कलितोऽधुनायं,
यः कामिनीजनमनोहरणो मुकुन्दः।
तं चिन्तयामि हृदये न सुखं गृहेस्मिन्
तस्मिन् वने भवतु तेन सहैव वासः ॥२

(बोधसार पृ० ४४६)

\+ घर तजों वन तजों नागर नगर तजों
वंशीवट-तट तजों काहू पै न तजिहों।
देह तजों, गेह तजों, नेह कहो कैसे तजों,
आज राज काज सब ऐसे साज साजिहों ॥
बावरो भयो है लोक बावरी कहत मो कों
बावरी कहे ते मैं काहू न बरजिहौं।

आंखों में काजल, मल्लिका का वेसर पहनकर पगली का-सा साज बनाकर आंगन में आकर धूल में लोटकर मैंने अपने घर को प्रणाम किया। रोते-रोते मार्ग में चली जाकर वन में प्रवेश* किया।

मालञ्च के बीच क्रम से धीरे-धीरे जाकर मैं तगर के तले खड़ी हुई। मैं अबला होकर नन्दलाल को खोजने चली और लज्जा और भय को तिलांजलि दी। उसको खोजने के लिये वन में तो आई, पर कहां ढूढूं ?÷ देखूं-देखूं देखूं, कहां छिप जाता है। पैर तो

कहैया सुनैया तजों, बाप और भैया तजों
दैया तजों मैया पै कन्हैया नाहिं तजिहौं ॥

(क० कृ० पृ० ७१७)

तावद्रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम् ।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः ॥

* सागरउद्देशे नदी भ्रमे देशे देशे रे अविरामगति ।

(ब्रजांगनाकाव्य माईकेल मधुसूदन)

÷ Rivers to the ocean run,
Nor stay in all their course,
Fire ascending seeks the sun,
Both speed to their source,
So a soul that is born of God,
Pants to view His glorious face,

रुनूं-रुनूं बजते हैं ।जाग्रत या स्वप्न, वन में क्या देखती हूं । क्या मैं उसको पाऊंगी ? क्या यह सत्य है कि वह युवतियों का घात* करने को रहता है ? चारों ओर विपिन को शून्य देखकर मैं गीत गाने लगी । कोकिल, मयूरी, भृङ्ग, शुक और सारिका भी मेरे संग गाने लगे ।

❀ ❀ ❀

सोरठ झपताल

वही तो काला शशि (कृष्णचन्द्र) है, जो ईषत् हंसके देखकर हृदय में घुस गया । ओहो, ओहो, वाण विंध गया । मैं तो कुलवती बाला हूं और प्रेमाग्नि को नहीं जानती । हे मनोहर कृष्ण, तूने क्या किया ! कुल और मान सब ही लिया । कैसा रूप रक्खा और सन्मुख आकर खड़ा हो गया और अबला के प्राण हर लिये ! आ-आ, मेरे प्राण रख । मन चोरकर मुझे अकेली छोड़ गया, इससे अबला का हृदय कांपता है । गुरुजन

Upwards tends to this abode
To rest in this embrace.
(The methodist Hymns Page 62)

* दिसि अरु विदिसि पन्थ नहिं सूजा ।
को मैं चलेउं कहां नहिं सूजा ॥२
कबहुँक फिरि पीछे पुनि जाई ।
कबहुंक नृत्य करै गुन गाई ॥ (तु० रा० अ०)

*रूठते हैं, तू मुझे हृदय से लगाकर अञ्चल से ढाककर छिपाकर चल और मुझे वनवासिनी बना दे।

मुझे गीत गाते-गाते पद्म-गन्ध मिली और उस गन्ध से मेरी नासिका मत्त होगई और मैंने चारों ओर देखा। वह रुनूं-झुनूं बजाते चला और माधवी लता में छिपता-सा ज्ञात हुआ। मैंने समझा कि उसने मेरा गीत सुन लिया और मैंने लज्जा से मुख ढक लिया। मैं क्या करूं, कहां जाऊं, अकेली नारी! सोचा कि यमुना में कूदकर मर जाऊं। इस ही बीच में मैंने सुना कि वन के प्रान्त-भाग में मोहन मधुर मुरली बजाकर वह मुझको बुला रहा है।÷ स्तम्भित होकर मैंने सुना, परन्तु दिशा न जान सकी। एक दिशा में बजती

---

* पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलंघ्य तेन्त्यच्युता गताः।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितवयोपितः कस्त्यजेन्निशि॥

(रासपंचाध्यायी)

÷ ध्यानं बलात्परमहंसकुलस्य भिन्दन्
निन्दन् सुधामधुरिमाणमधीरधर्म्मा।
कन्दर्पशासनधुरां मुहुरेष शंसन्
वंशध्वनिर्जयति कंसनिपूदनस्य॥ (भ० र० सिं० २००)

(राधा) सद्वंशस्तव जनिः पुरुषोत्तमस्य
पाणौ स्थिति मुरलिके सरलासि जात्या।
कस्मात् त्वया सखि गुरोर्विषमा गृहीता
गोपाङ्गनागणविमोहनमन्त्रदीक्षा॥१७ (विदग्धमाधवे)

थी और चारों दिशाओं में उसकी प्रतिध्वनि होती थी, जिससे वृक्ष मंजरित हुए और उनसे परिमल गिरने लगा। मृग, सारिका, शुक सुख से कलरव करने लगे। वंशी की ध्वनि से जगत् शीतल हो गया और हे सखि, मेरा प्राण रो उठा।

ऐसे करुण स्वर से वह मुरली बजाता था कि प्राण रो उठते थे, परन्तु उसमें काम की गन्ध भी नहीं थी। 'क्यों रोता है, क्यों रोता है, तेरे मन में क्या दुःख है? इस घोर वन में बांसुरी के बहाने क्यों रोता है? किसके प्रेम में अधीर होकर रोता है? प्रेम बिना इस प्रकार क्यों रोता है? हे निठुर, तुझको धिक्कार है, कृष्ण को क्यों रुलाता है। रोना सुनकर वज्र भी गल जाता है।'* हे सखि, सोचते-सोचते मेरी मति कुण्ठित होगई और मैं हाथ जोड़े हुए ऊर्ध्व मुख करके चली जाती थी।

❁ ❁ ❁

---

* वांशि वले, मोर किछू नाहिक गौरव,
केवल फूंयेर जोरे मोर कलरव।
फूं कहिल, आमि फांकि, शुधू हाओयाखानि,
ये जन बाजाय तारे केह नाहि जानि॥

'चयनिका' में रवीन्द्रनाथ ठाकुर

वेणुरन्ध्रविभेदेन भेदः षड्जादिसंज्ञितः।
अभेदव्यापिनो वायोस्तथा तस्य महात्मनः॥
एकत्वं रूपभेदश्च बाह्यकर्मप्रवृत्तिजः।
देवादिभेदमध्यास्ते नास्त्येवावरणो हि सः॥

उस समय—

अति एकान्त में कात्यायनी÷ का मन्दिर था, मैं उसकी पूजा करने चली। मैंने चन्दन-पुष्प से उसकी पूजा करके वर मांगा कि मुझे प्राणपति दे, माता के हृदय में तू स्नेह रूप से विराजमान है, अन्नपूर्णा होकर जीवों को अन्न देती है और क्षुधातुर के दुःख को हरती है, विपत्ति में पड़ा हुआ तुझे पुकारे* तो 'मा भैः' कह-

---

÷ सृष्ट्वाऽखिलं जगदिदं सदसत्स्वरूपं,
शक्त्या स्वया त्रिगुणया परिपाति विश्वम्।
संहृत्य कल्पसमये रमते तथैका,
तां सर्वभूतजननीं मनसा स्मरामि ॥

* आपदि किं करणीयं स्मरणीयं युगलपदमम्बायाः।
तत्स्मरणं किं कुरुते ब्रह्मादीनपि च किङ्करीकुरुते ॥
(ललितासहस्रनाम टीका पृ० १८४)

उत्पति पालन प्रलय को करनि हारी
तुहि देवि दासन के दुःख की विनाशिनी।
भजैं देव मंडलीक मंडली तें आदि तोहि
तुहि चिदानन्द रूप जग की प्रकाशिनी ॥
तुही दीनद्याल रच्छपाल होति गाढ़े दिन
तुही शंभुहृदय कंज मंजु की विकासिनी।
पावन कै पावन की पादुका छुवाय मोहि
दीजै अवलंब अंब विंध्याचलवासिनी ॥
(दीनदयाल)

कर आती है, हे त्रिभुवनतारिणी, भक्तिदायिनी, मेरे क्लेश को हरो। हे जननि, तू ममता की खान है, तेरी दुःखिनी दुहिता को यौवन प्राप्त हुआ है और प्राण तलमलाता है। उसका प्राणनाथ कहां है, जिसने मुझको चूमा और प्राण लिये और जिसका रूप हृदय में प्रवेश कर गया है। जिसकी कमर बँधी है, रक्त दोनों नेत्र हैं, हे मां, उस रूप के कूप को दे।

* * *

इसके पीछे—

जब मैं एकान्त पाकर हृदय खोलकर अपने हृदय की व्यथा कह रही थी तब मानो मेरे पीछे खड़े होकर वह मेरी बातें सुन रहा था, परंतु मुख फिराकर देखा तो दिखाई नहीं दिया, कहीं वन में छिप गया। मैंने पहले की भांति कानों में अमृत वर्षाने वाली रुनू-झुनू कानों से सुनी। मैं अवाक् होकर जननी का मुख देखती रही और अति लज्जित होकर, दोनों आंखों से आंसू बहाते हुए मैंने उससे कहा—'मैं जिधर जाती हूं, उधर ही उसको समीप देखती हूं, परन्तु मन की बातें उससे नहीं कह सकती हूं। वह पीछे-पीछे फिरता है, पर दिखाई नहीं देता है। हे मां, क्या उपाय करूं ?' जननी माता उस समय मेरे प्रति स्नेह करके हंसी।* उसके मुकुट का फूल गिर पड़ा। उसको मैंने अञ्जलि में रख लिया। उस फूल से मैंने अपनी वेणी को सजाया और घने जंगल को चली। मैं धीरे-

---

* खसी माल मूरति मुसुकानी ॥ (रा० बा०)

धीरे जाती थी और विभीषिका देखकर भय होता था, परन्तु जब भी भय होता था, तभी मधुर मंजीर-ध्वनि सुनने में आती थी। भय दूर होकर भरोसा होता था, मैं जानती थी कि वह पास ही हैं। देह थक जाने से मैं चल नहीं सकी और पेड़ के नीचे बैठ गई। भुवन अँधेरा दिखाई देने लगा। मैं अधोमुख होकर आंसू बहाने लगीं। कैसी दुर्दशा है, मैंने अपना प्रेम किसके पैरों में सौंपा। मैंने तो प्रेम किया, कहो, उसको उससे क्या लाभ-हानि है। जिसको मैं प्रेम से खरीदना चाहती हूं, वह क्यों प्रेम करने लगा, क्योंकि मैं कुरूपिणी हूं और वह अमृत की खान है और सदा स्वेच्छामय है! यदि वह भी प्रेम करता तो कहो, वह मुझे देखकर क्यों दूर चला जाता? सदा समीप और संग-संग फिरता है, तो भी दिखाई नहीं देता। रोकर कह रही थी कि वही मंजीर-ध्वनि सुनाई दी। मुख उठाकर देखा* तो वही नीलकान्तमणि!

❀ ❀ ❀

मेरी ओर करुणा नेत्रों से देखता हुआ वह मेरी बातों को सुन रहा था। मैंने लज्जा से मुख नीचा करके अंचल से मुख ढक लिया। उसके चरित्र से मेरे मन में कुछ ऐसा हुआ कि मैं क्रोधित होकर चल दी। मन में यह भरोसा था कि वह पीछे से आकर मुझे विनति करके मना लेगा। बहुत दूर जाकर जब मंजीर-

---

* तेषामाविरभूच्छौरिः साक्षात् मन्मथमन्मथः ॥

(भा० रा० पं०)

ध्वनि नहीं सुनाई दी तब मैंने पीछे को देखा तो वह नहीं दिखलाई दिया और मैं निराश होकर बैठ गई। मन में हुआ कि उसने फिर भी उपेक्षा की, अब तो मुझे बचने की इच्छा* नहीं है। उस ही के सन्मुख प्राण देकर उसको अपराधी बनाऊंगी। इसी समय देखती हूं कि मेरी जितनी भी प्रिय सखियां थीं, मुझे खोजती हुई वन में आगई हैं। मुझे देखकर जल्दी से आकर उसी स्थान में बैठ गईं।

सखिगण कहने लगीं—'श्री नन्दनन्दन को भजने से तुझे यह दुःख मिला। हमने तुझसे उस ही समय कह दिया था, परन्तु तूने हमारी नहीं सुनी, अब रोते-रोते अचेत हो रही है। हे सखि, अब भी 'टेढ़े रास्ते को छोड़कर सीधे रास्ते चल। जो चिरपरिचित मार्ग है, वही साधुमार्ग है।× हे कुलनारी, अपने कुल की

---

* मम मरणमेव वरमिति वितथकेतना।
किमिति विषहामि विरहानलमचेतना ॥३

(गीतगोविन्द सर्ग ३)

× विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

निराहारस्य = (इन्द्रियों द्वारा) विषयों को न ग्रहण करने वाले देहिनः = पुरुष के केवल विषयाः = विषय तो विनिवर्तन्ते = निवृत्त हो जाते हैं, (परन्तु) रसवर्जं = राग नहीं निवृत्त होता है। अस्य = इस पुरुष का (तो) रसः = राग (भी) (प्रवृत्ति,निवृत्ति)

रक्षा कर। मैंने विचार किया, सखीगण मेरे हित की कह रही हैं, क्योंकि जिसको मैंने प्राण दिये हैं, उससे ही मेरे मन में यह व्यथा है। इस ब्रजपुरी में जितनी भी व्रजबाला हैं, वे तो सुख से संसार (गृहस्थ) कर रही हैं। मुझे प्रीति करने की दुर्मति हुई।× अब नयन वारि में बही जा रही हूं। मैंने सखियों से कहा—'मैंने

परं दृष्ट्वा निवर्तते = परमात्मा को साक्षात् करके निवृत्त हो जाता है।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीतिवादिनः॥ (गी० २-४२)
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति॥ (२-४३)
भोगैश्वर्य्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥
त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥

सीधा रास्ता = वेदाः = विदित प्रचलित सब का देखा हुआ।
टेढ़ा रास्ता = निर्योगक्षेम आत्मवान्॥ निस्त्रैगुण्य निर्द्वन्द्व नित्यसत्वस्थ।

योग = अप्राप्त की प्राप्ति का नाम योग।
क्षेम = प्राप्त वस्तु की रक्षा का नाम क्षेम।

× प्रीति निवाहन कठिन है समझि कीजिये सोय।
भांग भखन तो सहज है लहर कठिन ही होय॥

श्रीराग

पिरीति पिरीति सब जग कहे, पिरीति सहज कथा।
विरखे फल नहे त पिरीति नाहि मिले यथा तथा॥
पिरीति अन्तरे पिरीति मन्तरे, पिरीति साधिल ये।
पिरीतिरवन, लभिल ये जन, बड़ भाग्यवान् से॥
पिरीति लागिया, आपन भूलिया, परेते मिशिते पारे॥
परे के आपन, करिते पारिले, पिरीति मिलये तारे॥
पिरीति साधन बड़ई कठिन, कहे द्विज चंडीदास।
दुइ घुचाइया एक अङ्ग हओ, थाकिले पिरीति आश॥

(चंडीदास)

प्रेम न बाड़ी ऊपजे प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचे सीस देइ ले जाय॥ (कबीर)

सोहनी

पिरीति वलिया ए तीन आंखर भुवने आनिल के।
मधुर वलिया छानिया खाइनू तिताय तितिल दे॥
सइ, ए कथा कहन नहे।
हियार भीतर, वसति करिया, कखन कि जानि कहे।
पियार पिरीति, प्रथम आरति, ताहार नाहिक शेष।
पुनं निदारुण, शमन समान, दयार नाहिक लेष॥
कपट पिरीति, आरति बाड़ाय, मरन अधिक बाजे।
लोक चरचाय, कुले रचादाय, जगत भरिल लाजे॥

हइते हइते, अधिक हइल, सहिते सहिते म'नू ।
कहिते कहिते तनु जरजर पागलि हइया गेनू ॥
एमति पिरीति ना जानि ए रीति परिणामे किवा हय ।
पिरीति परम दुःखमय हय द्विज चंडीदासे कय ॥

(चंडीदास)

प्रेम

सीस उतारे भुइं धरे ता पर राखे पांव ।
दास कबीरा यों कहे ऐसा होय तो आव ॥
छिनहि चढ़ै छिन ऊतरै सो तो प्रेम न होय ।
अघट प्रेम पिंजर बसै प्रेम कहावे सोय ॥
प्रेम प्रेम सब कोई कहै प्रेम न चीन्है कोय ।
आठ पहर भीना रहे प्रेम कहावे सोय ॥ (कबीर)

परी दुख फन्द नन्दनन्द को विलोकि
अरी मंद मंद चाल नहिं भूलै पटु मन तें ।
माधव विपति डारे वन को सिधारे
हाय श्याम विरहागि जल भई से ततन ते ॥
वाके मुखचंद लखै नैन अरविन्दहू ते
उठैं चाह दाह मेरे हिये छन छन तें ।
भई हूं विहाल बिन लखे अहो दीनद्याल
निगुन मुकुन्द मोहि बांध्यो री गुनन तें ॥६०

(दीनदयालगिरि)

विचार कर लिया है, मैं अब उसको नहीं भजूंगी। जैसे सब संसार में रहते हैं, मैं भी रहूंगी। चलो, घर को।' यह कह ही सकी थी कि मैंने उसे अपने हृदय में खड़ा देखा। जिसको मैं प्यार करती थी, वही कृष्णचन्द्र एकटक मुझे देख रहा है। उसका मुख मलिन है, आंखें कातर हो रही हैं और मुख सूख गया है। वह इस समय भय से भयभीत हुआ जैसा था कि कहीं मैं उसको न छोड़ दूं। उसका मुख देखते ही 'मैं नहीं जाऊंगी' कहकर मैं मूर्छित होकर भूमि में गिर पड़ी। 'क्या हुआ, क्या हुआ' कहकर सखियों ने मुझे पकड़ लिया और मैं अचेत रही। बहुत काल तक मैं ऐसे ही अचेत रही, मैं कुछ नहीं जानती थी। पद्म-गन्ध पाकर मैंने आंखें खोलीं और मंजीर की ध्वनि सुनी। सखियों ने मेरे कान में कहा —'आंख के कोने से तो देख, तेरे शिराने कौन है ?' यह बात सुनकर शिर फेरकर देखा तो मेरा प्राणेश्वर !

* * *

जिस समय मैंने उनको देखा, मेरे अङ्ग में बहुत ताप था और अङ्ग में वस्त्र भी नहीं थे। अति लज्जित होकर मैंने मुंह ढांपा और करवट फेरी। फिर मन में आया कि यदि यह बोलेगा तो

प्रेम नगर में ठगवया, नोखे प्रगटे आय।
दो मन को करि एक मन, भाव देत ठहराय॥
अद्भुत बात सनेह की, सुनो सनेही आय।
जाकी सुध आवे हिये, सब ही सुध बुध जाय॥

मैं अभी भाग जाऊंगी। मैंने धीरे-धीरे इशारे से सखियों से आसन देने को कहा।

सखी ने मेरे कान में कहा—'सोई क्यों है, बन्धु का सन्मान कर।' मैंने भी उसके कान में कहा—'मैं उठ नहीं सकती, मेरा अङ्ग बड़ा क्षीण और जर्जरित हो रहा है।' सखियों ने कहा—'हे सुवदन, सुनो, देखो, सङ्गिनी बड़ी कातर हो रही है, उठकर बातचीत नहीं कर सकती है, कृपा करके उसको क्षमा करो।' यह सुनकर शिराने बैठकर बन्धु कहने लगा। मैंने पहले-पहले उसका मधुमय वचन उसी समय सुना। चन्द्रमुख कहने लगा—'बाला के दुःख को देखकर मन में दुःख होता है।' यह सुनकर मुझे और भी लज्जा आई और मैंने हृदय में मुख छिपा लिया। फिर नागर कहने लगा—'इसको क्या व्यथा है और क्यों मर्म्मा-हत हो रही है। मैं यथासाध्य उपचार करूंगा।' यह वचन सुनकर मेरा मन कातर हुआ और मैंने कहा—'हे सखि, घर को चल। अभी जाते हैं, यहां नहीं रहते, कहो, क्यों रहें ? मैं दुःख पाती हूं, किसकी हानि होती है ? मैं किसकी हूं और मेरा कौन है ? निज कर्म के योग का भोग करूंगी।* किसी का उपकार मुझे नहीं चाहिये।' सखियों ने कहा—'हे सुवदन, सुनो, सखी की मनो-व्यथा क्या है और क्या दुःख है, उस ही से पूछो। तुम और वह

---

* मा भुक्तं क्षीयते कर्म्म कल्पकोटिशतैरपि ॥२०६

(कर्ममीमांसा दै० मी०)

बातें करो।' नागर कहने लगा—'मैं तुम्हारी सखी को बड़ी ही कातर देख रहा हूं, उसके हृदय में क्या दुःख है, विवरण करके कहो।'

सखीगण बोलीं—'हे श्रीहरि, हम निवेदन करती हैं, सुनो—हम यह नवीन बाला लायी हैं। हमारी सरला बाला ने जो मनोहर माला गूंथ रक्खी है, वह आपके गले में पहनाती हैं। इस सरला को हम आपको सौंपती हैं, इसको यत्न से रखिये। हम नहीं जानतीं कि प्रीति की कहानी कैसी होती है, धैर्य्य रखकर सिखाइये। तुम तो रसराज हो। कहीं रसभंग होगा तो आपको व्यथा होगी। अपराध क्षमा करके प्रसन्न होओ और मधुर कथा कहो। उसमें प्रेम का संचार हो गया है और उसने अपना प्राण तुमको सौंप दिया है। बांह फैलाकर हृदय में लेकर इसे आलिंगन करो। वन-फूलों से प्रिया को सजाकर उसे प्यारी बनाओ और दोनों जने पुष्पवाटिका में फिरो। हम आंख भरके देखेंगे।' तब रंगिणी ने कहा—'इस समय हम जाते हैं। भाई, तुम रहो और एक-दूसरे का परिचय लो।'

* ❀ *

सखियों के जाने पर मेरे चित्त में क्या हुआ, कुछ भी उसका ज्ञान नहीं है। मैंने व्याकुल होकर उनका अंचल पकड़ लिया और कहा—'कहां जाती हो और किसको दे गई हो। तुमने क्या कहा, मैं नहीं समझी, भय से मेरा कलेजा कांपता है। यह मेरा परिचित नहीं है, न इसका चरित्र जाना हुआ है, इसके समीप

मुझे रख गई हो ! यदि मुझे छोड़ जाओगी, तो कलंक लगेगा और घरवाले मुझे घर में नहीं आने देंगे। कहो, किसके लिये मैं अपने निर्मल दो कुलों को और कुटुम्बियों को छोडूं। ये सुजन हैं कहकर इसी क्षण तुम्हारे मन में कैसे निश्चय हो गया ?' मैं उठ खड़ी हुई और 'घर जाती हूं' कहकर खड़ी हुई और सखी के गले लगी। उसके कन्धे में मुख रखकर जोर से रोई। और वह कहने लगा—'क्या हुआ, क्या हुआ ?' तब सखियों ने कहा—

'हे सरले, यह क्या ! विकल होकर रो रही है ? हमने तुझे सुपात्र के हाथ सौंपा है। जो तेरा है और तू जिसकी है, फिर उसको पाकर दुःख किस बात का ? आंखों के जल से उसके चरण-कमलों को धोना और बालों से पोंछना। उसको यत्न से हृदय में रख छोड़ना और उसके अङ्ग में व्यथा न देना। जिसको वह प्यार करे, उसका मथन करना, उससे मधु उठेगा, उस ही मधु-से प्रेम से अपने बन्धु को प्रसन्न करना। नव-नव राग और नये सुहाग से बन्धु को सुख देना। प्रेम-सरोवर में दोनों तैरना और सदा शीतल रहना। यदि बन्धु अलसावे तो उसको रस के तकिये में यत्न से सुलाना। हाथों से बांधकर मुख से मुख लगाकर कमल का मधुपान करना। आंखों से आंखें मिलाकर निमेष छोड़कर रहना। जब नयनों से जल उठे तो दोनों मुख भीग जावेंगे और बार-बार बातें कहने लगो तो बातें बाहर न निकल सकें। (कण्ठरोध हो) भीतर ही भीतर अश्रुपात हो और नयनों

से ही वार्तालाप होवे। अंचल से बन्धु का मुख पोंछना और बन्धु तेरा मुख पोंछेगा।'

श्री गौर चन्द्रमा, करुणा की सीमा, बलराम के चित्त का चोर है। * * *

सखी मुझको छोड़ गई, मैं त्रसित होकर बैठ गई और लज्जा से मुख ढक लिया। मैं सोच ही रही थी कि जाऊं या न जाऊं। इतने ही में अमृत की धारा के समान वाणी सुनने में आई। उस समय नागर ने कहाः—

मुख नीचा करके धीरे-धीरे नागर कहने लगा, 'हे नवीन बालिका सुन, जब तू ने मेरे हृदय को देखा था यदि कठोर जाना था, तो क्यों नहीं लौट गई थी ? तू किस की बातों में आकर वृन्दावन में आई ? क्या तू नहीं जानती थी कि यह देव-स्थान है, यहां रह कर, वंशी गान सुनने से ज्ञान जाता रहता है ?*

---

* भई हैं वियोगी बालभोगी होत हैं विहाल
ता रस के भोगी भये जोगी तजिके तुरी।
तपन सुता को री लगो है ज्यों तपन तीर
भूलिकै अपनपोकों गति वेग ते मुरी ॥
शरद विशारद की भारद भई है सुनि
बीन को दुराय के प्रवीन दरी मैं दुरी।
भूलैं सब बांसुरी को आंसुरी
न रोकि सकैं आसुरी हौं औ सुरी ॥१३२
(दी० द०)

तुम्ह से किस ने कहा था कि माला गूंथ और किस के लिये गूंथी थी ? श्री हस्त से गूंथ कर समर्पण की, तो वह उसे कैसे त्याग कर सकता था* और उसका प्रसाद आस्वादन करके अपनी

ध्यानं बलात्परमहंसकुलस्य भिन्दन्
निन्दन् सुधामधुरिमाणमधीरधर्म्मा ।
कन्दर्पशासनधुरां मुहुरेष शंसन्
वंशीध्वनिर्जयति कंसनिषूदनस्य ॥ (भ० र० सिं०)

* अंगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ॥

स्वीकार (भूपनारायण-एकताला)

सवार माझारे तोमारे स्वीकार करिव हे !
सवार माझारे तोमारे हृदये वरिव हे !
शुधु आपनार मने नय,
आपन घरेर कोने नय,
शुधु आपनार रचनार माझे नहे,
तोमार महिमा येथा उज्ज्वल रहे,
सेइ सवा माझे तोमारे स्वीकार करिव हे !
द्यु लोके भूलोके तोमारे हृदये वरिव हे !
केवल तोमार स्तवे नय,
शुधु संगीत रवे नय,
शुधु निर्जने ध्यानेर आसने नहे,
तव संसार येथा जाग्रत रहे,

ही इच्छा से माला पहिन ली। किसने तुझ से माला पहिनने को कहा था ? तब अब क्यों रोती है ? तेरा शून्य हृदय, जिसमें कोई रोक-टोक नहीं थी, देखकर वनदेव शून्य घर पाकर घुस गया, अब क्यों बाहर* होवे ? कात्यायनी के मन्दिर में जाकर फूट-फूट कर रोई थी और मां ने तुझे वर दिया था। तूने प्रीति

कर्म्मे सेथाय तोमारे स्वीकार करिव हे !
प्रिये अप्रिये तोमारे. हृदये वरिव हे !
जानि ना वलिया तोमारे स्वीकार करिव हे !
जानि वले नाथ, तोमारे हृदये वरिव हे !
शुधु जीवनेर सुखे नय ,
शुनु प्रफुल्ल मुखे वय ,
शुधु सुदिनेर सहज सुयोगे नहे—
दुःख शोक जेथा आंधार करिया रहे,
नत हये सेथा तोमारे स्वीकार करिव हे !
नयनेर जले तोमारे हृदये वरिव हे ॥

—रवीन्द्रनाथ टागोर

(चयनिका पृ० ४२८-४२१)

ब्राह्मी स्थिति

* विहाय कामान् यः सर्वान्पुमांश्चरति निस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥

(गी० २-७१)

मांगी थी, प्रीति मिल गई, अब क्यों रोष* करती है ? तुझे सरल देखकर मन खोलकर तुझ से कहता हूं, मुझे भजेगी, तो तुझ को केवल रोना ही रोना होगा और पद-पद में विपत्ति भोगनी÷

स्रग्विणी छन्द

* रार री राधिका श्याम सों क्यों करे,
सीख मो मान ले मान काहे धरे।
चित्त दे सुन्दरी क्रोध ना आनिये,
स्रग्विणी कृष्ण की मूर्ति को धारिये ॥

(पिंगल)

÷ भक्ताय चित्रा भगवान्हि सम्पदो राज्यं विभूतिर्न समर्द्धयत्यजः ।
अदीर्घबोधाय विचक्षणाः स्वयं पश्यन्ति पातं धनिनां मदोद्भवम्॥

(भा० द१०-१० सुदामावचन)

यस्तु मां भजते नित्यं वित्तं तस्य हराम्यहम्
करोमि बन्धुविच्छेदं स तु दुःखेन जीवति ।
सन्तापेष्वेषु कौन्तेय यदि मां न परित्यजेत्
ददामि स्वीयं च पदं देवानामपि दुर्लभम् ॥
तस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः
ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःखदुःखितम् ।
स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद्धनेहया ।
मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम् ॥
तद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनन्तकम् ।
ततो मां सुदुराराध्यं हित्वाऽन्यान्भजते जनः ॥

पड़ेगी। मैं तो वन में घूमता हूं, मुझ में माया की गन्ध भी नहीं है। सदा स्वेच्छामय हूं। तुमको छोड़कर सदा चला जाऊंगा।

ततस्त आशुतोषेभ्यो लब्धराज्यश्रियोद्धताः।
मत्ता प्रमत्ता वरदान्विस्मरन्त्यवजानते॥

(भा० १०-८८ ८ से ११)

ब्रह्मन् यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम्।
यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते॥
यदा कदाचिज्जीवात्मा संसरन्निजकर्मभिः।
नानायोनिष्वनीशोऽयं पौरुषीं गतिमाव्रजेत्॥
जन्मकर्म्मवयोरूपविद्यैश्वर्यं धनादिभिः।
यद्यस्य न भवेत् स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रहः॥
मानस्तम्भनिमित्तानां जन्मादीनां समन्ततः।
सर्वश्रेयप्रतीपानां हन्त मुह्येत मत्परः॥
एष दानवदैत्यानामग्रणीः कीर्त्तिवर्द्धनः।
अजैषीदजयां मायां सीदन्नपि न मुह्यति॥
क्षीणरिक्थश्च्युतः स्थानात् क्षिप्तो बद्धश्च शत्रुभिः।
ज्ञातिभिश्च परित्यक्तो यातनामनुयापितः॥
गुरुणा भर्त्सितः शप्तो जहौ सत्यं न सुव्रतः।
छलैरुक्तो मया धर्मो नायं त्यजति सत्यवाक्॥
एष मे प्रापितः स्थानं दुष्प्रापममरैरपि।
सावर्णेरन्तरस्यायं भवितेन्द्रो मदाश्रयः॥

और तू ढूंढकर भी मुझे नहीं पा सकेगी। इस घोर अटवी में अकेली रहेगी और विपत्ति आने पर मुझे पुकारेगी। परन्तु मैं यह प्रतिज्ञा नहीं कर सकता कि तेरी पुकार सुनते ही उसी समय आजाऊंगा। प्रेम में मग्न होगी, तो भस्म में होम करेगी और प्रयास से तू मरेगी। मैं धन-जन के नाम से कुछ भी नहीं दे सकता, क्योंकि मैं दीन हूं, मेरे पास धन नहीं है। मुझ कङ्गाल के पास तुझे प्रसन्न करने को वस्त्र-भूषण कुछ भी नहीं हैं। मुझे भूख लगे और कुछ खाना चाहूं, तो तुझे ही मुझ को देना* होगा।' नागर ने ऐसे करुण स्वर से कहा कि माया अधिक बढ़ गई। मैं सिर नीचा करके रह गई, कुछ कहना नहीं आया और हृदय विदीर्ण हो गया। तब मैंने घूंघट की ओट से प्रिय को देखा, पर उसने मुझे नहीं देखा। बन्धु का मुख चन्द्र-सदृश और अति मधुर था, जिससे अमृत बरस रहा था। मैंने सोचा यह वस्तु मेरी है, मैं उसकी हूं। मैं उसकी हूं, क्या वह मेरा है ?+

---

* पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥ (गी० ९-२६)

\+ माऽहं ब्रह्म निराकुर्य्यां, मा मां ब्रह्म निराकरोत्॥

(ऋतम्भरा)

नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्
सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः।
उदासीना वयं नूनं न स्त्र्या पत्यार्थकामुकाः
आत्मलब्धा स्म हे पूर्णा रिहयोज्योतिरक्रिया (?)

मन और प्राण, जीवन और मरण, सुख और दुःख में मैं उसकी हूं।

* * *

फिर करुण स्वर से वह मुझ से कहने लगा, और कुछ कहता हूं, सुनः—

कहने को तो हुआ, पर चुप रहा, उसके मन की कौन जाने? फिर धीरे-धीरे कहने लगा, 'मुझे प्यार करती है तो जो मेरे हाथ में देगी मैं ग्रहण करूंगा और आनन्द से खा लूंगा और तुझे धन्यवाद दूंगा। मुझ में एक गुण है, सुन, मैं सरल होकर तुझ से कहता हूंः—

'क्रोध तो मेरे चित्त में देखने में भी नहीं आवेगा। मेरा* हृदय सदा शान्त और स्निग्ध है। कोई कभी दुःख पाकर मुझे गाली भी देवे, तो उससे मुझे दुःख नहीं होता। कोई मेरा अपराध

---

* शयानं श्रिय उत्संगे पदा वक्षस्यताडयत्
तत उत्थाय भगवान् सह लक्ष्म्या सतां गतिः।
स्वतल्पादवरुह्याथ ननाम शिरसा मुनिं
आह ते स्वागतं ब्रह्मन् निषीदात्रासने क्षणम्॥६
अजानतामागतान्वः क्षन्तुमर्हथ नः प्रभो
अतीवकोमलौ तात चरणौ ते महामुने
इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन् स्वेन पाणिना॥

(भा० १०-८६-१०)

करे, तो मैं उससे क्षमा मांग कर उसके चरण पकड़ूंगा।' मैंने तिरछी आंखों से देखा, तो उसकी आंखों से छल-छल आंसू बह रहे थे और कितने भाव उसके मन में खेल रहे थे! वह मेरा उत्तर सुनने को अति व्यग्रचित्त होकर मेरा मुख देखने लगा। मैं उसको क्या उत्तर दे सकूं—लज्जा से कातर थी और नाना भाव मेरे मन में खेल रहे थे। उसकी बातों को सुनकर मैं नीचा सिर किये अविश्रान्त रोई। फिर कुछ धैर्य रखकर मैंने धीरे-धीरे कहा कि तुम जग-मनोहर हो। रूप, गुण और मधुर वचन से तुम अबलाओं को मारते हो। क्षमा और उपकार* तुम्हारा

---

* येनोद्धृता वसुमती सलिले निमग्ना
नग्ना च पांडववधूः'स्थगिता दुकूलैः।
सम्मोचितो जलचरस्य मुखाद् गजेन्द्रो
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः॥

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते॥
(कठ० उ० १५ प्र० अ०)

नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न
प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं अदृष्टमव्यवहार्य-
मग्राह्यमलक्षणमविचिन्त्यमव्यप-
देश्य ··· ··· प्रपंचोपशमं शान्तं शिव-
मद्वैतं चतुर्थं मन्यते स आत्मा स विज्ञेयः॥

स्वभाव है, कहकर शास्त्रों में सुना जाता है। मुझ से सत्य-सत्य कहना, धोखा न देना — क्या तुम में माया नहीं है ? यह कहकर मैंने मुख उठाकर श्रीहरि का मुख देखा। मेरा वह तृषा बड़ा ही विषम था, उस समय मुझे कोई लज्जा या भय नहीं था। मेरी ओर देखकर उसने हंसकर कहा —

'क्या तू इसको नहीं जानती ? मुझको शास्त्रों में माया-गन्ध-शून्य निर्मोह और निर्गुण कहते हैं।' यह बात सुनकर मैंने मर्माहत होकर और लज्जा, संकोच छोड़कर, हाथ जोड़कर, दीन भाव धरके, बड़े क्लेश से उसका मुख देखकर कहा, 'हे वनदेव, सुन इस समय मेरा मरना जीना समान होगया है। यदि कुछ वर मांगू तो दोगे ? मैं गुण-रूपामृत तो वारम्बार पीती रहती हूं परन्तु स्पर्श-सुख अभी अनुभव नहीं किया है। एक बेर अपना वाम कर दो* मैं स्पर्श करके मर जाऊं।' यह कहकर मैंने हाथ बढ़ाया और उसका हाथ अपने दोनों हाथों में लिया। दोनों हाथों में श्रीकर विराजमान था। और मेरा अंग थर-थर कांप रहा था। अल्पकाल उसको दबाकर मेरा अंग पुलकित हुआ और त्रिभुवन सुखमय×

---

* विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात्।
करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्॥

(रा० प० भा०)

× नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामस्मरणे भविष्यति॥

होगया। फिर मैंने श्रीकर कपोल में छुवाया उससे तापत्रय मिट गया। कोमल रक्तचरणों का नासा से आघ्राण किया जिसके गन्ध से दूर के भृङ्ग मत्त होते थे। और मेरा प्राण विगलित हो गया। मैंने सुख का आस्वादन करके और मत्त होकर, हाथ जोड़कर कहा, "मैं विदा मांगती हूं या तो घर को जाऊंगी अथवा मर जाऊंगी। तुमको भजूं और तुम्हें न पाऊं, तुम प्रभु माया-शून्य! यदि युगानुयुग निरवधि तुम्हारी सेवा करूं तो भी तुम से मेरा प्रेम तुम को न छू सके, क्योंकि तुम में माया गन्ध नहीं है। मेरा सम्वल केवल मात्र पिरीति है और तुम्हारे समीप शक्तिहीन* है। ऐसा सुन्दर गुण का सागर यदि हृदय में रहता तो युगानुयुग इन चरणयुगल की वारम्वार पूजा करती।' ऐसा कह कर मैं आंखें खोल कर देखती

---

* सा परानुरक्तिरीश्वरे।

(भक्तिसूत्र क० योगांक पृ० ४७६)

अनन्यममता विष्णौ ममता प्रेमसंगता॥

या प्रीतिरविवेकिनां विषयेष्वनुपायिनी।

त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्नाऽपसर्पतु॥

(वै० मी० २०३)

कामहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।

तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहिं राम॥

(तु० रा० उत्तरकांड)

रही। आशा का स्फुरण* हुआ और अंग ढल पड़ा। मैं मूर्छित होकर धरती में गिर पड़ी।

* * *

ऐसी अचेतन मैं कितने समय तक रही मैं कुछ नहीं जानती। मैं शीतल शैय्या में सोई हुई जैसी सङ्गीत सुन रही थी। मैं अर्द्ध बाह्य-आँखें बंद संगीत सुन रही थी। मेरा अंग पुलकित था+ और क्षण-क्षण में प्रेम तरङ्ग उठ रहे थे।

रागिनी सूरट

निपट निष्ठुर और कठिन वह नटवर कैसे हो सकता है। ध्रु० इस संसार में क्यों माधुर्य विराजमान है और क्यों रस का प्लावन है। गाढ़ आलिङ्गन और वदन-चुम्बन मनुष्य को किसने दान किया। जिसने प्रेम-डोर दिया और आंखों में जल दिया वह हमारा कान्ह कैसे निठुर है? मुख में मधुर हास्य, अबला को लज्जा और सती को धर्म्म किसने दिया? बिन्दु मात्र प्रेम पाकर बलभद्र उसके मर्म्म को कैसे जान सकता है?

* * *

---

* श्रुतिर्माता पृष्टा दिशति भवदाराधनविधिं
यथा मातुर्वाणी स्मृतिरपि तथा वक्ति भगिनी।
पुराणाद्या ये वा सहजनिवहास्ते तदनुगाः
अतः सत्यं ज्ञातं मुरहर भवानेव शरणम्॥

\+ सा परानुरक्तिरीश्वरे। (भ० सू०)

सुस्वर से गा रहे हैं और घूम-घूम कर नाच रहे हैं। पैरों में नूपुर बज रहे हैं। आंख खोलकर देखती हूं तो बहुत-सी देव-नारी गा रही हैं और मैं फूलों की सेज में सो रही हूं और बन्धु मेरे दाहिनी ओर विराजमान है, प्रसन्न मुख प्रेम-भरी दृष्टि से मेरी ओर देख रहे हैं। उस दृष्टि को देखकर मेरा हृदय द्रवीभूत हो गया। बन्धु मुझ से धीरे धीरे कहने लगा 'मैं बहुत समय से हूं, अब बिदा मांगता हूं, कृपा करके मुझे मत भूलना। मुझको खोजते घूमते फिरते, हे प्रिये, तूने बड़ा कष्ट उठाया है। मैं दुर्लभ नहीं होऊंगा, चाहेगी तो मैं मिलूंगा परन्तु मिलने में सुख नहीं है।' ऐसा कहकर उसने मेरा मस्तक चूमा और आंखों से जल बहा। मेरे नयनों को चूमकर वह दौड़ कर चला गया। उसका शरीर रस से भरा हुआ था। 'ठहरो-ठहरो जरा पीछे देखो' कहकर मैंने हाथ फैलाकर पुकारा और यह भी कहा कि 'और नहीं कहूंगी न सोचूंगी तुम्हारा हृदय बड़ा कठोर है। हे प्राणनाथ ठहरो* मैं भी

* दई दई करिके हों दुखी भई हाइ दई
सुनैं नहिं दई यह कैसो निरदई है।
मेलि कै संजोग हमैं केलि को कराय भोग
फेरि सोग हेतु या वियोग वेलि बई है ॥
तामरस जासु नैन कोटि मैन प्रभाए न आली
अभिराम श्याम मनि छीन लई है।
पन्नगी सी परी अधमरी अरी लोटैं
(दी० द०) हम घरी घरी हरी की विथा से मति तई है॥२८

तुम्हारे संग चलती हूं तुम मेरे प्राण हो। प्राण लेकर मुझे छोड़े जा रहे हो तुम मेरे स्वामी हो। मुझ अबोधिनी* के प्रति क्रोध करके छोड़ जा रहे हो। हे जीव के नाथ÷ मेरे अपराध को क्षमा करो।' बलराम स्तुति करता है।

---

* एक तो गंवारी नारि जाति पांति ते विहीन
लीन दोष कीच मति घोस बीच वास है।
बोध न हमारे कछु गोधन को धन रंच
सोधन करति फिरैं बन बन घास है॥
ताहू पर मान करि रूसैं मन मोहन सों
छोह न हमारे हरि कीनो रसरास है।
अपनी कुचाल को कहां ते कहैं हाल
ऊधो दीन के दयाल की दया की आश है॥२७७
(दीनदयालगिरि)

÷ आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मा-
मदर्शनान्मर्म्महतां करोतु वा।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः॥

(क० पृ० ४३१ मार्ग १९८८)

सीतापति रघुनाथजी तुम लग मेरी दौर।
जैसे काग जहाज में सूझे और न ठौर॥ (तुलसी)

माधव तुम बिन सब जग झूठो।

रवि ससि अनिल अनल जल थल में तुमरोहि तेज अनूठो ॥

नन्द किसोर और नहिं जाचूँ, रांजो रहो चाहे रूठो।

मैं हू' अनन्य आपको सेवक 'कृष्ण दास' पैं तूठो ॥

(क० कौ०)

माधुर्यरस

आत्मोचितैर्विभावाद्यैः पुष्टिं नीता सतां हृदि ।
मधुराख्यो भवेद्भक्तिरसोसौ मधुरा रतिः ॥१

(भ० र० सिं० ४२६)

निवृत्तानुपयोगित्वाद् दुरूहत्वादयं रसः ।
रहस्यत्वाच्च संक्षिप्य विततांगोऽपि लिख्यते ॥२

तत्रालम्बना—

अस्मिन्नालम्बनः कृष्णः प्रियास्तस्य च सुभ्रुवः ।

तत्र कृष्णः—

असमानोर्ध्वसौन्दर्यलीलावैदग्ध्यसम्पदाम् ॥३
आश्रयत्वेन मधुरे हरिरालम्बनो मतः ॥

यथा श्रीगीतगोविन्दे—

विश्वेषामनुरंजनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवर-
श्रेणीश्यामलकोमलैरुपनयन्नङ्गैरनङ्गोत्सवम् ।
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीभिरभितः प्रत्यङ्गमालिङ्गितः
श्रृङ्गारः सखि मूर्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीडति ॥

अथ तस्य प्रेयस्यः—

नवनववरमाधुरीधुरीणाः प्रणयतरङ्गकरम्बितोत्तरङ्गाः ।
निजरमणतया हरिं भजन्तीः प्रणमतताः परमाद्भुताः किशोरीः॥

(भ० र० सिं०)

प्रेयसीषु हरेरासु प्रवरावार्षभानवी ॥४ (भ० र० ४२७)

अस्या रूपं—

मदचकुरचकोरी चारुताचोरदृष्टि-
र्वदनदमितराकारोहिणीकान्तकीर्तिः ।
अविकलकलधौतोद्धूतिधौरेयकश्री-
र्मधुरिममधुपात्री राजते पश्य राधा ॥

(भ० र० सिं०)

माधुर्यरस में

श्रीकृष्ण में निष्ठा, सेवाभाव और असंकोच के साथ ममता एवं लालन भी रहता है। मधुररस में पांचों रस हैं। जिस प्रकार पृथ्वी में 'क्षित्यब्तेजवायुराकाश', इसी प्रकार मधुररस में भी सब रसों का समावेश है।

जब तक मधुरता न हो, तब तक श्रवण या मनन करनेवालों में भावावेष नहीं हो सकता। भाव विना भक्ति एवं भक्ति के अभाव में प्रेम असम्भव है।

इस रस में जब श्रीमतीजी कृष्ण की सेवा करती हैं, तब दास्य-भाव, और जब श्रीकृष्ण राधा की सेवा करते हैं, तब सख्य-भाव है। यथा—

ब्रह्म मैं ढूँढ़्यो पुरान न वेद न भेद सुन्यो चित चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो न कहू' कबहू' वह कैसो सुरूप औ कैसे सुभायन॥
हेरत हेरत हारि फिर्‌यो रसखानि बतायो न लोग लुगायन।
देख्यो कहू' वह कु'ज कुटीरन बैठो पलोटत राधिका पायन॥
मोर पंखा गरे गु'ज की माल, किये नव भेष बड़ी छवि छाई।
पीत पटी, दुपटी कटि में लपटी, लकुटीं हटि मो मन भाई॥
छूटि लटैं, ढुलैं कु'डल कान, बजै मुरली धुनि मन्द सुहाई।
कोटिन काम गुलाम भये, जब कान ह्वै भानु लली बनि आई॥

(क० कृ० ४१७)

सजल-नयना

(मधुर)

पांचवीं सखी की कहानी

श्री नन्दनन्दन को मैं किस समय भजूं, मैं तो रोते-रोते मरती हूँ। हे सखि, मैं तो उसके दुःख को देखकर अपना सब ही दुःख भूल गई हूं। वह कदम्ब के वन में, बांये हाथ पर मुख रखकर अकेला बैठा हुआ था। उसके नयनों से आंसू टपक रहे थे और मुख भीग रहा था, आँखें लाल हो रही थीं। हे सखि, कहीं रसभंग न हो, कहकर मैं धीरे-धीरे उसके सन्मुख जाकर खड़ी हुई। मुझसे सहा नहीं गया। मैंने अञ्चल लेकर उसकी आँखों को पोंछा। मुझको देखकर मेरे बन्धु ने लज्जा सहित मुख नीचा कर लिया। उसके मलिन मुख और चुपचाप रोने को देखकर हृदय फटने लगा। मैंने व्याकुल होकर उसके सिर में हाथ रखकर कहा—'हे चन्द्रमुख, हे प्राणवल्लभ, यह क्या असम्भव

दृश्य देख रही हूं, तुम्हें किस बात का दुःख है ? तापित होने पर तुम्हें पुकारने से तो हृदय शीतल हो जाता है। दुःख के समुद्र में डूबा हुआ भी यदि कातर होकर तुम्हें पुकारे तो तुम उसको आनन्दमग्न कर देते हो।' वह चुप रहा और आंखें छलछल बहती रहीं, उसके दुःख को कौन जाने ? उसका मुख सूखा हुआ था, आंखों से आंसू गिर रहे थे, मन में नये-नये भाव उठ रहे थे। उसने कोई उत्तर नहीं दिया और आंसू गिराने लगा। यह कौन सह सके ? जो प्राणवल्लभ आनन्द से रखने वाला वही दुःखित मन ! आनन्द की खान, मेरा गुणनिधि, जिसका हृदय सुख का समुद्र, उसे मैंने अपने दुःख की बातें कहकर दुःखी किया, हो न हो, इसीसे रोता हो ? अब मैं उससे अपना दुःख न कहूंगी, न रोऊंगी, न कुछ मांगूगी। मैंने हाथ जोड़कर कहा—'हे प्राणनाथ, कहो तुम्हारा दुःख कैसे दूर हो ?'

लुम रागिनी

हे बन्धु, तुम्हारी वंशी पड़ी हुई है, मुख मलिन क्यों हो रहा है ? मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है, जो आंसू दिखाते हो ? तुम्हारा मुख सूख गया है, क्यों रोते हो ? तुम्हारे होंठ कांप रहे हैं और आंसू बहते हैं। तुम्हारी आंखों में जल ! भला कहो तो क्या हुआ ? क्यों नहीं कहते कृष्णचन्द्र, क्यों रोते हो ?

* * *

उस समय उसने मेरी ओर देखा, परन्तु बोल नहीं सका, भाव

से कण्ठरोध हो गया। कमलनयन भर आये और उनसे सकड़ों धारा बह रही थीं। तब मैंने कहा—'मैं तुम्हारे चरण पकड़ती हूं, कहो, कहो, कहो, मैं तुम्हारे हृदय की व्यथा को बांट लूंगी। और जन्म-भर रोऊंगी। मैं आंखों के जल से तुम्हारे चरणों को धोकर तुम्हारे हृदय को शान्त करूंगी। हम दोनों करुणा के जल में डूबकर दुःख नहीं आने देंगे।' फिर मुख उठाकर धीरे-धीरे कहने लगा—'हे चन्द्रमुखि, क्या कहती है ? मैं तो दुःख की बातें कहना जानता ही नहीं, सदा दुःख की बातें सुनता ही रहता हूं। यदि मैं अपने दुःख को तुझ से कहूं, तो तू जलकर मर जावेगी। मेरे दुःख से तुझे और भी दुःख होगा, जिसको मैं नहीं सह सकूंगा।' मैंने कहा—'हे प्राणेश्वर, यह क्या असम्भव कह रहे हो। मैं तो पाषाण की बनी हुई हूं। मैं दुःख से नहीं टलूंगी। न जलूंगी, न गलूंगी, मुझसे अकातर होकर कहो। मैं तुम्हारी ही उपेक्षा करके अपने सुख के लिये फिरती हूं। मैं अपने दुःख से तो बड़ी कातर होती हूं, और झूठ-मूठ प्रेम का दम्भ करती हूं।' प्राणनाथ ने कहा—'हे प्राणप्रिये, सुन, मुझे पसीना आता है। अपना अञ्चल लेकर मुझे पंखा कर, मैं तेरा मुख देखता हूं!'

* * *

मेरे स्वामी का मुख मधुर, वचन मधुर, और चरित्र मधुर है। हे सखि, कह, मैं कैसे उससे उऋण हो सकती हूं ?

* * *

मैंने दीन होकर निवेदन किया—'हे प्राणेश्वर, सुनो, तुम

किस कारण हमें भजते हो और स्नेह करते हो ?* रात-दिन हमारी मंगल-कामना करते हो और अपराधों को नहीं गिनते ? हम तो तुम्हारे ऊपर दुःख-भार हैं। तुम इतना क्यों सहते हो ? मैं तुम्हारे लिये कुछ भी अभाव नहीं देखती। यदि कुछ अभाव हो भी तो मैं उसे पूरा नहीं कर सकती हूं। मैं तो यही सोचते-सोचते मरती हूं कि कैसे तुम्हारा भजन करूं और कैसे तुम्हें प्रसन्न करूं ?' प्राणनाथ ने कहा—'हे प्राणप्यारी, सुन।' उसके मुख पर मलिन हंसी थी। बन्धु का मुख ऐसा दिखाई देता था, जैसे कुहासे से ढका-हुआ पूर्ण चन्द्र। बन्धु ने कहा—'माता अपनी सन्तान को क्यों भजती है और उसकी इतनी (विपत्ति) क्यों सहती है? सन्तान चाहे

---

* भवान् हि सर्वभूतानामात्मा साक्षी स्वदृग्विभो।
अथ नस्त्वत्पदाम्भोजं स्मरतां दर्शनं गतः ॥३१
स्ववचस्तदृतं कर्तुमस्मद्दृग्गोचरो भवान्।
यदात्थैकांतभक्तान्मे नानंतः श्रीरजः प्रियः ॥३२
को नु त्वच्चरणांभोजमेवंविद्विसृजेत्पुमान्।
निष्किंचनानां शान्तानां मुनीनां यस्त्वमात्मदः ॥३३
योवतीर्य यदोर्वंशे नृणां संसरतामिह।
यशो वितेने तच्छान्त्यै त्रैलोक्यवृजिनापहम् ॥३४
नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णाय कुण्ठमेधसे।
नारायणाय ऋषये सुशांतं तप ईयुषे ॥३५
(भा० १०-८६)

बहरी हो, अग्राह्य हो, अस्थिर हो, किसलिये उसको पालती है ? उसके हृदय में एक बिन्दु स्नेह है। इसीलिये वह (उसे) अकारण भजती है। हे प्राणप्रिया, कहो वह स्नेह बिन्दु उसके हृदय में किसने दिया ? वह स्नेह बिन्दु मुझमें था, नहीं तो मैं कैसे देता ? इसी कारण हे प्राणप्रिया, मैं (भी) अकारण भजता हूं। यह मैंने तुझसे रहस्य कह दिया है। इस संसार में दयावान् हैं,* जो

---

* जगत्सेवा प्रवृत्ताविति वसिष्ठः ।

निषेविताऽनिमित्तेन स्वधर्म्मेण महीयसा ।
क्रियायोगेन शस्तेन नाऽतिहिंस्रेण नित्यशः ॥
मद्धिष्ण्यदर्शनस्पर्शपूजास्तुत्यभिवन्दनैः ।
भूतेषु मद्भावनयासत्वेनाऽसंगमेन च ॥
महतां बहुमानेन दीनानामनुकम्पया ।
मैत्र्या चाऽऽत्मतुल्येषु यमेन नियमेन च ॥
मद्धर्म्मणो गुणैरेतैः परिसंशुद्ध आशयः ।
पुरुषस्याऽञ्जसाभ्येति श्रुतमात्रगुणं हि माम् ॥
अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्माऽवस्थितः सदा ।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम् ॥
यो मां सर्व्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् ।
हित्वाऽर्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः ॥
द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः ।
भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति ॥

दूसरों के लिये प्राण दे देते हैं। मैंने दया दी है, तभी तो उन्होंने पाई है। इसी कारण मैं भी अकारण भजता हूं। मेरे जनों में हो और मुझमें न हो, ऐसा नहीं हो सकता है। यदि मैं अपने जनों से छोटा होऊं तो हे प्रिया, वे मुझसे क्या कहेंगे ? मैंने अपने भक्तों को प्यार करके नाना गुण दिये हैं। इस समय बुरा नहीं हो सकता हूं। यदि मैं बुरा होऊं तो मेरे भक्त* मर्म्माहत होकर मर जावेंगे।' मेरे बन्धु का मधुर वदन, मधुर वचन और प्रेमाश्रुपूर्ण दो आंखें× थीं। उसके ऋण से मैं कैसे उऋण हो सकती हूं ? हे प्रिय सखि, तू ही कह दे।

अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयाऽनघे।
नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामाऽवमानिनः॥
आत्मनश्च परस्यापि यः करोत्यन्तरान्तरम्।
तस्य भिन्नदृशो मृत्युर्विदधे भयमुल्वणम्॥
अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम्।
अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याऽभिन्नेन चक्षुषा॥

(दैवी मीमांसा० पृ० २२१)

* निजांगमपि या गोप्यो ममेति समुपासते।
ताभ्यः परं न मे पार्थ निगूढप्रेमभाजनम्॥

(गोपीप्रेमामृते श्रीकृष्णवाक्यम्)

× मधुरं मधुरं वपुरस्य विभो मधुरं अधरं वदनं मधुरम्।
मधुगन्धि मृदुस्मितमेतदहो मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम्॥

उस समय मैंने कहा—'मुझको ठग लिया और कुछ नहीं कहा। रोते क्यों हो, क्यों चन्द्रमुख मलिन हो रहा है और क्यों मेरा हृदय रो रहा है ?'

निद्रा

मेरे पंखा करते-करते बन्धु की आंखें उनींदी हुईं। मैंने अञ्चल बिछाकर धीरे से सुला दिया और अपने जंघा में यत्न से उसका सिर रख दिया। बन्धु तो सो गया और मैं बहुत रोयी। मैंने धीरे-से चूड़ा खोल दिया और बांये हाथ से बाल सुलझाने लगी और दाहिने से पंखा करने लगी। बन्धु की आंखें बन्द और मुख-चन्द्र में मन्द हास था। हे सखि, मैं मुख नीचा करके उस चन्द्र-मुख को देखती थी। नहीं-नहीं, मैं कैसे देखती,* मेरी आंखों में तो आंसू थे। कभी मुख मलिन हो जाता था, कभी सहसा हृदय के जो तरंग थे, उनका मुख में प्रकाश होता था। बन्धु आंखें खोलकर चौंक पड़ता था। सप्रेम मुझको देखकर आंखें बन्द कर लेता था। आंखें बन्द किये हुए ही धीरे-धीरे कुछ कहने लगा

---

* इन दुखिया अंखियान को सुख सिरजोही नाहिं।
देखत बनै न देखते बिन देखे अकुलाहिं॥ (बिहारी)
गोविन्दप्रेक्षणाक्षेपि बाष्पपूराभिवर्षिणम्।
उच्चैरनिन्ददानन्दमरविन्दविलोचना:॥ (भ० र० सि०)
अंगस्तंभारम्भमुत्तुंगयन्तं प्रेमानन्दं दारुको नाभ्यनन्दयत् (?)
कंसारातेर्वीजने येन साक्षादक्षोदीयानन्तरायो व्यधायि॥

और मैंने सुनने को मुख में कान लगाया। आहा, अंधेरी में कैसी सुगन्ध थी! बन्धु कहने लगा—'मेरे तापित हृदय को ठण्डा करो। चौंक-चौंक पड़ता हूं, मुझे नींद नहीं आती। तेरे गाने को सुनकर सोऊंगा।' बन्धु का आदेश। कुछ क्षण लज्जा से मुख नीचा किये हुए रही। सखियों के संग तो मैं कभी गीत सुनाती थी। परन्तु बन्धु के सन्मुख अकेले नहीं गाया था। अंचल से मुख ढांककर गीत गाने लगी तो गा न सकी, थर-थर कांपने लगी। करुण स्वर से मन खोलकर गाने लगी तो आंखों से धारा बहने लगी और बन्धु का मुख भीग गया।

रागिनी बरूवा

हे सुन्दरमुख कृष्णचन्द्र, तुम्हें क्या देकर प्रसन्न करूं! सदा भी तुम्हारे गीत गाऊं तो तुम्हारे गुण अनन्त* हैं! कहां क्या पाऊं, हे कालाचाँद, मैं तो कुलीन बाला हूं। हे कृष्ण, बड़े यत्न से माला गूंथकर तुझे दूंगी।

उस समय--

डबडबाती हुई आंखों से प्रेम-सहित (उसने) मेरी ओर देखा। उसके भाव को देखकर मैं कांप उठी और उसी स्थान में गिर पड़ी।

---

* गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातुं
हितावतीर्णस्य क ईश्वरोऽस्य।
कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पै-
र्भूपांशवः खे मिहिका द्युभासः॥ (भा० १०)

चतुरानन सम बुद्धि विदित जो होयं कोटि धर ।
एक एक धर प्रतिन सीस जो होयं कोटि वर ॥
सीस सीस प्रति वदन कोटि करतार बनावै ।
एक एक मुख मांहि रसन फिर कोटि बनावै ॥
रसन रसन प्रति सारदा कोटि बैठि बानी कहहिं ।
महि जन अनाथ के नाथ की महिमा तबहुँ न कह सकहिं ॥

(कौमुदीकुंज)

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तवगुणानामीश पारं न याति ॥ (महिम्न०)

कनककुण्डलमण्डितगण्डया ,
जघनदेशनिवेशितवीणया ।
अमरराजपुरे सुरकन्यया ,
तव यशो विमलं परिगीयते ॥

जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो
यदुवरपरिषत् स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्म्मम् ।
स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितश्रीमुखेन
व्रजपुरवनितानां वर्द्धयन्कामदेवम् ॥

(भा० १०-९३ श्लोक ४८)

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणंति ते भूरिदा जनाः ॥

चेत आने पर आँखें खोलीं तो अपने को बन्धु की गोद में सोया पाया। वह मेरी ओर देख रहा और मेरे अङ्ग में हाथ फेर रहा था।

*　　　*　　　*

मैं उठना चाहती थी, परन्तु मन नहीं चाहता था, क्योंकि बन्धु की गोद बड़ी मीठी* है। मेरे मन और नासिका सौरभ और

---

* अयमात्मा सर्वेषां भूतानां मधु,
अस्य आत्मनः सर्व्वाणि भूतानि मधु।　　　(प्रियोऽसि मे)
(दे० मा० पृ० २२७)

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥१
वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम्।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥२
वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणि र्मधुरः पादौ मधुरौ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥३
गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम्।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥४
करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं रमणं मधुरम्।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥५
गुंजा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥६

लावण्य को पी रहे थे, आंखें मधुर इन्दु-रस पी रही थीं। बन्धु ने कहा—'हे प्रिये, सो रह,* यही तो तेरा स्थान है। मैंने यह अपना अङ्ग तुझको सौंप दिया है। मुझको अन्य क्यों समझती है? तू अबोधिनी सदा कुंठित रहती है और पीछे मैं अप्रसन्न होऊंगा, समझती है।× तू दीनता की खान, सुधांशुवदनि, भय से थर-थर काँपती है। तू नहीं जानती, नौनी की पुतली, तू मेरी पाली-पोषी हुई है, क्या मैं ही तुझको दुःख दूंगा? रात-दिन अनर्थ सोचकर कांपती-कांपती तू दुबली हो गई है। तू रो-रोकर छुरी मारकर मुझे दुःख देती है। अबोध बालिका, बात तो सुनती ही नहीं, मैं क्या करूं!

उस समय—

हे सखि, मैं तुरन्त उठकर और गले में वस्त्र देकर चरणों में

गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं भुक्तं मधुरम्।
इष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥७

गोपी मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥८

मधुरः = सोमवत्प्रियदर्शनः।
रूपोदार्यगुणैः पुंसां दृष्टिचित्तापहारिणाम् ॥

* मनस्तत्र लयं याति तद्विष्णोः परमं पदम्।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ (गी० १५)

× संशयात्मा विनश्यति ॥

गिर पड़ी और कहा--'हे प्राणेश्वर, मुझे भक्ति वर दे, तेरे चरणों से यही वर मांगती हूं। तुम्हारी गोद में सोकर मेरी यह क्या दशा हो गई है! मुझे चैन (स्वस्ति) नहीं है। हे प्राणेश्वर, तूने मुझे आनन्द में डाल दिया और भक्ति नहीं दी,* यह तेरे क्या रंग हैं? मैंने अपना जीवन और यौवन तुम्हारे ही श्रीचरणों में अर्पण

---

* भक्ति और मोक्ष का कैसा सुन्दर दृष्टान्त निम्न है :—

कचा मुक्ता मुक्तावलिरपि ययौ निर्गुणदशाम्।
विशुद्धन्ते दन्तच्छदयुगमभूद्दान्तहृदये ॥
अबन्धासीत् कांची तदिव सखि युक्तासि हरिणा।
सतीनां वः कृत्यं किमुचितमिदं गोकुलभुवाम् ॥३४

(विदग्धमाधवे पृ० १७१)

टीका

कचा इति। मुक्ताः प्राप्ताः, पवर्गाः स्खलिताश्च, निर्गुणदशां छिन्नसूत्रतां सत्त्वादिगुणत्रयातीततां च। दन्तच्छदयुगमोष्ठाधरौ विशुद्धं ताम्बूलरागरहितं पक्षे मुक्तमित्यर्थः। हे दान्तहृदये दान्तं गाढालिंगनेन प्राप्तसंमर्दम्, पक्षे दमयुक्तं जीवनमुक्तमित्यर्थः। तथाभूतं हृदयं यस्याः। अबन्धा संसारबन्धरहिता, बन्धनग्रन्थिस्खलिता च। तस्मादनुमीयते हरिणा त्वं युक्तासि। हरेर्योगेनैव कशे (कांची) स्खलन-हारत्रोटनादीनि निर्वाणो मोक्षश्च भवतीत्यर्थः। वस्तुतस्तु इदं किमुचितम्। इतोप्यधिकं कृष्णस्य मुकुटहारत्रोटनवक्षःसंमर्दनादिकं रतिवैपरीत्ये नोचितमित्यर्थः। पक्षे गोकुलभुवां गोकुलभूमिनां सतीनां सर्वतीर्थेभ्यो

ऽपि श्रेष्ठानामिदं कृत्यं मोत्तैकदात्रीत्वं किमुचितम् । नोचितमेव। प्रेमभक्तिवेत्रत्वात् ॥

राजन्पतिगुरुरलं भवतां यदूनां
दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किंकरो वः।
अस्त्वेवमंग भजतां भगवान् मुकुन्दो
मुक्तिं ददाति कर्हिचिन्नहि भक्तियोगम् ॥
मुकुन्द = मुक्तिदाता । (भक्तितरंगिणी १६१)

भक्तिः

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुणाशये ।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसोऽम्बुधौ ॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥

(दै० मी० पृ० २४ अनुरागरूपा)

सगुणोपासक मोत्त न लेहीं । तिन्ह कंह राम भक्ति निज देहीं ॥

(तु० रा० लं०)

सुनि प्रभु वचन अधिक अनुरागेउं ।
मन अनुमान करन तव लागेउं ॥३
प्रभु कह देन सकल सुख साही । भक्ति अपनी देन न काही ॥४

(तु० रा० उ०)

किया है। तुम्हारे दुःख में दुःखी और सुख में सुखी+ (होना) नारी का धर्म्म है। मैं तो अपना कुछ भी नहीं जानती, सम्पूर्ण तुम्हारा* ही है। मैं दुःख दुःख कहकर रो-रोकर आकुल होती हूं, इसका सदुपाय बता दो।

* * *

भोजन

कुछ हंसकर बन्धु मुझसे कहने लगा--'हे प्रिये, मैं भूख से जल रहा हूं, कुछ खाने को दो।'

बन्धु की बात सुनकर मैं सब भूल गई और सोचने लगी कि वन में खाने को कहां मिलेगा ? मेरा सरल बन्धु कुछ नहीं जानता। अपने ही मन से कहता है कि खाने को दे। मैं शक्ति-हीन अबला हूं और यह घना जंगल है — कुछ भी नहीं सोचता है। अभी आती हूं, कहकर मैं जल्दी-जल्दी वन में गई और

+भुंक्ते भुक्तेऽथ या पत्यौ दुःखिते दुःखिता च या।
मुदिते मुदितात्यर्थं प्रोषिते मलिनाम्बरा॥
(ना० ध० ध० क० १२३)

* कर्म्मणा मनसा वाचा नाऽन्यचित्ताऽभ्यगात्पतिम्।
तं सर्वभावोपगता पतिशुश्रूषणे रता॥ (म० भा०)
छायेवानुगता स्वच्छा सखीव हितकर्मसु।
दासीवाऽऽदिष्टकार्येषु भार्या भर्तुः सदा भवेत्॥
(ध० क० १२३)

सोचने लगी कि क्या लाऊं और कहां पाऊं। मैंने सन्मुख एक आम्र-वृक्ष देखा और अंचल बिछाकर उसके नीचे बैठ गई। मैंने कहा, मेरा बन्धु क्षुधा से कातर है, मैं दासी तुमसे भिक्षा मांगती हूं। उसी क्षण वृक्ष फलवान् हो गया और उसने अंचल-भर मीठे फल दिये।* मैं आनन्द से डगमगाती हुई यमुना में गई और फलों को धोकर कमल के पत्ते में रखकर बन्धु के सन्मुख आई। आमों को देखकर बन्धु का मुख प्रसन्न हुआ और कहने लगा—'हे प्रिये, तेरे यत्न को धन्य है। आओ, बैठो, हम दोनों जने भोजन करें।' मैंने कहा, 'जो प्रसाद बचेगा, तो वह मेरा।'÷ बन्धु ने कहा—

---

* अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ (गी० ९-२२)

÷ यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ (गी० १३-३)
यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोन्यः कुरुसत्तम ॥ (गीता ४-३१)
यच्च भर्ता न पिवति यच्च भर्ता न चेच्छति ।
यच्च भर्ता न चाऽश्नाति सर्वं तद्वर्जयेत्सती ॥ (ध०क० ६२६)

सू० प्रसादेन निष्कल्मषत्वशान्तत्वम् ॥३६
(दै० मी० पृ० २०८)

प्रसाद—(१) आत्मप्रसाद, (२) धर्म्मप्रसाद, (३) पूजा-प्रसाद।

* * *

'आओ, दोनों बैठकर खावें।' मैंने कहा, 'क्षमा करें, ऐसा नहीं हो सकता।' बन्धु ने कहा, 'हे प्राणप्रिये, तुम चखकर तो देखो, यदि मीठे होवेंगे तो पीछे मैं खाऊंगा।' मैंने छिक्कल निकालकर चखा, तो मीठा लगा और उठा कर श्री कर-कमलों में रख दिया।

मुख में रखकर बन्धु ने कहा--'अपूर्व फल है, रक्खो, प्यारी, इसको खाओ तो शीतल हो जाओगी।' मैंने दोनों हाथों से फल लिया और वृक्ष की ओट में जाकर प्रसाद पाया।

बन्धु ने कहा--'तुमने संग्रह करके मुझे फल खिलाया है।÷ हे प्रिये, मैं तुम्हारी सेवा से कृतार्थ हुआ।'

* * *

यह सुनकर मुझे दुःख हुआ और मैंने गद्गद होकर कहा-- 'मैं तुम्हें क्या दे सकती हूं, मैं नारी, तुम स्वामी! तुम्हारी ही वस्तु से* तुम्हारी सेवा करती हूं। तुम्हीं लज्जा निवारण करनेवाले और

अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम्।
अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्राऽभिन्नेन चक्षुषा॥

÷तुलसीदलमात्रेण जलस्य चूलुकेन वा।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः॥

भक्तैरण्वप्युपानीतं प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत्।
बह्वप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते॥

* त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये॥

सती के धर्म की रक्षा करनेवाले हो !× मैं अबोध दुर्मति स्वामी की सेवा करना नहीं जानती। इसी कारण दुःख से रोती मरती हूं।

उस समय वह श्रीकर-कमल से मेरा मुख ढांपकर कहने लगा—'प्रिये, क्यों दुःख देती है! तू मेरी स्तुति करती है और मुझे लज्जा आती है!* तू और मैं तो प्रेम-डोर से गुंथे हुए हैं।' मेरा हाथ पकड़कर कहा—'चल, वन में चलें।' और मुझे बांई ओर करके, वह हिलता-डोलता चला। उसके चरणों में नूपुर बजते थे। उसके अङ्ग की गन्ध से वन भर गया।

* * *

वन-विहार

बन्धु के अङ्ग की गन्ध से मत्त होकर भ्रमर झुण्ड-के-झुण्ड

× गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृद्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥ (गी० ९-१८)
त्वं माता त्वं पिता चैव त्वं गुरुस्त्वं च बान्धवः।
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम॥
व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का,
कुब्जायां किमु नामरूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनम्।
वंशः को विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्,
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणै र्भक्तप्रियो माधवः॥
(क० १-१६०)

* साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयस्त्वहम्।
मदन्यन्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥ (भा० ९-४-६०)

बन्धु को घेरते थे। बन्धु हंस-हंसकर कहने लगा—'तेरी गन्ध से भ्रमर मत्त हो रहे हैं।' कान लगाकर भ्रमरों का गुंजार सुना तो समझी कि वे बन्धु का गुण गा रहे हैं। बन्धु वृक्ष के नीचे खड़ा हुआ तो वृक्ष कुसुमित हो गया और पुष्पों का मधु बन्धु के सिर में गिरने लगा और बन्धु प्रेम से वृक्ष की ओर देखने लगा। वृक्ष की डाल में शुक सारिका बैठकर बन्धु का गुण गाते थे। प्रेम से उनकी ओर देखने पर पक्षी पुलकित होते थे। श्री-कर फैलाया तो पुष्प गिर पड़े। उनको उसने मेरे अंचल में बांध दिया। कुरंग (हिरण) और मोर युगल होकर जल्दी बन्धु से मिले। उनके साथ कितनी ही प्रीति की, मानो वे परिचित मित्र थे। वे क्या कहते थे और बन्धु क्या कहता था? हे सखि, वह भाषा मैं नहीं जानती थी।* सब मिलकर आनन्द-मग्न होते थे और बन्धु की आंखों से प्रेमाश्रु गिरते थे। एक लवङ्ग की लता को हाथ में रखकर उसको सूंघा। और कहने लगा—'हे प्रिया, इस लवङ्ग लता ने अपनी जाति-कुल डुबोया।' वह किसी को तो चुम्बन, किसी को आलिंगन और किसी के शिर में हाथ रखता था।

---

* विविधाद्भुतभाषावित् = 'विविधाद्भुतभाषावित् स प्रोक्तो यस्तु कोविदः। नानादेश्यासु भाषासु संस्कृते प्राकृतेषु च॥ यथा—
व्रजयुवतिषु शौरिः शौरसेनीं सुरेन्द्रे प्रणतशिरसि शौरीं भारतीमातनोति।
अहह पशुषु कीरेष्वप्यपभ्रंशरूपां कथमजनि विदग्धः सर्वभाषाऽवलीषु॥
(म० र० सिं०)

मेरा नाथ प्रत्येक से वन में सम्भाषण करता जाता था। (वह) सब का सुहृद,* सब का भला चाहने वाला और सब से उसकी प्रीति थी। वह सब का प्राण÷ और नयनों का आनन्द था। न जाने क्या मोहन मन्त्र जानता था। वृक्ष के नीचे एक नये पत्ते को गिरा देख कर मुख विरस करके कहने लगा, 'नये पत्ते को तोड़कर फैंकने से क्या सुख मिला होगा!' मन्द वायु बह रहा था और उसका चूडा झुक रहा था और जूडा में वकुल का फूल था। कहने लगा, 'हे सजनी, दुःखिनी को संसार और कुल छोड़कर क्या प्राप्त होता है?' ऊंची डाल को झुकाकर कहा, 'हे प्रिये फूल सूंघ।' मैं आनन्दित होकर खड़ी थी और सुख से बन्धु का मुख देख रही थी।

बन्धु कहने लगा—'हे मोहिनी, मेरे काले मुख को क्या देखती है! तेरी आंखें प्रेम से अंधी हो रही हैं। तुझ-सी सुन्दरी मुझे

---

* सुहृदः सर्वभूतानाम् ॥

÷ एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति,
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥
(कठ० १२)

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ॥ (गीता)

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥
(श्वेत० उप०)

इतना प्यार करती है, यह मेरा बड़ा भाग्य है।' माधवी कुञ्ज के ऊपर फूल फूले हुए थे और लता से शीतल छाया हो रही थी। हम दोनों बैठे। (बन्धु कहने लगा,) 'मैं तेरा मुख देखकर हृदय शीतल करता हूं।' उसने मुझे बांई ओर बिठलाया और अङ्ग स्पर्श किया। मैं सुख से थर २ कांपने लगी। मेरे मुख को देखकर और गदगद होकर प्राणेश्वर गीत गाने लगा।

रागिनी सिन्धु

प्रेम सरोवर में सोने के कमल जैसी हे प्रिय, तू मेरी है। तेरी रूप-माधुरी को मैं नयन भरकर देखता हूं। मधु भरे हुए टलमल करने वाली प्रेम की लहरें प्रेम का प्लावन उठा रही हैं। मैं डूब रहा हूं तैरना नहीं जानता हूं। तू सदा मेरी है* और मैं तेरा हूं।

---

* त एवाहमहो देवाः अहमेव च ते मताः।
नात्र कश्चन सन्देहः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥७४ (शक्ति गी०)

न पारयेहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधा युषापि.वः (?)
या मां भजन्दुर्जरगेहश्रङ्खलाः संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधु नः॥
(भा० १०-३२-१२)

अहं भक्तपराधीनः स्वस्वतन्त्र इव द्विजः
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥
नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।
श्रियं चाऽत्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा ॥

तब मैं उठ खड़ी हुई और गले में वस्त्र डाल कर और दो हाथ जोड़कर कहने लगीः—मैं गम्भीर और लज्जाशील वाला थी। मुझे कहां ले जारहे हो। मेरी लज्जा और ज्ञान खो गया है।+ मैं मदोन्मत्त-सी दिशा-विदिशा नहीं जानती। सच सच कहो, क्या तुम मुझे इतना प्यार करते हो? और क्यों, भला सुनूं तो सही। क्या देकर तुम को प्रसन्न कर सकती हूं और प्रसन्न न करने पर क्या दण्ड होगा? इस समय तो इतना प्रेम करते हो, क्या पीछे छोड़ दोगे? मुझे अश्रुजल दिखलाया। मैं विस्मित हुई। तुम दीन हीन के समान क्यों रोते हो। तुम तो तीन लोक के स्वामी हो।

नागर ने गद्गद होकर कहाः—हे प्रिये, सुन मैं तुझ से अपने मन की व्यथा कहता हूं। मुझे कहने में लज्जा आती है, और तू बार-बार यही पूछती है। अब लाज छोड़कर अपनी निज कथा कहता हूं। ज्ञानी लोग मुझे निर्गुण जानते हैं और तो भी*

मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शिनः।
वशे कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा॥ (भा०)

\+ नदति क्वचिदुत्कंठो विलज्जो नृत्यति क्वचित्।
क्वचित्तद्भावनायुक्तस्तन्मयोऽनुचकार ह॥ (दें० भी०)

* परम अकिंचन प्रिय हरि केरे॥ (तु० रा० बा०)

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।
मामेव दयितं प्रेष्ठमात्मानं मनसा गताः॥

मेरे लिये रोते हैं और मेरे लिये सर्वत्यागी होते हैं। इसीलिये मैं तेरे साथ रोता हूं। हे प्रिये, यदि वे मेरा नाम सुन पाते हैं तो प्रेम से रो* उठते हैं और उनके दोनों आंखों से धारा बहती है— मैं कैसे स्थिर रह सकता हूं? वे संसार में दुःख पाते हैं परन्तु मुझे दोष न देकर सब दोष अपने शिर+ लेते हैं—इसी कारण मैं

ये त्यक्तलोकधर्म्मांश्च मदर्थे तान् विभर्म्यहम्।
मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः॥
स्मरन्त्योऽङ्ग विमुह्यन्ति विरहोत्कंठविह्वलाः।
धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान्कथंचन॥
प्रत्यागमनसन्देशैर्वल्लव्यो मे मदात्मिकाः।

(दै० मी० पृ० ५६)

* नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामस्मरणे भविष्यति॥
मम गुन गावत पुलकि शरीरा, गद्गद गिरा नयन बह नीरा॥
कामादिक मद भंजन जाके, तात निरन्तर बस मैं ताके॥१२

(तु० रा० अर०)

+ निजांगमपि या गोप्यो ममेति समुपासते।
ताभ्यः परं न मे पार्थ निगूढं प्रेमभाजनम्॥
वचन कर्म मन मोर गति, भजन करै निष्काम।
तिन के हृदय कमल महं करौं सदा विश्राम॥२४

(तु० रा० अ०)

तेरी भक्ति देखकर रोता हूं। मैंने कितना दुःख दिया! मैंने तुझे पैरों से ठुकराया तो भी तू दौड़कर मेरे समीप आई। हे प्रिय, तू अदोषदर्शी है और रात दिन मेरे ही लिये रोती है। तेरे आंखों के जल को देखकर मैं स्थिर नहीं रह सकता और रोकर तेरे दुःख का भागी होता हूं। इसी कारण हे प्रिय, एकान्त में बैठकर, तेरे रूप गुणों को सोचकर, और ऋणशोधन न कर सकने पर, नयन-वारि से अंग स्निग्ध करता हूं।'

नागर ने फिर कहा—'जहां प्रीति वहां नयन वारि। उसी जल से प्रीति का अंकुर बढ़ता* है। मेरे समान जब तू प्रेम में डूबेगी तो रात दिन ऐसे ही रोवेगी। आंखों का जल गंगा और यमुना है। इनमें स्नान करने से त्रिताप नहीं रहता है। प्रिया के दुःख से मेरा प्राण रोता है और मैं एकान्त में बैठकर रोता हूं।'

ऐसा कह कर बन्धु, मैं कारण नहीं जानती, अकस्मात अदर्शन हो गया। बन्धु के अदर्शन होते ही मैं भूमि में गिर पड़ी और तुमने आकर मुझे जगाया।

सहाया गुरवः शिष्या भुजिष्या बान्धवाः स्त्रियः।
सत्यं वदामि ते पार्थ गोपाः किम्मे भवन्ति न॥
मन्माहात्म्यं मत्सपर्यां मच्छ्रद्धां मन्मनोगतम्।
जानन्ति गोपिकाः पार्थ नान्ये जानन्ति तत्वतः॥

(गोपीप्रेमामृत)

* नयनन जल सींच सींच प्रेम बेल बोई॥

सब रमणियों का साधु के संग मिलन

(प्रेम*)

वे सब रमणियां श्रीकृष्ण के प्रेम की भिखारी निंकुज में बैठी हुई हैं।

❀ ❀ ❀

इस समय वह महातपधारी साधु उस ही मार्ग से चला जा रहा था। उसने कौपीन पहिन रक्खी थी, माथा मुण्डित और अङ्ग में हरि नाम लिखा हुआ था। उसने देखा, अपने रूप से उजेला करती हुई सब बाला निंकुज के नीचे बैठी हुई हैं। उनका मुख-कमल निर्मल, सरल और आंखें टलमलाती हुई थीं। वे सब साधु को देखकर उठीं और उसके चरणों में प्रणाम किया

प्रेम

* गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्द्धमान-

मवच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् ॥ (भ० सू०)

और पूछने लगीं कि 'हम कृष्ण को खोकर वन में फिर रही हैं। साधु ! बतला दीजिये, हम किस उपाय से उसको* पावेंगी ?' उनके मुख को देखकर साधु की आंखों में आंसू आ गये और वह दुःख से कहने लगा—'हे अबोधिनियो ! सुनो तुम्हें कृष्ण कहां मिलेगा। हजारों वर्ष तपस्या करने पर भी जो ध्यान में भी÷ नहीं मिलता, निंकुज में बैठकर और हार बनाकर तुम उसको कैसे पाओगी ?' कुल-कामिनी ने कहा—'हम अच्छी प्रकार से जानती हैं कि कृष्ण एक ऐसी वस्तु है, जो सेंत-मेंत नहीं मिल सकती।

---

* अधरबिंबविडम्बितविद्रुमम्। मधुरवेणुनिनादविनोदितम्॥
कमलकोमलनीलमुखाम्बुजं कमपि गोपकुमारमुपास्महे ॥१
श्यामलं विपिनकेलिलंपटं कोमलं कमलपत्रलोचनम्।
कामदं व्रजविलासिनीदृशां शीतलं मतिहरं भजामहे ॥२
ईषदंकुरितदंतकुण्डलं भूषणं भुवनमंगलश्रियम्।
घोपसौरभमनोहरं हरेर्वपमेव मृगयामहे वयम्॥
(गर्ग० सं० अस्व १० अ० ४५)

÷ मुनयः पदवीं यस्य निःसंगेनोरुजन्मभिः।
न विदु र्मृगयन्तोपि तीव्रयोगसमाधिना॥
(स्क० ४-८-३१)

जन्म जन्म मुनि यतन करहीं, अन्त राम कहिं आवत नाहीं॥
(रामायण)

आप जैसा कहेंगे,* हम सब कृष्ण-प्राप्ति के लिये वैसा ही करेंगी। यहां तक कि प्राण भी दे देंगी। साधु ने कहा—'उपवास करके शरीर को सुखाओ, तब कृष्ण-कृपा पाओगी।'× जब तुम्हारा शरीर सूखेगा, तब क्रम से उसकी कृपा बढ़ेगी।'

* * *

सब बाला अवाक् होकर एक-दूसरी का मुख देखने लगीं। हम दुःख पावें और कृष्ण सुखी होवें, यह तो कभी हो नहीं सकता है। दुःख की चर्चा सुनते ही वे तो रो-रोकर अपने को ही भूल जाते हैं। हम दुःख लेवें और उनको रुलावें, ऐसे भजन की धारणा हम कैसे कर सकती हैं?

* * *

साधु ने हंसकर कहाः—'केशों की ममता छोड़नी होगी और शिर मुण्डाना होगा,+ तब तो कृष्ण पिता प्रसन्न होंगे।'

* * *

---

* नूनं भवान् भगवतो योऽङ्गजः परमेष्ठिनः।
वितुदन्नटते वीणां हितार्थं जगतोऽर्कवत्॥ (भा० ४-८-३१)

× स्नात्वाऽनुसवनं तस्मिन्कालिंद्याः सलिले शिवे
कृत्वोचितानि निवसन्नात्मनः कल्पितासनः॥४२
प्राणायामेन त्रिवृता प्राणेन्द्रियमनोमलं
शनै र्व्युदस्याभिध्यायेन्मनसा गुरुणां गुरुम्॥ (भा० ४४-४-४)

+ तं होवाच प्रजापतिस्तव पुत्रान्भ्रातृन्बन्ध्वादीञ्छिखां यज्ञोपवीतं स्वाध्यायं भूर्लोकं महर्लोकं भुवर्लोकं स्वर्लोकं महर्लोकं जनलोकं तपो-

लोकं सत्यलोकं पातालं तलातलं वितलं सुतलं रसातलं महातलं पातालं ब्रह्मांडं विसृजेत् ।

(आरुणिक उप०)

उद्धवः—

आयो ह्यां पठायो मैं मुकुन्द को तिहारे हेत
हैं आनन्दकंद वे न नन्दनन्दन मानवी ।
लोक लोक में प्रकाश जिनको विभासित रह्यो
तह्यां शोक ओक को विलास नाहिं आनवी ॥
जा को है न रूप रेख आंखिन अदेख भेप ता तैं
क्यों विशेष हिये मोह छोह ठानवी ।
आवा नहि गोन जा में मौन धारि धारो ताहि
पंच भूत मौन माहि साधि पौन जानवी ॥२४८

(दीनदयाल)

❀ ❀ ❀

जनम को पत्र है हमारे कर प्यारे ऊधो
जानैं हम जशुदा के वारे गुन नाम को ।
लाखन उपाय दही माखन चुराय प्रात
चाखन कै भाजि जात हुते नन्द धाम को ।
सोदर हली के वे दामोदर कहाये इत
आठों जाम मान हित पूजैं तिहि दाम को ॥
अगुन अनामी अज कहो किमि बार बार
अहोहो लबार कहा वंचो व्रज वाम को ॥२५०

सब बाला यह सुनकर चौंकीं और एक-दूसरे का मुख देखने लगीं। उनमें से रसरङ्गिनी ने कहा—'हे साधु, यह कैसी बात सुनाई ? यदि हम केश मुंडवा दें और वेणी न बांधें, तो जूड़ा बांधकर चम्पा किस में लगावें ? मालती की मनोहर माला गूंथ कर किस में लपेटें ? इस भङ्गिम वेणी को देखकर रसिक-शेखर प्रसन्न होते हैं। हम उसके मन को खूब जानती हैं। वह जितना रस को देखकर प्रसन्न होते हैं,* उतना उपवास से नहीं होते।'

कङ्गालिनी ने कहा—'अश्रु-जल से हम उसके अरुण चरणों को धोकर केशों से पोंछती हैं। जब केश मुण्डा देंगी, तो किस से पोंछेगी ?'

कुल-कामिनी ने कहाः—'हम योग-याग करके उसको क्या

---

* रास को विलास मृदुहासि की सुरति जब
पहै तब मोहन सों क्यों न मन उचाटि हैं।
चांदनी सरद की बढ़ाय है दरद देह
सुधि की करद लगे क्यों न उर फाटि है॥
बैठि वनवेली बीच मेली भुजलता श्याम
ताहि कंठहेली कहों सेली किमि ठाटि हैं।
धारि जपमाला को विसारि नन्दलाल ऊधो
बाला मृगछाला ओढ़ि कैसे दिन काटि हैं॥
(दीनदयाल)

प्रसन्न करें,* वह तो हमारा ही है, पराया नहीं है! वह तो हमारा स्वामी है, हम तो स्नेह से सेवा करके उसे प्रसन्न करेंगी।'

---

* गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
सम्भवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥ (गीता ९-१८)

आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किं,
नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
अंतर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किं,
नान्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥

यो ज्ञाननिष्ठातिविरागमाश्रितः श्रीकृष्णभक्तस्त्वनपेक्षकोपि यः।
तपोवनं वापि गृहं गृहं वनं स्पृशन्ति तं ते त्रिगुणा न सर्वतः॥
(ग० स० वि० ७ अ० ३३)

नाहिन रह्यो हिय में ठौर।
नन्दनन्दन अछत कैसे आनिये उर ओर॥
चलत चितवत दिवस जागत सुपन सोवत रात।
हृदय तें वह श्याम मूरति छिन न इत उत जात॥
(सूरदास)

सरग न चाहैं, अपवरग न चाहैं सुनो
भुक्ति मुक्ति दोऊ सौं विरक्ति उर आने हम।
कहै रतनाकर तिहारे जोग रोग माहिं
तन मन सांसन की ,सांसलि प्रमानैं हम॥
एक ब्रजचन्द्र कृपा मन्द मुसकानिहीं मैं
लोक परलोक कौ अनन्द जिय जानैं हग।

प्रेमतरङ्गिनी ने कहाः—'जब विरह से मैं बड़ा दुःख पाती हूं तब केशों को खोल कर देखती हूं। वे मेरे केश ही कृष्ण की स्मृति* दिलाते हैं। हे सखी मैं तो नहीं मुंडा सकती हूं।'

सजलनयना ने कहा—'केश मुंडा, कौपीन पहिनने और दुःखिनी का वेश धरने से तो कृष्णचन्द्र व्याकुल होकर रोवेंगे। मैं उनको भली प्रकार जानती हूं।'

रसरङ्गिनी ने कहाः—'हे साधु, सुनो, हमें सन्देह होता है, तुम कृष्ण किसे कहते हो ? वह कृष्ण ही कौन है और उसका तुम से क्या सम्बन्ध है ?'

साधु ने कहाः—'हे अबोधिनियो, कृष्ण दो नहीं हैं, वे हैं सर्वेश्वर। वे यदि तुष्ट हों तो सम्पत्ति और रूठने पर विपत्ति ×

जाके या वियोग दुखहू में सुख ऐसो कछू
जाहि पाइ ब्रह्म सुखहू में दुख मानें हम ॥

(रतनाकर क० ६६१ भा० ७-७)

* रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद्गृहीत्वा।
न छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोभिषेकम् ॥

× कांक्षन्तः कर्म्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्म्मजा ॥ (गीता ४-१२)

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ (गी० ११-१६)

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ (गी० ११-१८)

वे सर्वोपरि दण्डधर हैं, उनको प्रसन्न करने में कितना दुःख मिलता है, तो भी तो वे प्रसन्न नहीं किये जा सकते हैं। उनका नियम कहीं भंग न हो, कहकर मैं तो सोच कर-कर मरता हूं।'

* * *

साधु का वचन सुनकर सब प्रफुल्ल हुईं और विनय से कहने लगीं—'तुम्हारे वचनों से तो प्राण निकल गये थे। अब समझी हैं, तो प्राण लौटे हैं। जिनकी बातें तुम ने इस समय कहीं हैं, वे कोई होवें,* हमारे प्राणनाथ तो नहीं हैं। हमारे पति जो

तद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनन्तकम्।
अतो मां सुदुराराध्यं हित्वाऽन्यान्भजते जनः॥

(स्क० १०-८८ १०)

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

(गीता १६-२३)

* नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुं स्वाम्॥

(कठ०)

सो जाने जेहि देहु जनाई, जानत तुमहिं तुमहि हो जाई॥
तुमरी कृपा तुमहि रघुनन्दन, जानत भक्त भक्त उर चन्दन॥

(तु० रा०)

श्रीकृष्ण हैं, वे तो न दण्डधारी हैं,※ न वरदाता हैं, वे हमारे निज पुरुष हैं, हम सब उनके परिवार हैं। जो भी उनका है सब हमारा÷ है। किसलिये हम उनसे कुछ चाहें? भण्डार की चाबी तो हमारे ही× हाथ में है। दण्ड की बातें सुनकर तो भय होता है। हम तो सब उस ही के हैं। वह दण्ड क्यों देने लगा? यदि अत्याचार करके रोग हो जावे तो जो अपना होता है, वह कड़वी औषध खिलाता है।+ कभी घाव में छुरी चलाता है। इसको कौन

※ नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥

(गी० ५-१५)

÷ यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वञ्च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गी० ६-३०)

× यमादिभिर्योगपथैः कामलोभहतो मुहुः।
मुकुन्दसेवया यद्वत्तथात्माद्धा न शाम्यति॥ (भ० र०)
अद्धा = साक्षात्।
बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः॥

(गी० ६-६)

+ यदपि प्रथम दुःख पावै, रोवै बाल अधीर।
व्याधिनाश हित जननि गनइ न सो शिशु पीर॥१०५

(तु० रा० उ०)

दण्ड× कहता है ? वह प्राणनाथ तो केवल+ मंगलमय है। हम तो उसके ऊपर कितने ही उत्पात करते हैं। यदि अपना पुरुष शासन न करे, तो कहो कौन करेगा ? यदि प्राणनाथ स्नेह से दण्ड करे, तो वह तो दण्ड नहीं, परम प्रसाद है। और सुनोः—

'तुम पुरुष* हो, राज-सभा में जाते हो, स्वार्थ के लिये उसको

× दंडेनैव प्रजाः सर्वाः कर्तुं धर्मपरायणाः।
यत्नो यद्यपि वर्तेत निःसन्देहं शुभावहः ॥८४
किं त्वहो येन यत्नेन प्रजाः सर्वाः कदाचन।
दंडार्हा एव नैव स्युः स यत्नो ज्ञानसन्निधौ ॥८५
प्रजाकल्याणवृद्ध्यर्थमधिकं स्यात्सुखप्रदः।
नास्ति कोऽप्यत्र संदेहः सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥८६

(शम्भु गी० ७८)

+ मंगलायतनो हरिः॥

* पुरुष = पुरुषार्थकारी।
उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ (गी०)
जगति पुरुषकारकारणेस्मिन् कुरु रघुनाथ चिरं यथाप्रयत्नम्।
व्रजसि तरुसरीसृपाभिधानं सुभग यथा न दशामशंक एव॥

(यो० वा० २·७·३२)

श्रवणं मननं चैव निदिध्यासनमेव च
पुरुषार्थास्त्रिविधाः प्रोक्ता एव एव महर्षयः।

कर देते हो। परन्तु हमको कर देना हो तो निश्चय हमारे पति देवेंगे। क्या दण्ड क्या पुरस्कार, इसको पति* ही जानें, हमको कोई अधिकार नहीं है।'

मुमुक्षूणां त्रिभिः सम्यक् मम सामीप्यलब्धये
पुरुषार्थैरुपेतानमेतैः साधनशैलयः ॥

(धीशगीता ध० द० २०)

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

(गी० ६-२२)

यत्पादपंकजपलाशविलासभक्त्या
कर्म्माशयं ग्रथितमुद्ग्रथयन्ति संतः ।
तद्वन्नरिक्तमतयो यतयोपि रुद्धस्रोतो-
गणास्तमरणं भज वासुदेवम् ॥ (भा० ४-२२-३६)

कृच्छ्रो महानिह भवार्णव मप्लवेशां
षड्वर्ग न क्रमसुखेन तितीरिपन्ति ।
तत्वं हरे भगवतो भजनीयमंघ्रि
कृत्वोडुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम् ॥

(भा० ४-२२-४१)

* श्रियः पति र्यज्ञपतिः प्रजापति र्धियांपति र्लोकपति र्धरापतिः ।
पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णिसात्वतां प्रसीदतां मे भगवान्सतां पतिः ॥

(भा० २-४-२०)

'यदि हमारा उस राजा से कोई काम भी हो, तो हम तो रमणी* हैं, हमारा प्राणनाथ जाने । हमने तो जो कुछ भी देना था, वह अपने बन्धु को दे दिया है । देह, प्राण, मन सब ही कुछ+ उस को दे दिया है । उस कृष्ण की ही हम सेवा नहीं कर सकतीं, राज सभा में जाने से तो भय से ही मर जावेंगी । पुरस्कार के

---

* पुरुष (पुल्लिंग)
पुरुषार्थ (कर्म्मयोग और सांख्य)
भक्ति (शरणागति)
न साधयति मां योगो न सांख्यो धर्म्म उद्धव,
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्ति र्ममोर्जिता ॥
(भा० ११-१४-१६)

\+ चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥ (गी० १८-५७)
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोसि मे ॥ (गी० १८-६५)
चिन्तां कुर्यान्न रक्षाये विक्रीतस्य यथा पशोः ।
तथार्पयन् हरौ देहं विरमेदस्य रक्षणात् ॥
(भ० र० सिं० ६६ पृ०)
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥
(गीता १८-६६)

लिये राज सभा में जावें ! हम तो रमणी हैं, स्तव नहीं जानतीं। तुम तो साधु ऋषि हो, अथवा जो होओ। हम तुम्हारे चरणों में क्या कह सकती हैं ? हम तो संसारी हैं,* पति का घर सम्हालती

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।

मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

(गीता ३-४२)

सः = पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः॥

* प्रकृति संसार से बाहर नहीं जा सकती, स्त्री-रूपा पुरुष के आधीन है। पुरुष अचिन्त्य, अप्रमेय ('indefinable) है, उससे अभिन्न होने से प्रकृति श्रुति में अनिर्वचनीय कही गई है। आब्रह्मस्तम्ब-पर्यन्त सब प्रकृति हैं। जो प्रकृति से पर अथवा जिसके अन्तर्गत प्रकृति है वा जो प्रकृति का आधार है, वह पुरुष है। इस ही आधार पर मेरी अल्प बुद्धि में वैष्णव सम्प्रदाय वाले अपने को स्त्री-बुद्धि से भावना करते हैं।

श्री भगवान् ने गीता में कहा है—

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥ (८-१६)

मामुपेत्य कैसे, किस द्वारा ?

किस द्वारा ? एकमात्र उपाय भक्ति अथवा कहिये राधा। रध 'अर्चने' (पाणिनि)। जिस प्रकार कपूर, लवण, मिश्री इत्यादि रूपवान् तो हैं, परन्तु सर्वतोभाव से रस ही हैं, उसी प्रकार भक्ति द्वारा भगवान् प्राप्त हो सकते हैं, 'नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय' !

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ (गी० ६-२२)

यथा ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ (गी० ६-४)

भक्त्युपहृतमश्नामि ॥ (६-२६)

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ॥ (१०-१०)

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ (११-५४)

१२वां अध्याय पूर्ण, तथा गीता के प्रायः सब ही अध्यायों में एक ही भक्तिमार्ग मुख्य है ।

स वै पुंसां परो धर्म्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥ (भ० र० पृ० ६०)

स्त्रीशूद्रादय एव स्युर्नाम्नाऽऽराधनतत्पराः ।
न पूजनैर्न यजनैर्न व्रतैरपि माधवः ॥५०

तुष्यते केवलं भक्तिप्रियोसौ समुदाहृतः ।
स्त्रीणां पतिव्रतानान्तु पतिरेव हि दैवतम् ॥५१

स तु पूज्यो विष्णुभक्त्या मनोवाक्कायकर्मभिः ।
कर्तव्यश्रद्धया विष्णोश्चिन्तयित्वा पतिं हृदि ॥५२

(पद्म पु० पा० ख० अ० ८६)

भक्ति बनाम माया

ज्ञान विराग योग विज्ञाना, ए सब पुरुष सुनहु हरियाना ॥१५
पुरुष प्रताप प्रबल सब भांति, अबला अबल सहज जड़ जाति॥
पुरुष त्यागि सक नारि कहं, जो विरक्त मतिधीर ।
न तु कामी जो विषय बस, विमुख जे पद रघुवीर ॥१७
सोउ मुनि ज्ञान निधान मृगनयनी विधि मुख निरखि ।
विकल होंहि हरियान नारि विष्णु माया प्रगट ॥१६

इहां न पक्षपात कछु राखौं, वेद पुरान संत मत भाखौं ॥१
मोहन नारि नारि के रूपा, पन्नगारि यह नीति अनूपा ॥२
माया भक्ति सुनहू प्रभु दोऊ, नारि वर्ग जाने सब कोऊ ॥३
पुनि रघुवीरहिं भक्ति पियारी, माया खलु नर्तकी विचारी ॥४
भक्तिहिं सानुकूल रघुराया, ता तें तेहि डरपति अति माया ॥५
राम भक्ति निरुपम निरुपाधी, बसै जासु उर सदा अबाधी ॥६
तेहि विलोकि माया सकुचाई, करि न सकै कछु निज प्रभुताई॥७
अस विचारि जो मुनि विज्ञानी, याचहिं भक्ति सकल गुनखानी॥८
यह रहस्य रघुनाथ कर वेगि न जाने कोइ ।
जाने ते रघुपति कृपा, सपनेहु मोह न होई ॥१८०

भक्ति बनाम ज्ञान

कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन विवेक ।
होइ घुनाक्षर न्याय जो, पुनि प्रत्यूह अनेक ॥१८६
ज्ञानक पंथ कृपान कै धारा, परत खगेश न लागै वारा ॥१
जो निर्विघ्न पंथ निर्वहई, सो कैवल्य परम पद लहई ॥२

हैं, संसार के बाहर तो जा ही नहीं सकतीं हैं। हम को कृष्ण प्राण-नाथ छोड़ गये हैं। उनही को ढूंढ़ती हुई वन में फिरती हैं। इस ही वन में कहीं छिपे हुए हैं, यदि तुमने कहीं देखे हों तो कृपा करके बतलाओ।'

उस समय — बालाओं को निर्मल और सरल देखकर साधु के नयनों से जल बहने लगा और उसने कहा, 'हे बालाओ, मैं निवेदन करता हूं। आपके वचनों को मैं भली भांति नहीं समझा हूं। तुम्हारे पति का रूप कैसा है, मुझे उसका स्वरूप समझा कर कहो।' इस बात को सुनकर बालाओं का मुख प्रसन्न हो गया और वे आनन्द में मग्न हो गईं।

अति दुर्लभ कैवल्य परमपद, संत पुरान निगम आगम वद ॥३
राम भजन सोइ मुक्ति गुसाईं, अन इच्छित आवे वरि आईं॥४
जिमि थल बिनु जल रह न सकाई, कोटि भांति किउ करै उपाई
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई, रहि न सकै हरि भक्ति विहाई ॥६
अस विचारि हरि भक्ति सयाने, मुक्ति निरादरि भक्ति लुभाने ॥७
भक्ति करत बिनु जतन प्रयासा, संसृति मूल अविद्या नासा ॥८
भोजन करिय तृप्ति हित लागी, जिमि सो असन पचवै जठरागी ९
अस हरि भक्ति सुगम सुखदाई, को अस मूढ न जाहि सुहाई॥१०
सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम पद पङ्कज, अस सिद्धान्त विचारि ॥१८७

(तुलसी० रा०)

रसरङ्गिनी ने कहाः— मेरा पति वनमाली है। उसके नयन कमल जैसे हैं, और सुन्दर चंद्रमा* जैसा मुख है। वही, वही, वही, उसी ने तो हमारा कुल डुबोया, कह कर सब ने ताली बजाई। 'हे साधु, सुनो, उसके गुण अगणित हैं, उनको कैसे× कहें।'

"कृतार्थ कर दिया", कह कर कङ्गालिनी ने रङ्गिनी के चरण पकड़ लिये। सजलनयना गुण बतलाने लगी तो उसका कण्ठ-रोध हो गया और प्रेमतरङ्गिनी उमको थाम कर बार-बार उसका मुख चूमने लगी। कुलबाला ने उठ कर कहा, "सुनो, सखियो एक वेर नाच+ कर लें।'

---

* मुखं चन्द्राकारं करभनिभमूरुद्वयमिदं
भुजौ स्तम्भारम्भौ सरसिजवरेण्यं करयुगम्।
कपाटाभं वक्षःस्थलमविरलं श्रोणिफलकं
परिक्षामो मध्यः स्फुरति मुरहन्तुर्मधुरिमा ॥
(भ० र० सिं०)

× यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् ॥

\+ ललितगतिविलासवल्गुहासप्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमाना।
कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः प्रकृतिमगन्किल यस्य गोपवध्वः ॥
(भीष्म)

यो नृत्यति प्रहृष्टात्मा भावैर्बहुसुभक्तितः।
स निर्दहति पापानि मन्वन्तरशतेष्वपि ॥ (भ० र० सिं०)

वे सब कर-तालि देकर 'हरि बोल' २ कहने लगीं।

जितनी भी सखियां थीं, अपने दुःख को भूलकर कर-तालि बजा कर नाचने लगीं। उनके संग वह साधु भी नाचने लगा और उसके भव-बन्ध छुट* गये। और बलरामदास लिख-लिख कर गौराङ्ग की खोज करता है।

नृत्यतां श्रीपतेरग्रे तालिकावादनैर्भृशम्।
उड्डीयन्ते शरीरस्थाः सर्वे पातकपक्षिणः॥

(हरिभक्तिविलास)

कृष्णशरच्चन्द्रमयं कौमुदीकुमुदाकरम्।
जगौ गोपीजनस्त्वेकं कृष्णनाम पुनः पुनः॥

(विष्णुपुराणम्)

नैकात्मतां ते स्पृहयन्ति केचित्। मत्पादसेवाभिरता मदीहाः।
योन्योन्यतो भागवता प्रसज्य सभाजयन्ते मम पौरुषाणि॥

(भ० र० सिं०)

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद् भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात्।
क उत्तमश्लोकगुणाऽनुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात्॥
शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः॥

(दै० मी० पृ० २२५)

* प्रेम प्रेम तें होय प्रेम, तें पर है जीये।
प्रेम बंधो संसार, प्रेम परमारथ लहिये॥

एकै निश्चय प्रेम को, जीवन मुक्ति रसाल।
सांचो निश्चय प्रेम को, जिहिरे मिले गुपाल ॥
ऊधो कहि सतभाय, न्याय तुमरे मुख सांचे।
योग प्रेम रस कथा, कहो कंचन की कांचे ॥
जाके पर है हूजिये, गहिये सोई नेम।
मधुप हमारी सौं कहो, योग भलो या प्रेम ॥
सुनि गोपी के बैन, नेम ऊधो के भूले।
गावत गुन गोपाल, फिरत कुंजन में फूले ॥
खिन गोपी के पाप डोरैं, धन्य सोइ है प्रेम।
धाइ धार द्रुम भेंट ही, ऊधो छा के प्रेम ॥
धनि गोपी धनि ग्वाल, धन्य सुरभी वनचारी।
धनि यह पावन भूमि, जहां गोविन्द अभिसारी ॥
उपदेसन आयेहु ते, मोहि भयो उपदेश।
ऊधो यदुपति पै चले, धरे गोप को वेष ॥

(क० कौ०)

*   *   *

सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन् कुसुमितान् द्रुमान्।
कृष्णां संस्मारयन् रेमे हरिदासो व्रजौकसाम् ॥२६
वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥६३

(भा० १०-४०)

तरङ्गिनी कहने लगीः—कृष्ण बड़ा ही चञ्चल है*, किसी के वश नहीं होता। वह बालक वन्धु अत्याचार करता है। वह चपल कितने ही अत्याचार करे, उसके लिये प्राणी और भी

---

* निगमद्रुमे मृगय मा वृन्दाविपिने द्रुमे द्रुमे पश्य।
यद् व्रजवनिता भूत्वा श्रुतिभिरिहैवावलोकितं ब्रह्म॥
(भा० भ्रमरगीत टीका श्लोक ६० अ० ४१)

पायो नहिं सोध कंहू निगम पुराननि मैं
जाकी सुधि साधि सुधी रहे हारि के।
संजमादि साधनि कै सिद्ध जपैं नित्त जाके
हित जोगी चित राखत सुधारि कै॥
सोई उरझनो है भगति जाल दीनद्याल
देखिये निहार कहै देत है पुकारि कै।
पसुन के संग ह्वै उमंग वन बीच रमै
अर्थ उपनिषद को कण्ठ गहै ग्वारिकै॥१०२
(दीनदयाल)

परमिममुपदेशमाद्रियध्वं, निगमवनेषु नितान्तखेदखिन्नाः।
वितनुत भवनेषु वल्लवीनामुपनिषदर्थमुलूखले निबद्धम्॥
(क० कृ० पृ० ४१६)

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्वतः।
ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विपते तदनन्तरम्॥
(गी० १८-४८)

लालायित होते हैं। मैं तो गम्भीर थी, उसने मुझे पागल बना डाला। मैंने सब-कुछ दिया, फिर भी चातुरी करता है। तिस पर भी उसके लिये प्राण लालायित होते हैं। अब इस काले को सुन्दरी लाकर बांधूंगी और प्रेम-डोर मे बांधकर संसारी बनाऊंगी, तब इसकी चंचल प्रकृति छुटाऊंगी।

सजलनयना ने कहाः— 'हे सखी, त्रिभुवन में वह जन सब से उत्तम* है, उसको क्या देकर प्रसन्न करें? अपना अंग दिया, उससे यह बाध्य नहीं हुआ, क्योंकि यह अग तो मलिन है और वह सुनिर्मल है। कोई सर्वाङ्गसुन्दरी× मिले, जो सब प्रकार उसके योग्य हो, निर्म्मला, रसिका, प्रीति की खान हो, लज्जावती, सरला और भुवनमोहनी हो, तो ऐसा रत्न श्री कृष्णचन्द्र को अर्पण किया जाय, तभी उसका नयन-जल बंद हो। ऐसी रूप-

---

* उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥१७
यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ (गी० १५-१८)

× लावण्यसार-रससार-सुखैकसार-
कारुण्यसार-मधुरच्छविरूपसारे।
वैदग्ध्यसार-रतिकेलिविलाससारे
राधाभिधे मम मनोऽखिलसारसारे ॥

(श्री राधारस सुधानिधि)

नागरी को मनाकर लाया जाय, तो श्री गोलोक के हरि को बांधा*
जा सकता है।

उस समय श्री राधा× को सखीगण आवाहन करती हैं+—

'हे कृष्ण-मनोहरा,÷ तुम कहां हो (ध्रु०)? हे भुवन-

---

* आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मासि राधिका।
तस्या दास्यप्रभावेन विरहोऽस्मान्न संस्पृशेत्॥ (स्क० पु०)

ब्रह्म मैं ढूंढ्यो पुरानन वेदन भेद सुन्यो चित चौगुने चायन।
देख्यौ सुन्यौ न कहूं कबहूं वह कैसो सरूप औ कैसे सुभायन॥
हेरत हेरत हारि फिर्यो रसखानि बतायो न लोग-लुगायन।
देख्यो कहूं वह कुंज कुटीरन बैठ्यो पलोटत राधिका पायन॥
(रसखान.क० पृ० ४१६ कृ०)

जिन बांध्यो सुर असुर नाग नर प्रबल कर्म की डोरी।
सोइ अवछिन्न ब्रह्म जसुमति हटि बांध्यो सकत न छोरी॥ (ऐ)

× राधयत्याराधयत्याराध्यते वा राधा।

\+ ततः पदं तत् परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेवमाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसिता पुराणी॥
(गीता ४-१५)

÷ आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ।
आत्मारामस्तथा प्राज्ञैः प्रोच्यते गूढवेदिभिः॥
आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका॥
का कृष्णस्य प्रणयजनिभूः श्रीमती राधिकैका।
कास्य प्रेयस्यनुपमगुणा राधिकैका न चान्या॥

मोहनी, हे आह्लादिनी, हे कृष्ण-चित्त-चोर कहां सो रही है? हे लज्जावती, हाथ में डोर लेकर आजा। उस मनोहर कृष्ण को जो अति चपल और चंचल है, कौन पकड़ सकता है? वह सदा

वामे तडित्चार्वाङ्गी राधा दत्ते सुश्यामलं।
कृष्णं कमलपत्राक्षं राधाकृष्णं भजाम्यहम् ॥
(टीका प्र० गी० १२ अ०)

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मासि राधिका।
तस्या दास्यप्रभावेन विरहोऽस्मान्न संस्पृशेत् ॥ (स्क० पु०)

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता।
सर्वलक्ष्मीमयी सर्व्वकान्तिः सम्मोहिनी परा ॥
(वृह० गौतमीये)

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा।
सर्वगोपीपु सैवेका विष्णोरत्यन्तवल्लभा ॥ (पाद्मे)

त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या यत्र वृन्दावनं पुरी।
तत्रापि गोपिकाः पार्थ यत्र राधाभिधा मम ॥ (गो० प्रेमामृते)

राधिका चन्द्रावली ... ...

तयोरप्युभयोर्मध्ये राधिका सर्वतोधिका।
महाभावस्वरूपेयं गुणैरतिवरीयसी ॥
(उज्ज्वल नीलमणि)

ह्लादिनी संधिनी संवित् त्वय्यैका सर्वसंश्रये।
ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते ॥ (विष्णु पु०)

स्वेच्छामय है, किसी का भी बाध्य नहीं हैं, उसको प्रेम-डोर से बाँध दे।

*   *   *

तब सब सखी कात्यायनी के मन्दिर में जाकर हाथ जोड़कर पूजा करने लगीं। हे माता, भगवान की अर्धाङ्गिनी* श्री राधा-

---

* द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः ॥
(दे० भी० पृ० २१)

गन्धगौरवैः सुरभिभिर्वलिभिर्धूपदीपकैः ।
उच्चावचैश्चोपचारैः प्रवालफलतंडुलैः ॥ (३-१०-२१)

भक्तोत्थायिनी महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥ (४-१०-२१)

एतस्मिन्नंतरे विप्र सहसा कृष्णदेहतः ।
आविर्बभूव सा दुर्गा विष्णुमाया सनातनी ॥१

या तु संसारवृक्षस्य बीजरूपा सनातनी ।
देवीनां बीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥

दुर्गा = विष्णुमाया ।

शृणु नारद वक्ष्यामि राधांशानां समुद्भवम् ॥६
शक्तीनां परमाश्चर्यं मन्त्रसाधनपूर्वकम् ।
या तु राधा मया प्रोक्ता कृष्णार्द्धाङ्गसमुद्भवा ॥१०

गोलोकवासिनी सा तु नित्या कृष्णसहायिनी ।
तेजोमंडलमध्यस्था दृश्यादृश्यस्वरूपिणी ॥११

(नारदपुराण पू० ख० अ० ८३)

राधाङ्गलोमकूपेभ्यो बभूवुर्गोपकन्यकाः ।
राधातुल्याः सर्वतश्च राधादास्यः प्रियम्वदाः ॥१६
योगेनाऽऽत्मा सृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः ।
पुमांश्च दक्षिणार्द्धाङ्गो वामार्द्धो प्रकृतिः स्मृता ॥
सा च ब्रह्मस्वरूपा च नित्या सा च सनातनी ।
यथाऽऽत्मा च तथा शक्ति र्यथाऽऽग्नौ दाहिका स्थिता ॥

(दै० मी० पृ० १२८)

गौरतेजो विना यस्तु श्यामतेजः समर्चयेत् ।
जपते ध्यायते वापि स भवेत्पातकी शिवे ॥

(गोपालसहस्रनाम सम्मोहनतंत्र)

जा में रस सोई हर्यो यह जानत सब कोय ।
गौर श्याम द्वै रङ्ग बिन हर्यो रङ्ग नहिं होय ॥

(क० कौ०)

तस्माज्ज्योतिरभूद्द्वेधा राधामाधवरूपकम्—

कंसारिरपि संसारवासनाबद्धशृंखलाम् ।
राधामाधाय हृदये तत्याज व्रजसुन्दरीः ॥ (गी० गो०)
अङ्गरागेण गौरांगी हिरण्यद्युतिहारिणी ।
ममाग्रे रंजयत्येषा निकुञ्जकुलदेवता ॥

(पौर्णमासीवाक्यम् , वि० मा०)

सुन्दरी को हम जीवों को दे। उनकी स्थिति प्रकृति पुरुष रूप से है। उनके दो भाग कर दो, हम श्री राधा को भजेंगी, जिससे हमको गो-लोक के हरि मिलेंगे।

*　　　*　　　*

इस समय वन में करुणा स्वर से मधुर मुरली बजी। जितनी भी वृक्ष और लता थीं, कुसुमित होकर उनसे पुष्प-वृष्टि होने लगी। माताओं के हृदय से स्नेह-नीर बहता था और युवतियों की नीवी खुलती थीं। जितने भी आत्माराम थे, वे सब तप छोड़कर करुणा रस में डूब गये। पक्षियों के मुख से आहार गिर पड़ा और बालकों ने स्तन-पान छोड़ दिया। क्यों ऐसा हुआ, कोई नहीं जान सका। त्रिजगत् शीतल होगया।

दक्षिण से रमणी सोने की एक पुतली-जैसी, भाव में पगली-

जानात्येका परा कान्तं सैव दुर्गा तदात्मिका।
यत्परा परमा शक्तिर्महाविष्णुस्वरूपिणी॥
यस्या विज्ञानमात्रेण पराणां परमात्मनः।
मुहूर्ताद्देवदेवस्य प्राप्तिर्भवति नान्यथा॥
एकेयं प्रेमसर्वस्वस्वभावा गोकुलेश्वरी।
अनया सुलभो ज्ञेय आदिदेवोऽखिलेश्वरः॥
अस्या आवरिका शक्ति र्महामायाखिलेश्वरी।
यया मुग्धं जगत् सर्वं सर्वे देहाभिमानिनः॥

(नारदपंचरात्रे श्रुतिविद्या-सम्वाद)

जैसी दौड़ी ।* उसके अङ्ग की आभा से वृन्दावन प्रकाशमान हो गया और उसकी रूप की छटा से सभी आश्चर्यित हो गये। गोविन्द-मोहनी ढलकर चली जाती थी और जगत मोहित होकर देखता था। उस समय वह मुख उठाकर कहने लगी—'मैं तुम्हारे

---

* राधाउन्माद — तन्मयभाव—

ऊधो कहैं जैसो वृषभान की लली को हाल
सुनिये कृपाल वाकी ह्वां ज्यों वै कटति है।
कबहूं के गाय उठे ख्याल कै तिहारी चाल
कबहूं बजाय वेनु वन में अटति है॥
बूझे विन वके हम माखन चुरायो नाहिं
आली हौ कुचाली तुम झूठी यौं नटति है।
जाय घनश्याम अब देखिये निकुंज धाम
राधा राधा राधा नाम अपनो रटति है॥३१६
केसरि की खौरि भाल हिये वन माल
वही वैसही अनूप रूप ठाट को ठटति है।
ओढ़ि पटपीत लै लकुटि कालिन्दी के तट
रावरे सुभायन सों गायन हटति है॥
प्यारी चलि कुंज कहे सैन में वराय वैन
खोलै नहिं नैन जब नींद उचटति है।
जाय घनश्याम अब देखिये निकुंज धाम
राधा राधा राधा नाम अपनो रटति है॥३१७

आलिन से बोलै उन्माद भरी यरी यरी

अरी हमैं कहां तू लखावै कंस डर को।

लैहौं दधि दान तव जान दैहौं नन्द की सौं

करति गुमान कहा मोतिन की लर को।

जानै न हमारी कला ग्वारी गुन गरवीली

याही कर ऊपर नचाऊं चराचर को॥

ऐसे वके राधाश्याम रावरी विरह बाधा

साधा रूप रावरो अनूप नटवर को॥३१८

ह्वै है मग माहिं मैया भई सांझ की समैया

आओ बलभैया चलैं गैया घेरि घर को।

पंकज की प्रभा छीन भई ह्वै मलिन रहे कोक

भेस सोक दीन देखो मधुकर को॥

भूखे सब सखा मेरे सूखे मुख इन केरे

दूखे पग फेरे किये वन के डगर को।

ऐसे वके राधाश्याम रावरी विरह बाधा

साधा रूप रावरो अनूप नटवर को॥३१६

वंशीध्वनि—राधाविरह

(उन्माद)

नाचिछे कदम्ब मूले, बाजाये मुरली रे

राधिका-रमण।

चल सखि त्वरा करि, देखिगे प्राणेर हरि

व्रजेर रतन।

चातकी आमि स्वजनि, शुनि जलधर ध्वनि
के मने धीरज धरि थाकि लो एखन ?
जाक् मान जाक् कुल, मन-तरी पावे कूल
चल भासि प्रेम-नीरे भेवे ओ चरण।
मानस-सरसे सखि, भासिछे मराल रे,
कमल-कानने
कमलिनी कोन् छले थाकिये डूविया जले
वंचिया रमणे
जे जाहारे भाल वासे, से जाइवे तार पाशे
मदन राजार .विधि ,लंघिव केमने ?
यदि अवहेला करि, रुषिवे सम्वर अरि,
के सम्वरे स्मर-शरे ए तीन भुवने ?
ओइ शुन पुन वाजे, मजाइ यामन रे,
मुरारीर वांशी।
सुमन्द मलय आने,ओ निनाद मोर काने,
आमि श्यामदासी।
जलद 'गरजे' जवे, मयूर नाचे रे रवे,
आमि केन ना काटिव .सरमेर फांसि।
सौदामिनी घन सने, भ्रमे सदानन्द मने,
राधिका केन तजिवे राधिका विलासी ?
फुटिछे कुसुम कुल, मंजु कुंज वने रे,
यथा गुणमणि।

हेरि मोर श्यामचांदे, पीरितेर फूल फांदे
पातिछे धरणी ।
कि लज्जा, हा धिक तारे छय ऋतु वरे जरे
आमार प्राणेर धने लोभे से रमणी ?
चल सखी शीघ्र जाइ, पाछे माधवे हाराइ,
मणिहारा फणिनी कि वांचे, लो सजनि ?
सागर उद्देशे नदी, भ्रमे देशे देशे रे,
अविराम गति
गगने उदिले शशी, हासि येन पड़े खसि
निशि रूपवती ।
आमार प्रेम सागर, दुयारे मोर नागर,
तारे छेडे रव आमि ? धिक् ए कुमति !
आमार सुधांशु निधि, दियाछे आमाय विधि
विरह आधारे आमि ? धिक् युकति !
नाचिछे कदम्ब मूले, बाजाये मुरलि रे,
राधिकारमण
चल सखि त्वरा करि, देखिगे प्राणेर हरि
गोकुल-रतन
मधु कहे व्रजाङ्गने, स्मरि ओ रांगा चरणे,
जाओ यथा डाके तोमा श्री मधुसूदन ।
योवन मधुर काल, आशु विनाशिवे काल
काले पिओ प्रेम मधु करिया यतन॥ —माइकेल मधुसूदन

अनुवाद

१

श्री व्रजरत्न प्राणधन हरि को ! चल देखें सत्वर,
हैं कदम्ब के तले नाचते, वेणु बजाते राधावर।
घनश्याम की ध्वनि सुन क्योंकर मैं चातकी धैर्य धरूं ?
क्यों न प्राण प्यारे के ऊपर अपना तन मन धन वारूँ ॥

२

मान जाय, कुल तजे भले हा, मानस तरणी पावे कूल,
चल सखि ! डूब प्रेम-जल में सेवें वह पद-पंकज-मूल।
घूम रहा है मानस-सर में हंस कमल-वन के भीतर,
डूब रहेंगी जल में कैसे नलिनी प्रिय को वंचित कर ?

३

जो जन जिसे प्यार करता है जाता है वह उसके पास,
मदनराजके विधि लंघन में कर सकता है कौन प्रयास ?
करूँ उपेक्षा यदि मैं उसकी होगा कुपित मनो-भव वीर,
शम्बरारि-शर सहै कोन है त्रिभुवन-भर में ऐसा धीर ?

४

सुन सखि ! फिर वह मनोमोहनी माधव मुरली बजती है,
कोयल अपनी कंठ-कला का गर्व सर्वथा तजती है।
मलयानिल मेरे कानों में उस ध्वनि को पहुँचाती है
सदा श्याम की दासी हूं मैं, सुध बुध भूली जाती है ॥

५

जलद ध्वनि सुन मत्त मयूरी स्वयं नाचती है तत्काल,
फिर मैं काटूँ क्यों न आज निज बन्धनमय लज्जा का जाल।
फिरती है सानन्द दामिनी सदा संग लेकर घन को,
राधा कैसे तज सकती है, राधारमण प्राणधन को ?

६

मंजु कुंज में जहाँ श्याम हैं खिले सुमन मन भाये हैं,
मेरे प्रिय को देख धरा ने फूल-जाल फैलाये हैं।
हा ! कैसी लज्जा है धिक है जो षड्ऋतु को वरती है,
वह रमणी मेरे प्रिय धन पर मोहित होकर मरती है॥

७

चल सखि शीघ्र चलें जिसमें फिर न गमा बैठें मोहन को,
जी सकता है कब तक फणिनी खोकर मणि रूपी धन को ?
सरिता तो देशों देशों में फिरती है सागर के अर्थ,
त्याग प्रेम सागर निज नागर धिक् जो बैठ रहूँ मैं व्यर्थ !

८

चन्द्रोदय से पुलकित होकर रजनी हास्यमयी होती,
निज सुधांशु निधि पाकर क्यों मैं रहूँ अंधेरे में रोती ?
श्री ब्रजरत्न प्राणधन हरि को चल सखि चल देखें सत्वर,
हैं कदम्ब के तले नाचते वेणु बजाते राधावर।

पैरों पड़ती हूं, मुझे छोड़ दो। मैं प्रीति की बातें कुछ नहीं जानती। क्या जगत् में और नारियां नहीं हैं ? फिर कहती थी, ननदी कहां है ? कुल में दाग लगाया और दीन हुई। 'लिया-लिया' कहकर दौड़ी और तमाल के वृक्ष को पकड़कर मूर्छित हो गई। सब ने पकड़ा और वह उठ खड़ी हुई। फिर विभङ्ग होकर खड़ी हो गई और कहने लगी—'मैं कृष्ण हूं, मुरली* बजाकर राधा को

६

मधु करता है व्रजवाले उन पद पद्मों का ध्यान—
जाओ जहां पुकार रहे हैं श्री मधुसूदन मोदनिधान,
करो प्रेम-मधु-पान शीघ्र ही यथासमय कर यत्न-विधान,
यौवन केसु रसाल योग में काल रोग है अति बलवान ॥

अनुवादक—(मधुप)
चिरगाँव (झाँसी)

* जनी जड़ वंश ते अधर अवतंस बनी
गनी है असारन में है हिये की खाली री।
हरै मन धन को करै है माधुरी सों बात
उठै उतपात या के कुल ते दवाली री ॥
छिद्रन को लिये हिये गोढि तें भरी कठोर
बोलै मुंहजोर बरजोर ए कुचाली री।
काली के दमन कहु कैसे प्रीति पाली या तै
कहैं वनमाली जग मैं प्रबीन आली री ॥१३३

पागल कर दूंगा।'* फिर पैर फैलाकर बैठ गई और 'कान्ह-कान्ह' कहती हुई उठकर दौड़ी। आंखें मूंदे हुए ही कुञ्ज के भीतर हाथ वढ़ाकर अपने वन्धु कृष्ण को ढूंढ़ने लगी। फिर मधुर वांसुरी+ बजी और 'मैं आई' कहकर किशोरी दौड़ी और उसके संग

हृद्यमवगृह्य गृहेभ्यः कर्षति राधा वनाय या निपुणा।
सा जयति विसृष्टार्था वरवंशजकाकलीदूती॥

भिन्दन्नम्बुभृतश्चमत्कृतिपदं कुर्वन्मुहुस्तुम्बुरं
ध्यानादन्तरयन्सनन्दनमुखान् संस्तम्भयन् वेधसम्॥
औत्सुक्यावलिभिर्बलिं विवलयन् भोगीन्द्रमाघूर्णयन्,
भिन्दन्नण्डकटाहमभितो वभ्राम वंशीध्वनिः॥

पद्मा—हला पश्य एष वेणुसंज्ञया त्वां स्वरयति गोकुलेन्द्रनन्दनः।

चन्द्रावली—सखि मुरलि विशालच्छिद्रजालेन पूर्णा,
लघुरतिकठिना त्वं ग्रन्थिला नीरसासि।
तदपि भजसि शश्वच्चुम्बनानन्दसान्द्रं,
हरिकरपरिरम्भं केन पुण्योदयेन॥७ (विदग्धमाधवे)

* इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणतत्पराः।
लीलाभगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः॥ (भा०)

+ नादः कदम्बविटपान्तरतो विसर्पन्
को नाम कर्णपदवीमविशन्न जाने।
हा हा कुलीनगृहिणीगणगर्हणीयां
येनाद्य कामपि दशां सखि लम्भितास्मि॥३४

(विदग्धमाधवे राधावाक्यम्)

जितनी भी बालिकायें थीं, सब दौड़ीं। उनके चरणों में रुनु-झुनु नूपुर और हाथों में कंकण बजते जाते थे। मार्ग के दोनों ओर वृक्षों की शाखाओं में बैठे हुए पक्षी उस स्नेहमयी का स्वागत कर रहे थे। वह डोलती हुई मार्ग में चली जा रही थी और वृक्षों से उसके मस्तक में पुष्प-वृष्टि हो रही थी।

श्याम के अङ्ग की गन्ध से वन भर गया* और किशोरी दौड़ पड़ी। फिर मधुर मुरली बजी÷ और मुख उठाकर देखा तो वन-माली दिखाई+ दिये।

* * *

निशम्य गीतं तदनंगवर्द्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः।
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः स यत्र कान्तो जवलोलकुंडलाः॥
भ्रमन्ती कान्तारे बहुविहितकृष्णानुसरणाम्॥ (भा०)

* परिमलसरिदेषा यद्वहन्ती समन्तात्
पुलकयति वपुर्नः काऽप्यपूर्वा मुनीनाम्।
मधुरिपुरुपरागे तद्विनोदाय मन्ये
कुरु भुवमनवद्या मोदसिन्धुर्विवेश॥

÷ ध्यानं बलात्परमहंसकुलस्य भिन्दन्,
निन्दन्सुधामधुरिमानमधीरधर्मा।
कन्दर्पशासनधुरां मुहुरेव शंसन्,
वंशींध्वनिर्जयति कंसनिषूदनस्य॥ (भ० र० सिं०)

\+ तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः॥ (भा० १-३२-२)

श्याम के मुख की ओर देखकर श्री राधा ने फिरकर मुख ढक लिया और खड़ी हो गई। धीरे से श्याम निकट आये, उनके चरणों में नूपुर रुनु-झुनु बज रहे थे। मिले, मिले, दोनों मिले। इतने अवसर के पीछे भुवन शीतल हुआ। चञ्चल कृष्ण संसारी होंगे और उनकी प्रिया हमारी स्वामिनी होंगी और हमारी कुटुम्बिता भगवान् से हो गया। हम राधा को ले आये, अब कहां जावेगा ? जो दुर्लभ और असाध्य था, पकड़ा गया, और आनन्द से बलराम मत्त हो गया।

* * *

भुवन को प्रकाश करनेवाली सरला अवला लज्जा से कातर होकर रोती है। कृष्ण उसको अपने वाम भाग में बैठाने का आग्रह करते हैं, परन्तु वह नहीं जाना चाहती, सखी उसे पकड़े रहती हैं। उसे हाथ पकड़कर ले जाते हैं और वह मुख नीचा करके जाती है और चरण के नूपुर रुनु-झुनु बजते हैं। नागर ने आकर राधा का हाथ पकड़ा तो वह हट गई और थर-थर कांपने लगी। सखियों ने कहा—'हे बन्धु, अधीर न होना, अधीर होने से सखी नहीं मिलेगी।'

कितना ही समझा-बुझा कर उसे ले चले और श्याम ने उसे अपनी बांई ओर बिठलाया। वह फिर भी उठकर भागना चाहती थी, पर सखियों ने उसे पकड़ रक्खा।

* * *

कातर होकर सखियों की ओर देखकर कृष्णचन्द्र कहने

लगे—'मैं क्या था और मुझे क्या बना डाला ।* हे सखि, किस दिन का बदला लिया ? मैं तो स्वेच्छामय था, एक छोटी बालिका ने मेरा मन चोर लिया । अब मैं समझा, इतने दिन पीछे प्रेम का उदय हुआ । अब मुझे राज्य सुख नहीं भाता है। राज्य-भार किसी और को देकर मैं प्रिया को संग लेकर× सदा वृन्दावन में+

---

* मां पूर्णपरमहंसं माधव लीलामहौषधिर्धोता ।
कृत्वा वत सारंगं व्यधित कथं सारसे तृपितम् ॥ (भ०र० सिं०)
सारंगश्चातको भक्तश्च । सारसं=कमलम् ।
संति यद्यपि मे प्राज्या लीलास्तास्ता मनोहराः ।
नहि जाने स्मृतेरासे मनो मे कीदृशं भवेत् ॥ (भ० र० सिं०)

× ग्वाल संग जैवो व्रज गायन चरैवो
ऐवो अब कहा दाहिने ये नैन फरकत है ।
मोतिन की माल वारि डारौं गुंज माल पर
कुंजन की सुधि आये हियो धरकत है ॥
गोबर को गारो 'रघुनाथ' कछू याते भारो
कहा भयो पहल न मनि मरकत है ।
मन्दिर हैं मंदर ते ऊँचे मेरे द्वारिका के
व्रज के खरिक तऊ हिये खरकत है ॥
(क० कौ०)

+ शृणुतं दत्तचित्तौ मे रहस्यं व्रजभूमिकं ।
व्रजनं व्याप्ति रित्युक्ता व्यापनाद् व्रज उच्यते ॥
(शांडिल्यऋषिवाक्यं परीक्षितं तथा व्रजनाथं प्रति)

रहूंगा।' ऐसा कहकर श्री राधा की ओर देखकर कहने लगे—हे प्रिय, सुन, मैं दो हाथ जोड़कर कहता हूं कि मैं सदा से अभिमानी हूं, मेरा अपमान क्यों करती है ?* मैं त्रिभुवनपति, मुझको बांधकर ऐसा करोगी, तो लोग तेरी निन्दा करेंगे।' यह सुनकर राधा अचेत होकर कृष्ण के चरणों में गिर पड़ी और कहने लगी, 'हे प्राणनाथ, सुनो, क्या अपनी दासी की दासी से ऐसा कहना चाहिये ?' श्याम ने उसे उठा लिया और वह श्याम की ओर न देखकर सखियों से कहने लगी—'मैं अल्प-बुद्धि सेवा या प्रीति कुछ भी नहीं जानती हूं। तुममें से कोई आकर श्याम की बांई ओर बैठकर मेरी बाधा दूर करो। श्याम की मुरली× ने मुझे पागल कर दिया है, वह अब मुझे राधा कहकर न पुकारे।'

रङ्गिनी ने कहा—'मैं गई थी, परन्तु मुझे अच्छा नहीं लगा। जब दो दिन के पीछे वह गम्भीर हुआ, तो भय से मेरे प्राण उड़ गये।'

कंगालिनी ने कहा—'मैंने हृदय छोड़कर चरण+ पकड़ लिये।

---

* तस्मिन्नन्दात्मजः कृष्णः सदानन्दांगविग्रहः।
आत्मारामश्चाप्तकामः प्रेमाक्तैरनुभूयते॥ (शांडिल्य०)

× हस्तद्वयमितायामा मुखरन्ध्रसमन्विता।
चतुःस्वरच्छिद्रयुक्ता मुरली चारुनादिनी॥

\+ जेहि पद ते प्रगटी पुनीत गंग आप
दाप तें विलाहिं पाप के कलाप हैं।

जा पद को काम रिपु ध्यावैं वसु जाम
हिये जासु गुन ग्राम लहैं नहीं दीनद्याल कै ॥
अति अभिराम गति पाई पति धाम
पाहन तें मुनि वाम उधरी तुरति छ्वै ।
सो गोविन्द के पदारविन्द मकरन्द मो
मन मलिन्द कब बसहिं आनिन्द ह्वै ॥३३१

(दीनदयाल)

न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भौम्यमप्युत
वैराज्यं पारमेष्ठ्यं च आनन्त्यं वा हरेः पदम् ।
कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजःश्रियः
कुचकुंकुमगन्धाढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः ॥

(भा० १०-८३-४१-४२)

दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो नरके वा नरकान्तकप्रकामम् ।
अवधीरितशारदारविन्दचरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि ॥
न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वांछन्ति यत्पादरजःप्रपन्नाः ॥

(भा० १०-१६-३७)

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत्पदं पुण्ययशोमुरारेः ।
भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं पदं पदं यद् विपदां न तेषाम् ॥

(भा० १०-१४-५८)

विप्राद् द्विषड्गुणायुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।

मन्ये तदर्पितमनो वचने हितार्थ-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥ (भा० ७-९-२०)

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीत एव हि ।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्॥
(भा० १० १४-२९)

पदमत्राहि गीतं रसिकास्तद्धि जानन्ति नान्येषां ।
कृष्णांघ्रिपद्ममधुलिण् न पुनर्विसृष्ट-
मायागुणेषु रमते वृजिनावहेषु ।
अन्यस्तु कामहत आत्मरजः प्रमार्ष्टु-
मीहेत कर्म यत एव रजः पुनः स्यात् ॥ (भा० ६-३-३३)

मन रे परसि हरि के चरन । ध्रु० ॥
सुगम शीतल कमल कोमल त्रिविध ज्वाला हरन ।
जे चरन प्रह्लाद परसे इन्द्र पदवी धरन ॥
निज चरन ध्रुव अटल कीन्हो राखि अपने सरन ।
जिन चरन ब्रह्मांड भेंट्यो, नख सिखो श्री भरन ॥
जिन चरन प्रभु परसि लीने तरी गातम धरन ।
जिन चरन कालिहि नाथ्यो गोप लीला करन ॥
जिन चरन धर्‌यो गोवर्द्धन गरव मघवा हरन ।
'दास मीरा' लाल गिरधर अगम तारन तरन ॥
(मीरा क० को०)

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता ।
सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिसम्मोहनी परा ॥ (बृहद्गौतमीय तन्त्र)

हे सखि, मुझे युगल चरण दो, और श्याम के अङ्ग को तुम लो।'

कुलवती ने कहा—'मैंने अपने मन-प्राण सर्व कृष्णार्पण कर दिये और निश्चिन्त हो गई। यह मुझे भावना ही नहीं थी कि मुझे कभी श्याम के बांई ओर बैठना होगा।'

तरंगिनी राधा के मुख की ओर कातरता से देखकर कुछ कहने लगी तो वह कांपने लगी और उसका कंठ रुक गया।

सजलनयना ने कहा—'हे राधे, सुन, बन्धु के मन का दुःख कैसे भी नहीं जाता, न उसकी तृप्ति होती है। उसका मुख सदा ही मलिन रहता है। हम सब ने एक-एक करके बन्धु के वक्षस्थल को लिया, परन्तु उसका हृदय शीतल नहीं हुआ। अब तू बन्धु को हृदय से लगाकर शीतल करके उसका नयनवारि निवारण कर।'

❀ ❀ ❀

हे भक्तो, सुनो, सखियों ने श्रीकृष्ण के हाथ राधा को क्यों अर्पण किया। क्योंकि अति प्रिय बन्धु के निमित्त सर्वोत्तम वस्तु देने की सभी को इच्छा होती है। उन्हें अपने को देखकर तृप्ति नहीं हुई, क्योंकि उन्होंने अपने को मलिन समझा। राधा की प्रीति पवित्र और निर्मल है और कृष्ण का हृदय शीतल करेगी। इसलिये उन्होंने श्री राधा का दासी पद लिया और कृष्ण को

परात्परतरा पूर्णा पूर्णचन्द्रनिभानना। (राधोपनिषद्)

* स्वेदस्तम्भोऽथ रोमांच-स्वर-भंगोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्विका मताः॥

राधा देकर सुखी किया। राधा को पाकर कृष्ण अत्यन्त सुखी हुए और सखियों का चरम (अत्यन्त, यत्परो नास्ति) सुख यही है। तब श्याम ने राधा को अपनी बांई ओर बैठाया और सब सखियों ने उनके चरणों में प्रणाम किया। दोनों को गुंजाहार पहनाया और आनन्द में मग्न हुईं। वाजे मिलाकर गाने लगीं। श्याम के गुणगान-सुधा से वन भर गया। मण्डली करके और घेर-घेर कर राधा-श्याम की ओर देखती हुई नाचने लगीं।

रागिनी श्रलयासिन्धु

युगल मिलने से आज त्रिभुवन शीतल हो गया॥ ध्रु० ॥
मधुर वृन्दावन में कृष्णचन्द्र और चन्द्रवदनी मिले। *

१म सखी — हे सखि, देख ले, देख ले, दोनों आंखों से भरकर देख ले।

२य सखी — राधा-माधव के रूप-सागर में डूब रही हूं। ÷मुझे संभाल संभाल !

---

* युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतं सुखमश्नुते॥ (गी० ६-२८)

÷ मनस्तत्र लयं याति तद्विष्णोः परमं पदम्॥
(ई० वा० उ० ४७)

सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम्।
द्विभुजं ज्ञानमुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम्॥
गोपीगोपगवावीतासुरद्रुमलताश्रितम्।

३य सखी — देख, देख, नयनभंगिमा, आहा, पंचशर मारता है!

४र्थ सखी — अङ्ग-गंध से भ्रमर मतवाले हुए और मेरे प्राण भी।

सभी सखियां बलराम गुण-गान करती हैं।

काला चांद और सोना चांद मिले।

उस समय काला चांद ने कहा—

सजल नेत्र से सब की ओर देखकर गद्गद स्वर से कहने लगा—'यह वृन्दावन जिस धन से शोभायमान है, मैं सब को वह दिखलाता हूं। यहां जितनी-भर भी सामग्री है, वह संसार में सबसे सुन्दर और प्राणों को सुख देनेवाली है†। सब को जीवन देकर

दिव्यालंकरणोपेतं रत्नपंकजमध्यगम् ॥२

कालिन्दीजलकल्लोल-संगिमारुतसेवितम्।

चिन्तयन् चेतसा कृष्णं मुक्तो भवति संसृतेः ॥३

(गोपालतापन्युपनिषद्)

† अहो मधुपुरी धन्या वैकुंठाच्च गरीयसी।

बिना कृष्णप्रसादेन क्षणमेकं न तिष्ठति ॥

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।

अत्राह तदुरुगायाय वृष्णेः परमं पदमवभाति भूरि।

व्याख्याता तानि वां युवयो रामकृष्णयोर्वास्तूनि रम्यस्थानानि गमध्यै गन्तुम्। उश्मसि उष्मः कामयामहे न तु तत्र गन्तुं प्रभवामः। यत्र

वृन्दावन सुगठित हुआ है‡ । माधवी, मालती, बेला, जूही, जाति,

(वृन्दावने) वास्तुषु भूरिश्रृङ्गा गावः अयासः संचरन्ति, अत्र भूलोके अहर्निशं तं तद् गोलोकाख्यं परमं पदं अत्यंतं मुख्यम् । उरुभिर्बहुभिर्गीयते स्तूयत इत्युरुगायस्तस्य वृष्णो यादवस्य पदमविभाति प्रकाशते इति ॥ (ऋग्वेद)

‡ अहो वृन्दावनं रम्यं यत्र गोवर्द्धनो गिरिः । (स्कन्दे)
पंचयोजनमेवास्ति वनं मे देहरूपकम् ।
कालिन्दीयं सुषुम्नाख्या परमामृतवाहिनी ॥
(गौतमीतन्त्रे)

शिवस्थानं शैवाः परमपुरुषं वैष्णवगणा
लपन्तीति प्रायो हरिहरपदं केचिदपरे ।
पदं देव्या देवीचरणयुगलानन्दरसिका
मुनीन्द्रा अप्यन्ये प्रकृतिपुरुषस्थानममलम् ॥४६

* * *

तस्या मध्यान्तराले शिवपदममलं शाश्वतं योगिगम्यं
नित्यानन्दाभिधानं सकलसुखमयं शुद्धबोधस्वरूपम् ।
केचिद् ब्रह्माभिधानं पदमिति सुधियो वैष्णवास्तल्लपंति
केचित् हंसाख्यमेतत् किमपि सुकृतिनो मोक्षवर्त्म प्रकाशम्॥४१
(षट्चक्रनिरूपण पूर्णानन्द)

कदम कुंज ह्वै हौं कबै, श्री वृन्दावन माहिं ।
'ललित किशोरी' लाडिले विहरैंगे तिहि छांहि ॥
(क० कौ०)

जो जड़ जग की शोभा करते हैं, उन सब का सार लेकर वृन्दावन की शोभा है+। जितना-भर भी सुन्दर है, उनमें से प्रत्येक का सार-भाग लेकर जड़-भाग फेंक दिया है। लावण्य लेकर उसको स्तर-स्तर में सजाकर वृन्दावन बनाया है। सरल सुजग जो माधुर्य में मग्न रहते हैं और ऐश्वर्य नहीं मांगते, इस वृन्दावन में मैं सदा उनके संग रहता हूं×। इस वन के अधिकारी का नाम 'राग' (प्रेम) है। कामादि उसके भृत्य हैं। उसकी सहायता से अपने भक्तों को संग लेकर मैं नित्य लीला करता हूं। राज कार्य-भार औरों के आधीन करके मैं निश्चिन्त होकर रात-दिन अपने भक्तों को लेकर वृन्दावन में सुख की लीला करता हूं।'※

※ ※ ※

\+ मथ्यते तु जगत्सर्वं ब्रह्मज्ञानेन येन वा।
तत्सारभूतं यद्यस्यां मथुरा सा निगद्यते ॥ (गो० ता० उ०)
अहो न जानन्ति नरा दुराशयाः पुरीं मदीयां परमां सनातनीम्।
सुरेन्द्र-नागेन्द्र-मुनीन्द्र-संस्तुतां मनोरमां तां मथुरां पराकृतिम् ॥
(पद्म० पु०)

× तद्विष्णोः परमं पदं ये नित्योद्युक्तास्तं यजन्ति न कामात्।
तेषामसौ गोपरूपः प्रयत्नात्प्रकाशयेदात्मपदं तदेव ॥ ५
(गोपालता० उ०)

※ श्रियः कान्ताकान्तः परमपुरुषः कल्पतरवो
द्रुमा भूमिश्चिन्तामणिगुणमयी तोयममृतम्।

मरकत के समान दूब की शैया में हरि प्रिया को संग लेकर सखीगणों के साथ पंक्ति में यमुना के किनारे बैठे। श्रीअङ्ग की आभा से यमुना जल झलमल करने लगा। मन्द-मन्द वायु बहने लगी और सपत्र कमल टलमल करने लगे। कुछ दूर में पक्षी वृक्षों में बैठकर सुस्वर से गाने लगे*। मयूर-मयूरी सन्मुख नाचकर आनन्द लेने लगे।

कथागानं नाट्यं गमनमपि वंशी प्रियसखी
चिदानन्दं ज्योतिः परमपि तदाद्यं स्वमपि च ॥६०
स यत्र क्षीराब्धिः स्रवति सुरभिभ्यश्च सुमहान्
निमेषार्द्धाख्यो वा व्रजति नहि यत्रापि समयः।
भजे श्वेतद्वीपं तमहमिह गोलोकमपि यत्
विदन्तस्ते सन्तः क्षितिविरलचाराः कतिपये ॥६१
(ब्रह्मसंहिता)

व्रज समुद्र मथुरा कमल वृन्दावन मकरंद।
व्रज वनिता सब पुष्प हैं मधुकर गोकुलचन्द्र ॥
(क० कौ० ५२६)

वह वृन्दावन सुखसदन कुंज कदम की छांहि।
कनकमयी यह द्वारिका ता की रज सम नाहिं ॥ (क० कौ०)

* धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्-
पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः।
नद्योऽद्रयः खगमृगा सदयावलोकै
गोंप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥ (भा०)

इस समय—

कटोरा भरके सेवा-वस्तु लेकर वृन्दा आई।

(वृन्दावन की अधिष्ठात्री देवी वृन्दा सखियों के लिये श्रीकृष्ण-सेवा के निमित्त वस्तु लाई।)

श्याम को भोजन कराने की बड़ी इच्छा चित्त में थी। इस कारण सखियां कार्य्य में मग्न हुईं। आंखों के जल से श्याम के चरण धोये और वेणी खोलकर चरण पोंछे। सखियों ने हृदय रूपी पद्मासन बिछा दिया और उसमें श्रीकृष्णचन्द्र से बैठने की विनति की।÷

श्याम ने सखियों से कहा—'सुनो, तुम सदा मेरी सेवा करती रहीं, परन्तु मैं औरों की सेवा करने से वंचित रहा। आज किंचित उस सुख को भोगना चाहता हूं। आज मैं वृन्दावन में गृहस्थ होता हूं और तुम्हारी सेवा करके इच्छा पूर्ण करता हूं।'

÷ अष्टपत्रं तु हृत्पद्मं द्वात्रिंशत्केसरान्वितं।
तस्य मध्ये स्थितो भानु र्भानुमध्यगतः शशी ॥२६
शशिमध्यगतो वह्नि र्वह्निमध्यगता प्रभा।
प्रभामध्यगतं पीठं नानारत्नप्रवेष्टितम् ॥२७
तस्य मध्यगतं देवं वासुदेवं निरंजनम्।
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मुक्तामणिविभूषितम् ॥२८
शुद्धस्फटिकशंकाभं चन्द्रकोटिसमप्रभम्।
एवं ध्यायेन्महाविष्णुमेवं वा विनयान्वितः ॥२९

(ध्यानविन्दूपनिषद्)

श्रीहरि ने अपनी पतली कमर को कसकर बांध लिया और सखियों का हाथ थामकर उन्हें कतार में विठलाया‡। स्वर्ण-थाल में भागवत लीला श्याम ने अपने आप सखियों के सन्मुख रक्खा और कहा, 'पहले इसे पीओ। इससे क्षुधा तीक्ष्ण होगी। तब और सब पदार्थों में आस्वाद बढ़ेगा।' इतना कहकर श्याम ने सुवर्ण-घट भरके 'भक्ति और प्रेम' सन्मुख रक्खा। इससे जितनी

---

‡ योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः।
प्रविष्टेन गृहीतानां कंठे स्वनिकटं स्त्रियः॥ (भा० रा० प्र०)

(तटस्थज्ञान)

सू० तदाविर्भावात्तटस्थज्ञानलयः॥

यत्र हि द्वैतमेव भवति यत्र वाऽन्यदिव स्यात्तत्राऽन्योऽन्यत् पश्येदन्योऽन्यद्विजानीयात्। यत्र त्वस्य सर्वात्मतैवाऽभूत् तत् केन कं पश्येत् केन कं विजानीयात् ॥इति॥ (दै० मी० पृ० ८३

उच्चैर्गायंश्च नामानि ममैव खलु नृत्यति।
अहंकाराऽऽदिरहितो देहतादात्म्यवर्जितः॥
इति भक्तिस्तु या प्रोक्ता परा भक्तिस्तु सा स्मृता।
यस्यान्तदतिरिक्तं तु न किंचिदपि भाव्यते॥
इत्थं जाता परा भक्तिर्यस्य भूधर तत्वतः।
तदैव तस्य चिन्मात्रे मद्रूपे विलयो भवेत्॥
भक्तेस्तु या पराकाष्ठा सैव ज्ञानं प्रकीर्तितम्।
वैराग्यस्य च सीमा सा ज्ञाने तदुभयं यतः॥

सखियां थीं, कृष्णचन्द्र हो गईं*। तब प्रति सखि के सन्मुख बन्धु बैठा। लज्जा-कातरा सरला अबलाओं की अमृत-पान से लज्जा दूर हो गई। श्री वृन्दावन में पंचेन्द्रियों द्वारा सेवा करना यत्न-पूर्वक श्याम ने सिखा दिया और कहा—'हे प्रिये, सुनो, वृन्दावन की सम्पत्ति एक-एक करके तुमसे वर्णन करता हूं। हे प्रिया, आंखों से भोग करने को इस पात्र में, देख, पूर्ण-चन्द्र-प्रकाश है, यह देख एक थाल पूर्ण रूप का।'

रंगिनी ने कहा--'रूप सरोवर वृन्दावन में है, एक थाल वृन्दा लाई है।'

श्याम ने कहा—'वातावी (?) पुष्प की गन्ध का एक पात्र लाया हूं। हे प्रिये, इसे देख। यह देख, इस पात्र में स्वच्छ और पवित्र वेला की गन्ध पूर्ण है। ऐसे द्रव्यों से वृन्दावन बना है।

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥

(दे० भा० ७ स्क० दे० गी०)

आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशंति॥
'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शांत उपासीत'।

(दे० मी० पृ० ८२)

* ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति॥ (उ० स्वरूपज्ञान)

ब्रह्मैव इदं अमृतं पुरस्ताद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।

मध्यश्चोर्ध्वञ्च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥ (उ०)

अस्मिन्नास्वाद्यमाने तु सच्चिदानन्दरूपिणि च प्रकाशे ।

हरेर्लीला सर्वतः कृष्ण एव च । (?)

आत्मानं च तदन्तस्थं सर्वेपि ददृशुस्तदा ॥ (भा०)

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ (गी०)

तानाऽविदन्मय्यनुषंगबद्धधियः स्वमात्मानमदस्तथेदम् ।

यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपम् ॥

(भा०)

यथा नद्यः स्पन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय ।

तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

(मुंडकोपनिषद्)

सू०—रसरूप एवायं भवति भावनिमज्जनात् ॥

(दै० मी० ६०)

'तव वयं स्मः' तथा 'तं यथायथोपासते तदेव भवति' ।

सति शक्तो नरो याति सद्भावं ह्येकनिष्ठया ।

कीटको भ्रमरं ध्यायन् भ्रमरत्वाय कल्पते ॥

क्रियान्तरासक्तिमपास्य कीटको

ध्यायन् यथालिं ह्यलिभावमृच्छति ।

तथैव योगी परमात्मतत्वं

ध्यात्वा समायाति तदेकनिष्ठया ॥ (दै० मी० पृ० ६१)

घ्राणेन्द्रिय से इसका भोग करो। फटई (?) पक्षी इस संसार में रसिकों को आनन्द देता है, उस पक्षी का सुर इस पात्र में भरा हुआ रक्खा है। हे प्रिये, इसे देख और कानों द्वारा इसका भोग कर। कर्णानन्द-द्रव्यों से यह वृन्दावन भरा हुआ है।' तब श्रीहरि ने सुशीतल सुगन्धित वायु-बल-प्रद आम्र का स्वाद सन्मुख रक्खा।

* ❀ *

रंगिनी ने कहा—'बलप्रद और शीतल सुगन्धियुक्त वायु सम-भाव से वहकर शरीर में आनन्द देता है। तमाल वृक्ष के नीचे लताओं के वितानों के ऊपर विमान हैं। वृन्दावन में न तो प्राचीर हैं और न प्रासाद हैं। न यहां कारागार है और न विषाद है+। वृन्दावन का वायु पवित्र और मधुर है, जिसके स्पर्श से त्रिताप दूर हो जाता है। इसको सम्पूर्ण अङ्गों से सेवन करने से त्रिताप-दहन दूर हो जाता है।'

श्री वृन्दा कहने लगी—'कृष्ण-कृष्ण-नाम रूप सुस्वाद सुगन्धित शीतल कोमल पुलकपूर्ण आम की जो सुधा है उसे जिह्वा में रखने से क्षुधा (तृष्णा) नहीं रहती।'

कृष्ण-कृष्ण कहकर सब सखियों ने गाया और लज्जा पाकर हरि ने मुख नीचा कर लिया।

+नास्ति तेषु जातिविद्यारूपकुलधनक्रियादिभेदः॥

नारद० भ० र०)

मानो एक भक्ति कर नाता ॥ (तु० रा०)

पुरुष नपुंसक नारि नर, जीव चराचर कोइ ।

सर्व भाव भजि कपट तजि, मोहि परम प्रिय सोइ ॥

(तुलसी० रा०)

सन्मुख होय जीव मोहि जब ही, कोटि जन्म अघ नासौं तबही॥

(तु० रा०)

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः ॥ (गी० ९)

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।

कौंतेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ (गी० ९)

वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः ।

सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥ (म० भा०)

परानुरक्त्या मामेव चिन्तयेद्यो ह्यतन्द्रितः ।

स्वाभेदेनैव मां नित्यं जानाति न विभेदतः ॥१५

मद्रूपत्वेन जीवानां चिन्तनं कुरुते तु यः ।

यथा स्वस्यात्मनि प्रीतिस्तथैव च परात्मनि ॥१६

चैतन्यस्य समानत्वान्न भेदं कुरुते तु यः ।

सर्वत्र वर्तमानां मां सर्वरूपां च सर्वदा ॥१७

नमते यजते चैवाप्याचांडालांतमीश्वरम् ।

न कुत्रापि द्रोहबुद्धिं कुरुते भेदवर्जनात् ॥१८

मत्स्थानदर्शनश्रद्धा मद्भक्तदर्शने तथा ।

मच्छास्त्रश्रवणे श्रद्धा मंत्रतंत्रादिषु प्रभो ॥१९
मयि प्रेमाकुलमती रोमांचिततनुः सदा ।
प्रेमाश्रुजलपूर्णाक्षः कंठगद्गदनिस्वनः ॥२०
अनन्येनैव भावेन पूजयेद्यो नगाधिप ।
मामीश्वरीं जगद्योनिं सर्वकारणकारणाम् ॥२१

❀ ❀ ❀

उच्चैर्गायंश्च नामानि ममैव खलु नृत्यति ।
अहंकारादिरहितो देहतादात्म्यवर्जितः ॥२४
प्रारब्धेन यथा यच्च क्रियते तत्तथा भवेत् ।
न मे चिन्तास्ति तत्रापि देहसंरक्षणादिषु ॥२५
इति भक्तिस्तु या प्रोक्ता परा भक्तिस्तु सा स्मृता ।
यस्यां देव्यतिरिक्तं तु न किंचिदपि भाव्यते ॥२६
इत्थं जाता परा भक्ति र्यस्य भूधर तत्त्वतः ।
तदैव तस्य चिन्मात्रे मद्रूपे विलयो भवेत् ॥२७

(देवी० गी० अ० ७)

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता, मानो एक भक्ति कर नाता ॥४
जाति पांति कुल धर्म बड़ाई, धन बल परिजन गुन चतुराई ॥५
भक्तिहीन नर सोहै कैसे, बिन जल वारिद देखिय जैसे ॥६

(तु० रा० अर०)

पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जातीना माश्रमोद्भवः
न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम् ॥१
यज्ञदानतपोभिर्वा वेदाध्ययनकर्म्मभिः ।
नैव द्रष्टुमहं शक्यो मद्भक्ति विमुखैःसदाः ॥२

श्री वृन्दा ने फिर कहा--'मैं आज शिक्षा-गुरु बनती हूं और तुम मेरी शिष्या हुई, मैं तुम्हारी मन्त्र-स्वामो * । हे सखिया, म

---

* दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्य्यात् पापस्य संक्षयम् ।
तस्माद् दीक्षेति सा प्रोक्ता देशिकैस्तत्वदर्शिभिः ॥

(भक्तिसदर्भ)

* * *

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं सिद्धिमूलं गुरोः कृपा ॥

(दै० मी० पृ० २१०)

* * *

गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद् रुशब्दस्तन्निरोधकः ।
अन्धकारनिरोधित्वाद गुरुरित्यभिधीयते ॥१६
गुकारः प्रथमो वर्णो मायादिगुणभासकः ।
रुकारो द्वितयो ब्रह्ममायाभ्रान्तिविमोचकः ॥१७
गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रेफः पापस्य दाहकः ।
उकारः शम्भुरित्युक्तस्त्रितयाऽऽत्मा गुरुः स्मृतः ॥१८

(गुरुगीता ११)

कृष्ण पूर्णतम

नित्यगुणो वनमाली यदपि शिखामणिरशेषनेतृणाम् ।
भक्तापेक्षिकमस्य त्रिविधत्वं लिख्यते तदपि ॥७५

बड़ाई नहीं करती हूं। मैं किसी न किसी प्रकार नाम-गुण गाती हूं। वृन्दारण्य का जो सुख चाहता है, वह कृष्ण नाम की दीक्षा बिना और कोई दीक्षा नहीं ले सकता है। कृष्ण नाम का ही मन्त्र और कृष्ण नाम का ही अमृत-भोग करने से क्षुधा (इच्छा) नहीं रहती है। वृन्दावन का यही परम रहस्य है, मैंने तुम्हें सिखा दिया और सीखने पर अवश्य समझ जाओगी। कृष्ण कृष्ण कृष्ण कह-कर सब सखियों ने गाया। हरि फिर नमित-मुख रहे।

❀ * *

वृन्दावन में प्रेमोत्सव जानकर देवी वीणापाणि भी जल्दी आ गईं और शिर चरणों में नीचा करके नमित-मुख खड़ी हो गईं।

राग और रागिनी मूर्तिमान होकर देवी के दोनों ओर खड़ी हुईं। नाना-रूपधारी चौंसठ रागिनी हाथों में पात्र (वाद्ययन्त्र) लेकर कतार में खड़ी हुईं। श्याम ने कहा—'संसार में ये भाव-

---

हरिः पूर्णतमः पूर्णतरः पूर्ण इति त्रिधा।
श्रेष्ठमध्यादिभिः शब्दैर्नाट्येयः परिपद्यते ॥७६
प्रकाशिताखिलगुणः स्मृतः पूर्णतमो बुधैः।
असर्वव्यंजकः पूर्णतरः पूर्णतरोऽल्पदर्शकः ॥७७
कृष्णस्य पूर्णतमता व्यक्ताऽभूद् गोकुलान्तरे।
पूर्णतरता द्वारका मथुराऽऽदिषु ॥ ७८ (?)

(भ० र० सिं० १७१)

मात्र हैं, किन्तु वृन्दावन में ये मूर्तिमान विराजती हैं। ये वृन्दावन में देहधारी होकर मन्दिरों में आनन्द वितरण करती हैं। ये कविता के रस को मन्थन करके पात्रों में भर-भर ला रही हैं। इनका वास यहीं है। जगत् में इनकी छाया-मात्र पाई जाती है। जीव के मन में जितनी-भर भी इच्छा वाञ्छा है, वह नहीं मिटतीं। इससे जीव सदा रोता रहता है। यदि जीव सब प्रकार भी सुख में रहे, तो भी उसे शान्ति नहीं मिलती है। जब जीव वृन्दावन में आता है, तब ही उसके दुःख छूटते हैं।'

अति मृदु स्वर से राधा ने कहा—'वृन्दावन में तुम्हारे बिना सुख नहीं है। जो तुम्हारे बिना वृन्दावन में रहता है, वह वंचित है, वंचित है, अति वंचित है×।' श्याम ने कृतज्ञ-नयन से लज्जित होकर मुख नीचा कर लिया और कृतार्थ होकर राधा की ओर देखा।

* * *

प्रेम का कलश परिपूर्ण है और श्याम ने आप ही सखियों को पा लिया। गोपियां सुख से उसका स्वाद लेने लगीं। उनको सम्पूर्ण द्रव्यों का स्वाद मिला। पल-पल में नये-नये रूप और एक-एक घूंट में नया-नया स्वाद। सब सुख की लहर में बहने लगीं। इस नाटक का गुरु श्री नन्ददुलाल है।

* * *

× अहो मधुपुरी धन्या वैकुण्ठाच्च गरीयसी।
बिना कृष्णप्रसादेन क्षणमेकं न तिष्ठति॥

आतिथ्य करके मदनमोहन ने मधुर स्वर से सब से कहा—'तुमने मुझे प्रसन्न किया है, जो वर मांगती हो, मैं प्रसन्नता से दे सकता हूं।' सखियां विचारने लगीं कि क्या वर मागें ? किस वस्तु का अभाव है और क्या मांगें ? रंगिनी ने हंसकर कहा—'सब के लिये मैं वर मांग लेती हूं। हम सब को जैसे तुम पुतली बनाकर तुम्हारे जी में आती है, खेलते हो, कभी तोड़ते हो, कभी बनाते हो, इसी प्रकार रात-दिन खेलते हो, उसी प्रकार हम भी तुम दोनों को लेकर जैसे हमारे मन में होगी, वैसे ही खेल करेंगी। कभी मिलावेंगी, कभी छुड़ावेंगी। कभी दोनों को लेकर कलह करावेंगी, कभी सुलावेंगी, कभी सजावेंगी और कभी जितना मन आवेगा, उतना खिलावेंगी। जिस प्रकार* तुम जीवों को लेकर खेलते हो, उसी प्रकार हम भी तुम दोनों को लेकर खेलें।'

माधव ने 'तथास्तु,+ तथास्तु' कहा। 'हम को ले जाकर जो खेल तुम खेलोगी, जैसा भाव मन में लेकर खेलोगी, निश्चय हम दोनों उसमें विद्यमान रहेंगे। कोई मन्दिर में, कोई हृदय में, जिस

---

* ललित-गति-विलास-वल्गुहास-प्रणय-निरीक्षण-कल्पितोरुमानाः।
कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः प्रकृतिमगन् किल यस्य गोपवध्वः॥
यथात्मनि तथा देवे (भीष्मस्तव)

\+ मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते।
दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः॥
(भ० रत्नावली १०—२२—४४—पृ—३१)

की जैसी इच्छा होगी, कल्पना करके खेल सजाना, हमारे वर से सब सत्य होगा।'

यह कहकर माधव मुख नीचा करके चुप हो रहे और उनके नयनों से मोती के-से बिन्दु गिर रहे थे। जिनके मन में ब्रह्माण्ड भासमान होता है, वे क्या सोच रहे थे, करके संसार के जीव कैसे जानें! इस संसार में कौन कह सकता है कि श्याम क्यों रोते हैं और क्यों हंसते हैं! सब क्षुब्ध होकर श्याम के मुख को देख रहे थे और कोई बोल न सका। सब के दुःख को देखकर दोनों आंखों को पोंछकर गुणमणि कहने लगे कि मुझे प्रसन्न करने को जीव क्या नहीं करते, यह सोचकर मैं कह नहीं सकता कि मेरे मन में क्या होता है।* अति क्षुद्र जीव कुछ भी नहीं जानते। मैं तो ब्रह्माण्डोदर हूं। ऐसे मेरे लिये च्यूड़ा गुड़ रखकर कहते हैं, 'ले खा! जल्दी थाम'। मुझको प्रसन्न करने को मुझे रथ में रखते हैं और खींचते हैं। मैं तुझसे अधिक क्या कहूं, उनकी चेष्टा से मेरा कलेजा फट जाता है। जो लोग बड़े ज्ञानी हैं× और बलवान, धनी

---

* ये दारागारपुत्राप्तप्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥ (भा०)

× भक्तेस्तु या पराकाष्ठा सैव ज्ञानं प्रकीर्तितम्। (देवी भा० ७-७)
वैराग्यस्य च सीमा सा ज्ञाने तदुभयं यतः ॥२८॥ दे गी० ७)
ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम्
स्थाने स्थिता श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिर्ये प्रायशोऽ

हैं और ध्यान में विश्व-रूप देखते हैं, उनकी चेष्टा से मेरा कुछ भी आता-जाता नहीं, और वे मुझे दुःख भी नहीं देते हैं। परन्तु मेरी भक्त जितनी भी हैं, उनको समझाना लगता ही नहीं कि मैं सर्वेश्वर हूं और सारा ब्रह्मराड मेरा है, वे मानती ही नहीं। वे मुझे खिलाती हैं, पिलाती हैं, सुलाती हैं और कोठरी में रखती हैं। मेरा व्याह करके आनन्द में मग्न होती हैं और करताली देकर नाचती हैं। इन्होंने ही मुझे ऋणी बना दिया है, मैं इनसे मुक्त नहीं हो सकता हूं। इनके यत्न से मैं अस्थिर मन होकर सदा झुर-झुर कर मरता हूं। मुझे तो कोई भय से पुकारता नहीं, मेरे भक्तों को पुकारते हैं। भक्तों के पैर पकड़कर अनुनय-विनय करते हैं कि मेरा उद्धार करो। सर्वेश्वर को तो सभी पूजते हैं, पर जो भक्तों को पूजते हैं, उनके दैन्य को धन्य है। सत्य ही अकिंचन को मैं पहले दर्शन देता हूं।÷ ज्ञानी बलवान तो ध्यान में विश्व-रूप देखते हैं। वह तो बड़े लोगों की बातें हैं, परन्तु दरिद्र भक्त के

जितऽजितोऽप्यसितैस्त्रिलोक्याम् ॥ (भा-१०-१४-३)

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।

न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥(१०-१४-१६)भा०

÷ मद्भक्तानाञ्च ये भक्तास्ते मे भक्ततमाः स्मृताः। दै० मी० पृ० ४

मोरे मन प्रभु अस विश्वासा राम तें अधिक राम के दासा ॥१६॥

मम माया संभव संसारा जीव चराचर विधि प्रकारा।३

सब मम प्रिय सब मम उपजाये सब से अधिक मनुज मोहे भाये ॥४

पुकारने पर उसको व्यथा नहीं दे सकता हूं। दुःखी, भक्त और धनी के पुकारने पर मैं क्या करूं भाई, जैसा तुम करते हो, वैसा ही मैं भी करता हूं। पहले दुःखी के समीप जाता हूं।'

* * *

तब श्रीमती की ओर देखकर कहने लगे—'हे प्रिये, तेरे मन में क्या है ? मेरे मन में आनन्द नहीं समा रहा है। मैं चाहता हूं कि तुम्हें भी कुछ दूं। तुम तो कृष्ण-प्राण हो, तुम्हें कुछ नहीं चाहिये, इससे मुझे बड़ा दुःख होता है।'

उस समय श्रीमती गले में हाथ डालकर रोती हुई चरणों में गिर पड़ी। राधा का रोदन और कृष्ण की वंशी, कौन किसको जीतेगा, यह नहीं कहा जा सकता। राधा के रोने से भुवन द्रवीभूत हो गया, स्वयं मुकुन्द भी अस्थिर हो उठे। जिसने वह क्रन्दन सुना, क्या उसका देह-धर्म रह सकता है ? सखियों ने 'सम्हालो-सम्हालो' कहा, नहीं तो भुवन डूबता है। तरंग उठते

तेहि मंह द्विज द्विज मह स्रुतिधारी तिन मह निगम धर्म अनुसारी ५
तिन मह प्रिय विरक्त पुनि ज्ञानी ज्ञानिहु तें अति प्रिय विज्ञानी ॥
तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा तेहिं गति मोरि न दूसरि आसा।७
पुनि पुनि सत्य कहौं तोहि पाहीं मोहिं सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं ॥८
भक्ति हीन विरंचि किन होई सब जीवन सम प्रिय मोहि सोई ।९
भक्तिवंत अति नीचौ प्राणी मोहि प्रानप्रिय सुनु मम बानी ॥१०

(तु० रा० उ०)

ही कृष्ण ने थाम लिया और सैकड़ों बार मुख को चूमा और प्रिया को अपनी गोद में सुलाया। पीताम्बर से वायु करने लगे। रह २ कर कितने ही तरङ्ग उठते थे प्रिया का मुख देखकर मुकुंद झुरने लगे बहुत यत्न से धैर्य्य धरकर बन्धु के मुख को देखकर वह मृदु स्वर से कहने लगी—'मेरे मन में बहुत दिनों से दुःख है, आज अपने मन का दुःख तुमसे कहती हूं। जीव तुम्हें भूल गये हैं और तुम्हारा संसार छार छार हो गया है। और दुःख से कातर होकर सदा रोते हैं। जीवों को अभय-दान करो। तुमको भयंकर समझकर तुमसे डरते हैं+ रात-दिन त्राहि-त्राहि करते हैं। तुम क्या वस्तु हो, इसका उनको परिचय दो, यही वर तुमसे मांगती हूं।'

प्रभु ने कहा—'यह वांछा केवल तुम्हारे उपयुक्त है, तुम्हारी इच्छा से जीव मुक्त होवेंगे। इससे सब देशों में अवतार होवेंगे। जिसका जितना अधिकार होगा, उस देश में वैसा ही अवतार होगा। जीवों को व्रज-रस कभी नहीं मिला, इस बार वही रस बांटूंगा। वह रस मेरा अति गुप्त धन है, उसको मैं अपने आप लाकर वितरण करूंगा। और कार्य्य मेरे अंशों द्वारा होवेंगे।* प्रेम-वितरण दूसरों के द्वारा नहीं हो सकता है। मैं नवद्वीप में जन्म

+ तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः॥ (भा० ८-७-४४)

* अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

ग्रहण करूंगा। अपने आप प्रेम में मग्न होकर औरों को धर्म्म सिखाऊंगा और घर-घर जाकर प्रेम-रस दूंगा और तेरे ऋण से मुक्त होऊंगा।'

यदि गौराङ्ग उदय न होते, तब बलराम के लिये क्या उपाय होता ?

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ (गी० ४-६-७-८)

साधु का स्वप्न भंग

इस समय साधु का स्वप्न भङ्ग हुआ। जो उसने मन में समझा था उसका दर्शन हुआ। वह मन ही मन समझने लगा कि मैंने सब जान तो लिया, परन्तु इससे मुझे क्या लाभ हुआ। मैंने जान तो लिया, परन्तु उसे पाया तो नहीं! इस वृथा ज्ञान से मुझे क्या लाभ हुआ। वह सोचने लगा, दर्शन तो हुए नहीं। सब छोड़कर, एकाग्र होकर, आँखें खोल कर पुकारने लगा कि 'हे भक्तवत्सल, मुझे दर्शन दो§। लो, मैं इस योगासन में बैठा,

---

§ एह्येहि वत्स ! नवनीरद कोमलाङ्ग !
चुम्बामि मूर्द्धनि चिराय परिष्वजे त्वाम् ।
आरोप्य वा हृदि दिवानिशमुद्वहामि ।
वन्देऽथवा चरणपुष्करकद्वयन्ते ॥ (दै० मी० पृ० ५४)

हे देव हे दयित हे भुवनैकबन्धो हे कृष्ण हे चपल हे करुणैकसिन्धो !
हे नाथ हे...... हे नयनाभिराम हा हा कदानुभवितासि पदं दृशोर्मे । (श्रीकृष्णकर्णामृते ४४ श्लो)

अमून्यधन्यानि दिनान्तराणि हरे ! त्वदालोकनमन्तरेण ।
अनाथबन्धो करुणैकसिन्धो हा हन्त हा हन्त कथं नयामि ।
(कृष्णकर्णामृते ४१ श्लो)

जा के हृदय भक्ति जस प्रीती । प्रभु तेहि प्रकट सदा यह रीति ॥

अब जब तक दर्शन न दोगे मैं नहीं उठूंगा। तुम पर्दे में बैठकर मेरा दुःख तो देखते हो परन्तु पुकारने पर नहीं आते हो। यह तुम्हारी कैसी रीति है मैं नहीं समझ सकता हूं। दर्शन देने से तुम्हारी क्या हानि होती है ?'

ऐसा कहते ही चित्त अति सूक्ष्म हो गया और अति सूक्ष्म होकर श्रीपद का स्पर्श हुआ।

अब सन्मुख उसने एक तेजो-राशि देखी। वह करोड़ों चन्द्र के समान नयनों को आनन्द देने वाली ज्योति थी। उस तेज से आंखें झुलस गईं। कुछ मूर्छा खाकर चैतन्य हुआ तो उसकी आंखें तो शीतल हुईं, परन्तु हृदय नहीं हुआ। वह कहने लगा कि 'तुम्हारे हृदय में दया नहीं है। बाजी दिखा कर मुझे वंचना चाहते हो। मैं तो भक्ति और प्रीति करूंगा। प्रकाश से तो केवल आंखों की तृप्ति होती है। मेरे आगे आकार रख कर खड़े

अग जग मय सब रहित विरागी प्रेम तें प्रगट होहिं जिमि आगी !
हरि व्यापक सर्वत्र समाना, प्रेम तें प्रगट होहि मैं जाना।६
देस काल दिसि विदिसिहु माहीं, कहहु सो कहां जहां प्रभु नाहीं।५
(वा) रा० तु०

होओ+ तभी तो तुम्हारा और मेरा सम्पर्क हो सकेगा ।'

यह कहते ही साधु ने देखा कि अनन्त अंग हैं, कोटि २ मुख और कोटि-कोटि हाथ हैं× और जिस भी अंग को देखे सब ही अनन्त । साधु ने कहा, "बाप, यह क्या करते हो । इस रूप को देख कर तो मुझे भय होता है । इस रूप से आने पर तो मुझे भय होता है । इस रूप से आने पर तो मैं भय से मर जाऊंगा । तुम को देख कर तो मैं भय से भाग जाऊंगा । हे नाथ, क्षमा करो और चतुरता छोड़ो । जिस रूप से मुझे सुख हो÷ ऐसा रूप

+न प्रेमगन्धोऽस्ति दरोपि मे हरौ क्रन्दामि सौभाग्यभवं प्रकाशितुम् ।
वंशीविलास्याननलोकनं विना बिभर्ति यत्प्राण-पतङ्गकान् वृथा ॥

× सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं सर्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥ (यजु० ३१ अ)

÷ अनेकबाहूदरवक्त्र नेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वरविश्वरूपम् ॥
(गी०-११-१६)

अदृष्टपूर्व्वं हृषितोस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास (गी० ११-४५)

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥
(क० क्ट० (रास पं० गूढार्थदीप पृ० १७०)

रख कर आओ।' इससे वह रूप ज्योति में मिल गया और साधु अति दुःखित होकर रोने लगा। कहने लगा, 'आओ आओ, नाथ ऐसा रूप रक्खो जिस से मैं तुम से प्रेम कर सकूं। जो इच्छा हो। यदि पूजा चाहो और स्नेह चाहो तो मेरे ही समान होओ।‡

साधु विकल होकर रोने लगा! उसके रोने से वह निराकार ज्योति द्रवित हुई और वह तेजो-राशि तेजोमय जल हो गया। साधु हुंकार छोड़ कर कहता गया, 'हे नाथ, आओ २।' भक्त के क्रन्दन से वह जल लहराने लगा और उसमें झलमल करते हुए तरङ्ग उठने लगे। वह नयन-शीतलकारी जल नाना वर्णा का था। फिर साधु "आओ आओ" कहकर हुंकार छोड़ने लगा। उस तेजोमय जल से एक मूर्ति उठी। देखा तो वह मूर्ति अति मोहनी*

---

‡ किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते॥(गी०११-४६)
श्रीकृष्णरूपादि-निषेवणं विना व्यर्थानि मेऽहान्यखिलेन्द्रियाण्यलम्।
पाषाणशुष्केन्धनभारकान्यहो बिभर्मि वा तानि कथं हतत्रपः॥

* यथा देहान्तरप्राप्तेः कारणं भावना नृणाम्।
विषयं ध्यायतः पुंसो विषये रमते मनः॥२४
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येवात्र विलीयते।
सर्वज्ञत्वं परेशत्वं सर्वसम्पूर्णशक्तिता॥
अनन्तशक्तिमत्त्वं च मदनुस्मरणाद्भवेत्॥२५॥

(योगशिखोपनिशत्)

सन्मुख है, उसका अंग तेजोमय और नयन मुदित ! साधु मूर्ति की ओर देखता रहा और उसके आनन्दाश्रु बह रहे थे। साधु धीरे २ कहने लगा, "हे प्रिय बन्धु, सुन, एक वेर दोनों आंखें तो खोल। मैंने सुन रक्खा है कि तेरी ये दोनों आंखें अरुण वर्ण और प्रेम-निकेतन हैं। एक बार इस दास की ओर तो देख। हम दोनों आंख-से-आंख मिलावें।' अब वह मूर्ति कुछ मुस्कुराई और कांपने लगी॥। उसमें प्राण आया और वह सांस लेने लगी।

मूर्ति ने आंखें खोलीं परन्तु अचेत की भांति। फिर देखते-देखते नयन जीवित हुए। नयनों से नयन मिले और साधु स्तब्ध होकर दर्शन करने लगा॥।

कृष्ण दर्शन में एक वाधा यह होती है§ कि रूप से मोह होता है जिससे देखा नहीं जा सकता है। साधु ने संकल्प करके

॥ देवतायतनानि कम्पन्ते हसन्ति दवतप्रतिमा रुदन्ति नृत्यन्ति स्फुरन्ति स्विद्यन्त्युन्मीलन्ति (सामवेद-ब्राह्मण)

॥ यं भावयोग-परिभावित-हृत्सरोज
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम्।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय। (भागवत)

§ देखत बनै न देखते बिन देखे अकुलांय। (विहारी)

अपना चैतन्य रक्खा और अति कष्ट से कहने लगा, 'क्या तुम्हीं मेरे सदा के बन्धु हो ? क्या तुम्हीं वह करुणा-सिन्धु हो ? क्या तुम्ही ने मुझे सिरजा था ? तुम्हीं ने क्या हृदय में स्नेह-बिन्दु दिया है ? आज यह किस शुभ दिन का उदय हुआ है ? क्या तुमसे मेरा नया परिचय हुआ है ? क्या आज मेरा व्रत सिद्ध हुआ है ? हे बन्धो, उत्तर दो, मेरा प्राण विकल हो रहा है।"

देवता बोलने को हुआ और थोड़े थोड़े होंठ कांपने लगे। उसने सप्रेम नयनों से साधु की ओर देखा और न जाने क्या सोचकर ईषत् हंसा। देवता ने अति मृदु स्वर से कहा, हे साधु, तेरी जो इच्छा हो वर मांगले। वह सुस्वर संगीत के समान और अमृत के समान था, जिससे साधु के कान भर गये।

साधु ने कहा—तुम तो मेरे सन्मुख ही हो, क्या मांगू। यह मेरी इच्छा नहीं है कि मैं बड़ा होऊं। अतः हे दयामय, मुझे ऐसा वर दीजिये जिससे तुम और मैं सदा+ एक रहें।

हे पाठको, सुनो, मेरे उत्तर को सुनो। यदि तुमको विभु वर देना चाहें तो तुम क्या वर लोगे। अपने चित्त में सोच देखो। खूब सोच २ कर देखो तो समझ जाओगे कि जिसको तुम चाहोगे वह चिरस्थायी सुख नहीं है। जिसको तुम बड़ा प्रसाद

+ त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥ (भा०)

समझते हो वह आस्वाद करने पर क्षय× हो जावेगा। एकमात्र सुख तो भगवान् का संग है, जिस सुख का कभी भंग नहीं होता है। नित्य नित्य नवराग, नित्य नित्य नये २ खेल, आनन्द का समुद्र वह मनोहर कृष्णचन्द्र।

तब भुवनमोहन ने साधु की ओर स्नेह-जल-पूर्ण अरुणिमा लिये हुये नयनों से देखा। दोनों एक दूसरे को देखते रहे। और नयनों से धारा बहती रही। आंखें पोंछ कर कहने लगे, "हे साधु, सुन आज इतने दिन पीछे तूने मुझे स्मरण किया है? मैं कभी भी तुझको नहीं भूला और बहुत दिनों से तेरा मार्ग देख

× स होवाच वा अरे पत्युः कामाय पतिः.........अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।५

(बृह० उ० २ अ०)

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥६-२२
यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥ (६-२० गी०)

रहा था। जो मुझ को स्नेह के ही कारण चाहे* ऐसा, भुवन खोज के भी, मैं किसी को भी नहीं देखता हूं। तुम मेरे संग रहना चाहते हो, इससे मैं समझता हूं मैं बड़ा भाग्यवान हूं। तुम सब को तो मैंने अपने २ (निज जन) दिये हैं। केवल मैं ही इस संसार में अकेला हूं। तुम मेरे संग रहोगे तो हम दो जने हो जावेंगे और बातें करते-करते आनन्द से समय व्यतीत करेंगे। अब कहो, तुम्हारे संग मेरा क्या सम्बन्ध होना चाहिये। जो तुम्हारी इच्छा हो÷ मैं इसी क्षण हो जाऊं—"। साधु आनन्द से विह्वल हो गया।

साधु ने कहा — मैं क्या कहूं, तुम्हीं सब कह रहे हो। तब भगवान ने कहा—मेरा संसार तुम्हारे लिये है। मैं संसार बनाऊंगा सम्बन्ध रचकर। या तो पिता होओ या पुत्र, या स्वामी, वा कलत्र, वा भाई, य' सखा, जो तुम्हारी इच्छा हो। तुम्हारा जो भाव होगा वही मेरा भी होगा—

साधु ने कहा – कहो-कहो-कहो, मैं क्या कहूं, जो तुम कहो‖ मैं वही होऊं— तो भी एक बात तुम से कहता हूं। तुम को मैं पिता

---

* मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः ॥ (गी० ७-३)

÷ ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। (गी०)

‖ श्रद्धामयोयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।
यो यो यां यां तनु भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ॥ (गी० १७-२)

माता नहीं कह सकता। पिता माता के संग जो प्रेम है उससे मेरी प्यास नहीं बुझेगी।" तब प्रभु ने मधुर वचन कहे:—

तुम को मैंने सिरजा। मैं सब छोड़कर निराकार था। रो-रो कर तूने मुझे चिता दिया। और रो-रो कर मेरा आकर्षण किया। जैसे मैंने तुझे सिरजा था, उसी प्रकार तूने मुझे सिरजा है। मैं तेरा पुत्र और तू मेरा पिता हुआ। तुमने अपने ही मुख से कहा था* कि मैं तुम्हें अपनी गोद में लेकर सुख से फिरूंगा। अभी मैं तेरी गोद में जाता हूं और अपने पिता की गोद में सदा रहूंगा। तुम्हारा चाबा हुआ पान खाऊंगा और निश्चिन्त होकर तुम्हारी गोद में सो रहूंगा—पिता को आंख भर देखूंगा और तेरे पीछे तेरी गठरी लेकर चलूंगा। ऐसा कहकर साधु को गोद में उठा लिया और साधु उसकी गोद में अचेतन हो गया। क्षण भर साधु अचेतन रहा। फिर कुछ

तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्।७-२१
यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवेति कौंतेय सदा तद्भावभावितः॥८-६

* क्या कहा था इसके लिये देखो पृ० ३७ पंक्ति ८

एह्येहि वत्स! नवनीरद कोमलाङ्ग।
चुम्बामि मूर्धनि चिराय परिष्वजे त्वाम्।
आरोप्य वा हृदि दिवानिशमुद्वहामि
वन्देऽथवा चरणपुष्करकद्वयन्ते॥ (दै० मी० पृ० ५४)

पीछे चैतन्य हुआ तो उसने देखा कि एक सुन्दर बालक † उसको पंखा कर रहा है।

*　　*　　*

---

† साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो रूपकल्पना। (दे० मा० पृ० २८६)
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ॥
भाववश्य भगवान् सुख-निधान करुणा-भवन।
तजि ममता मद मान भजिय राम सीतारमन ॥ १०
(तु० रा० उ०)
भावेन लभ्यते सर्व्वं भावेन देवदर्शनम्।
भावेन परमं ज्ञानं तस्माद्भावावलम्बनम् ॥
भावात् परतरं नास्ति येनानुग्रहवान् भवेत्।
भावादनुग्रहप्राप्तिरनुग्रहान्महासुखी ॥
भावात्परतरं नास्ति त्रैलोक्ये सिद्धिमिच्छताम्।
भावं हि परमं ज्ञानं ब्रह्मज्ञानमनुत्तमम् ॥
भावेन लभ्यते सर्वं भावाधीनमिदं जगत्।
भावं विना महाकाल ! न सिद्धिर्जायते क्वचित् ॥
त्वं भाव-योग-परिभावित-हृत्सरोज
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ॥
यद्यद्धिया त उरगाय विभावयन्ति।
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥ (दे० मी० पृ० २२१)

देखा तो उसके सब हाथ पैर उस ही के समान थे। जैसा उसका निज पुत्र था वैसा ही* वह सम्पूर्ण था। वह परम सुन्दर था, उसके गले में वनमाला लटक रही थी और नाक में बेला की बेसर थी। साधु ने उसे "बाप-बाप" कह कर गोद में ले लिया और 'ये भगवान् हैं' भूल गया। वह छाती से लगाकर घर को लौट आया और गोपाल को पाकर सब छोड़ दिया॥।

बलराम कहता है — "हे भक्तगणो, सुनो तुम शिर पीट कर भगवान् को नहीं पा सकते हो। शिर पीट कर उसकी सम्पत्ति मिलेगी परन्तु कृष्णचन्द्र को नहीं पा सकोगे। उससे स्नेह करो

सू० सर्व्वत्र फलैक्यं भावमुख्यात्।

भाव सहित खोजैं जेइ प्रानी—

पाव भक्ति मनि सब सुख खानी ॥१२॥ (तु० रा० उ०)

भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते।

स्वभाव-गुण-मार्गेण पुंसां भावो हि भिद्यते॥

(भावो मनोरुचिः) (भगवन्नाम कौमुदी० पृ० ७६)

* अहं ते भविता पुत्र (भगवत्परंच) (स्कन्दे)

॥ धर्म्मानन्यान् परित्यज्य मामेव भज निश्चयात्।

यादृशी यादृशी श्रद्धा सिद्धिर्भवति तादृशी ॥६६

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। (ब्र० स०)

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः (गी० १८-६६)

तभी वह मिलेगा। गौराङ्ग का भजन करो तब यह सब सीख सकते हो। हे शचीनन्दन, मैं तुम्हारा क्या करूं, तुमने मुझे बड़ा सुख दिया है। मैं मत्त बना हुआ था और कुछ नहीं जानता था। हे गुण-मणि, तुम आप ही आप आये। क्यों आये, इसको तुम ही जानो। तुमने आकर इस जले प्राण को शीतल कर दिया। मेरा देह बड़ा रोगी और चित्त क्षुभित है। मैं तुम्हारी सेवा नहीं कर सकता हूं, इससे मुझे कोई दुःख नहीं, क्योंकि तुम मेरे हृदय की सब ही जानते हो। मैं कभी मन के दुःख से रोता हूं, पर यह तो जीव का धर्म है, उल्लङ्घित नहीं हो सकता है। इस समय रोकर मन में दुःख होता है। न जाने मैंने तुम्हें कितने दुःख दिये हैं। बड़े ज्ञानी लोग मुझे समझाते हैं कि गौराङ्ग मनुष्य है, भगवान नहीं है। किन्तु वे मेरे मन को नहीं जानते हैं, मैंने क्यों आत्म-समर्पण किया है। हे गौराङ्ग, सुनो, तुमने मेरा मन प्राण खींच लिया है। मुझे तुम्हारे अतिरिक्त कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। मैंने तुम्हारे चरणों में आश्रय लिया है। जहां तुम हो वहीं रहूंगा। जहां तुम जाओगे मैं भी जाऊंगा।"

हंसकर गौराङ्ग ने कहा—"दादा मैंने तुम्हें विश्वरूप सौंप दिया। दादा, विश्वरूप बलराम हैं। इसलिये आज से तेरा नाम बलरामदास हुआ।"

हरिः ॐ

श्रीगणेशाय नमः

परिशिष्ट सं० १

ऋग्वेदान्तर्गत-राधिकोपनिषद् ।

ॐ अथोर्ध्वमन्थिन ऋषयः सनकाद्या भगवंतं हिरण्यगर्भमुपासित्वोचुः देव कः परमो देवः का वा तच्छक्तयः तासु च का वरीयसी भवतीति सृष्टिहेतुभूता च केति । स होवाच । हे पुत्रकाः शृणुतेदं ह वात्र गुह्याद् गुह्यतरमप्रकाश्यं यस्मै कस्मै न देयम् । स्निग्धाय ब्रह्मवादिने गुरुभक्ताय देयमन्यथा दातुर्महदघं भवतीति ॥ कृष्णो ह वै हरिः परमो देवः षड्विधैश्वर्यपरिपूर्णो भगवान् गोपी-गोपवृन्दाऽऽराधितो वृन्दावनाधिनाथः स एक एवेश्वरः । तस्य ह वै द्वे तनू नारायणोऽखिलब्रह्माण्डाधिपतिरेकेशः प्रकृतेः प्राचीनो नित्यः एवं हि तस्य शक्तयस्त्वनेकधा आह्लादिनी संधिनी ज्ञानेच्छा क्रियाद्या बहुविधाः शक्तयः । तास्वाह्लादिनी वरीयसी परमान्तरङ्गभूता राधा । कृष्णेनाराध्यते इति राधा । कृष्णं समाराधयति सदेति राधिका गन्धर्वेति व्यपदिश्यत इति । अस्या एव कायव्यूहरूपा गोप्यो महिष्यः । श्रीश्चेति । येयं राधाऽयश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहेनैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूता । राधा वै हरेः सर्वेश्वरी सर्वविद्या सनातनी कृष्णप्राणाधिदेवी चेति विविक्ते देवाः स्तुवन्ति यस्या गतिं ब्रह्मभागा वदन्ति ॥ महिमाऽस्याः स्वायुर्मानेनापि कालेन वक्तुं न

चोत्सहे। सैव यस्य प्रसीदति तस्य करतलावकलितं परमं धामेति। एतामविज्ञाय यः कृष्णामाराधयितुमिच्छति स मूढतमो मूढतमश्चेति। अथैतानि नामानि गायन्ति श्रुतयः—

राधा राधेश्वरी रम्या कृष्णमन्त्राधिदेवता। सर्वाद्या सर्ववन्द्या च वृन्दावनविहारिणी ॥१॥ वृन्दाराध्या रमाऽशेषगोपी-मण्डल-पूजिता । सत्या सत्यपरा सत्यभामा श्रीकृष्णवल्लभा ॥२॥ वृषभानुसुता गोपी मूलप्रकृतिरीश्वरी। गन्धर्वा राधिका रम्या रुक्मिणी परमेश्वरी ॥३॥ परात्परतरा पूर्णा पूर्णचन्द्रनिभानना। भुक्ति-मुक्ति-प्रदा नित्यं भव-व्याधि-विनाशिनी ॥४॥ इत्येतानि नामानि यः पठेत्स जीवन्मुक्तो भवति। इत्याह हिरण्यगर्भो भगवानिति ॥ संधिनी तु धाम-भूषण-शय्यासनादि मित्र-भृत्यादि-रूपेण परिणाता मृत्युलोकावतरणकाले मातृपितृरूपेण चाऽसीदित्यनेकावतारकारणा। ज्ञानशक्तिस्तु क्षेत्रज्ञशक्तिरिति। इच्छान्तर्भूता माया। सत्त्वरजतमोमयी बहिरङ्गा जगत्कारणभूता सैवाऽविद्यारूपेण जीवबन्धनभूता। क्रियाशक्तिस्तु लीलाशक्तिरिति।

य इमामुपनिषदमधीते सोऽव्रती व्रती भवति स वायुपूतो भवति। स सर्वपूतो भवति। राधाकृष्णप्रियो भवति। स यावच्चक्षुःपातं पङ्क्ती पुनाति।

ॐ तत्सदिति श्रीमदृग्वेदे ब्रह्मभागे परमरहस्ये राधिकोपनिषद् ॥

(क० पृ० ४८५-६-श्रीकृष्णाङ्क)

श्री राधा

वसुरुवाच—

योऽसौ निरंजनो देवश्चित्स्वरूपी जनार्दनः ।
ज्योतिरूपो महाभागे कृष्णस्तत्रज्जतयां श्रृणु ॥१॥
गोलोके स विभुर्नित्यं ज्योतिरभ्यन्तरे स्थितः ।
एक एव परं ब्रह्म दृश्यादृश्य-स्वरूपधृक् ॥२॥
तस्मिंल्लोके तु गावो हि गोपा गोप्यश्च मोहिनि ।
वृन्दावनं पूर्वतश्च शतश्रृङ्गस्तथा सरित् ॥३॥
विरजा नाम वृक्षाश्च पक्षिणश्च पृथग्विधाः ।
लये सुप्ता गवाद्यस्तु न जानन्ति विभुं परम् ॥५॥
ज्योतिःसमूहान्तरतः कमनीयवपुर्द्धरः ।
किशोरो जलदश्यामः पीतकौशांबरावृतः ॥६॥
द्विभुजो मुरलीहस्तः किरीटादिविभूषितः ।
आस्ते कैवल्यनाथस्तु राधावक्षस्थलोज्ज्वलः ॥७॥
प्राणाधिका प्रियतमा सा राधाऽराधिता यया ।
सुवर्णवर्णा देवी चिद्रूपा प्रकृतेः परा ॥८॥
तयोर्देहस्थयो र्नास्ति भेदो नित्यस्वरूपयोः ।
धावल्यदुग्धयो र्यद्वत्पृथिवीगंधयोर्यथा ॥९॥
तत्कारणं कारणानां निर्देष्टुं नैव शक्यते ।
वेदानिर्वचनीयं यत्तद्वक्तुं नैव शक्यते ॥१०॥
ज्योतिरंतरतः प्रोतं यद्रूप श्यामसुन्दरम् ।

शिवेन दृष्टं तद्रूपं कदाचित्स्याद् ध्यानगोचरम् ॥११॥
ततः प्रभृति जानंति गोलोकाख्यानमीप्सितम् ।
नारदाद्या विधिसुते सनकाद्याश्च योगिनः ॥१२॥
श्रुतं ध्यायन्ति तं सर्वे न तै र्दृष्टं कदाचन ।
साक्षाद्द्रष्टुं तु तपते शिवोऽद्यापि सनातनः ॥१३॥
नैव पश्यति तद्रूपं ध्यायति ध्यानगोचरम् ।
कदाचित्क्रीडतोर्देवि राधामाधवयोर्वपुः ॥१४॥
द्विधाभूतमभूत्तत्र वामाङ्गं तु चतुर्भुजम् ।
समानरूपावयवं समानांबरभूषणम् ॥१५॥
तद्वद्राधास्वरूपं च द्विधारूपमभूत्सति ।
ताभ्यां दृष्टं तत्स्वरूपं साक्षात्तावपि तत्समौ ॥१६॥
चतुर्भुजं तु यद्रूपं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम् ।
तद्दृष्टं तु शिवाद्यैश्च भक्तवृन्दैरनेकशः ॥१७॥
सकृत्तु ब्रह्मणा दृष्टं देवि रूपं चतुर्भुजम् ।
सृष्टिकार्यप्रमुग्धेन दर्शितं कृपया स्वयम् ॥१८॥
लक्ष्म्या सनत्कुमाराय वर्णितं विधिनन्दिनि ।
विष्वक्सेनाय तूद्दिष्टं स्वरूपं तत्वमूर्तये ॥१९॥
नारायणेन विधिजे ततो ध्यायन्ति सर्वशः ।
धर्मपुत्रेण देवेशि नारदाय समीरितम् ॥२०॥
गोलोकवर्णनं सर्वं राधाकृष्णमयं तथा ।
या तु राधा विधिसुते देवी देववरार्चिता ॥२१॥
सा स्वयं शिवरूपाऽभूत्कौतुकेन वरानने ।

तद्दृष्ट्वा सहसाश्चर्यं कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥२२॥
मूलप्रकृतिरूपं तु दध्रे तत्समयोचितम् ।
विपरीतं वपुर्धृत्वा वासुदेवो मुदान्वितः ॥२३॥
ध्यायेदहर्निशं देवं दुर्गारूपधरं हरिम् ।
या राधा सैव लक्ष्मीस्तु सावित्री च सरस्वती ॥२४॥
गंगा च ब्रह्मतनये नैव भेदोस्ति वस्तुतः ।
पञ्चधा सा स्थिता विद्या कामधेनुस्वरूपिणी ॥ २५ ॥
यः कृष्णो राधिकानाथः स लक्ष्मीशः प्रकीर्तितः ।
स एव ब्रह्मरूपश्च धर्मो नारायणस्तथा ॥ २६ ॥
एवं तु पञ्चधा-रूपमास्थितो भगवानजः ।
कार्य-कारण-रूपोऽसौ ध्यायन्ति जगतीतले ॥ २७ ॥
तेन वै प्रेमसंबद्धो विषयी यः शिवः स तु ।
राधेशं राधिकारूपं स्वयं सच्चित्सुखात्मकम् ॥ २८ ॥
देवतेजःसमुद्भूता मूलप्रकृतिरीश्वरी ।
कृपारूपा महाभागे दैत्यसंहारकारिणी ॥ २९ ॥
सती दक्षसुता भूत्वा विषयेशं शिवंश्रिता ।
भर्तुर्विनिंदनं श्रुत्वा सती त्यक्त्वा कलेवरम् ॥ ३० ॥
जज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मैनायां पुनरेव च ।
ततस्तप्त्वा तपो भद्रे शिवं प्राप शिवप्रदा ॥ ३१ ॥
वस्तुतः कृष्ण-राधासौ शिवमोहनतत्परा ।
जगदंबास्वरूपा च यतो माया स्वयं विभुः ॥ ३२ ॥
अतएव ब्रह्मसुते स्कन्दो गणपतिस्तथा ।

स्वयं कृष्णो गणपतिः स्वयं स्कन्दः शिवोऽभवत् ॥ ३३ ॥
शिवमेव वदन्त्येके राधारूपं समाश्रितम् ।
कृष्णावक्षस्थलस्थानं तयोर्भेदो न लक्ष्यते ॥ ३४ ॥
कृष्णो वा मूलप्रकृतिः शिवो वा राधिका स्वयम् ।
एकं वा मिथुनं वापि न केनापीति निश्चितम् ॥ ३५ ॥
अनिर्देश्यं तु यद्वस्तु तन्निर्देष्टुं न च क्षमः ।
उपलक्षणमेतद्धि यन्निर्देशनमैश्वरम् ॥ ३६ ॥
शास्त्रं वेदाश्च सुभगे वर्णयन्ति यदीश्वरम् ।
तत्सर्वं प्राकृतं विद्धि निर्देष्टुं शक्यमेव च ॥ ३७ ॥
अनिर्देश्यं तु यद् देवि तन्नेतीति निषिध्यते ।
निषेधशेषः स विभुः कीर्तितः शरणागतैः ॥ ३८ ॥
शास्त्रं नियामकं भद्रे सर्वेषां कर्मणां भवेत् ।
कर्मी तु जीवः कथित ईश्वरांशो विभुः स्वयम् ॥ ३९ ॥
प्रकृतेस्तु परो नित्यो मायया मोहितः शुभे ।
यस्तु साक्षी स्वयंपूर्णः सहानुशयिता स्थितः ॥ ४० ॥
न वेत्ति तं चानुशयी वेदानुशयिनं स तु ।
शंखचक्रगदापद्मैरलंकृतभुजद्वयाः ॥ ४१ ॥
प्रपन्नास्ते तु विज्ञेयाः द्विविधा विधिनन्दिनि ।
आर्तदृप्त द्विभेदेन तत्रार्ता असहा मताः ॥ ४२ ॥
दृप्ता जन्मान्तरसहा निर्भयाः सदसज्जनाः ।
ये प्रपन्ना महालक्ष्म्या सखिभावं समाश्रिताः ॥ ४३ ॥
तेषां मन्त्रं प्रवक्ष्यामि प्रपत्तिं विधिबोधितम् ।

गोपीजनपदस्यान्ते वल्लभेति समुच्चरेत् ॥ ४४ ॥
चरणाञ्छरणं पश्चात्प्रपद्ये पदमीरयेत् ।
षोडशार्णो मन्त्रराजः साक्षाल्लक्ष्म्या प्रकाशितः ॥ ४५ ॥
पूर्वं सनत्कुमाराय शम्भवे तदनंतरम् ।
सखिभावं समाश्रित्य गोपिकावृन्दमध्यगम् ॥ ४६ ॥
आत्मानं चिन्तयेद् भद्रे राधामाधवसंज्ञकम् ।
गुरुष्वीश्वरभावेन वर्तेत प्रणतः सदा ॥ ४७ ॥
वैष्णवेषु च सत्कृत्य तथा समतयान्यतः ।
दिवानिशं चिंतनं च स्वामिनोः प्रेमबन्धनात् ।
कुर्यात्सर्वेष्वपि सदा यात्रा पर्वमहोत्सवान् ॥ ४८ ॥

युगलरूप माहात्म्य

ततश्च क्रमशो देवाः ! कैवल्यपदमाप्नुयुः ।
सगुणे युगले रूपे दर्शनं मे प्रकुर्वते ॥ ५९ ॥
पूर्वं मे ज्ञानिनो भक्ता माञ्च मत्प्रकृतिं ततः ।
ते मय्येवानुपश्यन्ति पृथक्त्वेन सुरोत्तमाः ॥ ६० ॥
निष्कामां मत्परां भक्तिं प्राप्नुवन्तस्ततो मयि ।
इत्थं तन्मयतां यान्ति नूनं कल्याणवाहिनीम् ॥ ६१ ॥
यथा सर्वोत्तमे देवाः ! दाम्पत्यप्रेमसागरे ।
निमज्जन्तौ च यच्छन्तौ पूर्णतां दम्पती मिथः ॥ ६२ ॥
हेतू स्यातां मिथो मुक्तेर्भवितद्वैतमागतौ ।
अनन्यप्रेमसंयुक्ता ज्ञानिभक्तास्तथैव मे ॥ ६३ ॥
आत्मानं प्रकृतिं मत्वा ज्ञात्वा मां पुरुषं तथा ।

पूर्वं तेमे निमज्जन्ते परमानन्दसागरे ॥ ६४ ॥
माँ संस्थाप्य प्रपद्यन्त अद्वैतत्वं ततो मयि ।
गूढ़ं भक्तिरहस्यं मे श्रूयतां निर्ज्जराः पुनः ॥ ६५ ॥
दाम्पत्यप्रेमपाथोधौ पूर्वं श्रेष्ठे निमग्नयोः ।
दम्पत्योर्हि यथा जायोपुरुषत्वं प्रपद्यते ॥ ६६ ॥
पतिश्च ब्रह्मसायुज्यं देवाः ! प्राप्नोत्यसंशयम् ।
प्रथमायामवस्थायां ज्ञानिभक्तास्तथैव मे ॥ ६७ ॥
स्वत्वं मत्प्रकृतौ लीनं कुर्वते सर्वथा सुराः ।
ततो मत्प्रकृतौ लीनास्त्यक्तस्वत्वोः सुखावहाः ॥ ६८ ॥
आध्यात्मिकैर्मया सार्द्धं ते शृङ्गारैः समन्विताः ।
परमानन्दसन्दोहानुभवं किल कुर्वते ॥ ६९ ॥
मत्प्रकृत्या सहैवान्ते सन्निविश्य स्वयं मयि ।
मामेवै ते प्रपद्यन्ते पराभक्तिपरायणाः ॥ ७० ॥
एतामेव दशाँ नाम्ना कैवल्यं श्रुतयो जगुः ।
एषैव मे परा काष्ठा पराभक्तेरुदाहृता ॥७१॥
आत्मज्ञानस्य बोद्धव्यमेतच्चैवान्तिमं फलम् ।
वैधी भक्तेर्यदा देवाः ! मद्भक्ता अधिकारिणः ॥

[शक्ति गी० १०२]

गो गोचर जहं लग मन जाई, सो सब माया जानेहु भाई ।
तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ । विद्या अपर अविद्या होऊ ॥४॥
एक दुष्ट अतिशय दुःख रूपा । जीव सजीव परे भव कूपा ॥५॥
एक रचे जग गुन सब जाके । प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके ॥६॥

माया ईश न आपु कह, जानि सकै सो जीव।
बंध मोक्ष प्रद सर्व पर, माया प्रेरक सीव ॥२३॥

धर्म्म ते विरति योग ते ज्ञाना, ज्ञान मोक्षप्रद वेद बखाना ॥ १ ॥
जा ते वेगि द्रवों मैं भाई। सो मम भक्ति भक्त सुखदायी ॥ २ ॥

(तु० रा० अर०)

सो स्वतन्त्र अवलम्बन आना तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना ॥ ३ ॥
भक्ति तात अनुपम सुखरूपा मिले जो संत होंहि अनुकूला ॥ ४ ॥

श्रीराधासुधानिधिः।

अस्या कदापि वसनाञ्चलखेलनोत्थ-
धन्यातिधन्यपवनेन कृतार्थमानी।
योगीन्द्रदुर्गमगतिर्मधुसूदनोपि,
तस्यै नमोस्तु वृषभानुभुवो दिशेपि ॥१॥

यो ब्रह्मरुद्रशुकनारदभीष्ममुख्यै-
रालक्षितो न सहसा पुरुषस्य तस्य।
सद्योवशीकरणचूर्णमनन्तशक्तिं,
तं राधिकाचरणरेणुमहं स्मरामि ॥२॥

ब्रह्मेश्वरादिसुदुरूहपदारविन्द-
श्रीमत्परागपरमाद्भुतवैभवायाः।
सर्वार्थसाररसवर्षिकृपार्द्रदृष्टे-
स्तस्मै नमोस्तु वृषभानुभुवोमहिम्ने ॥३॥

आदाय मूर्द्धनि यदा पुरदारगोप्याः,

काम्यं पदं प्रियगुणैरपि पिच्छमौलेः ।
भावोत्सवेन भजतां रसकामधेनुः,
तं राधिकाचरणरेणुमहं स्मरामि ॥४॥
दिव्यप्रमोदरससारनिजाङ्गसंग-
पीयूषवीचिनिचयैरभिषेचयन्ती ।
कन्दर्पकोटिशरमूर्छितनन्दसूनुः,
संजीवनी जयति कापि निकुञ्जदेवी ॥५॥
तन्नः प्रतिक्षणचमत्कृतचारुलीला-
लावण्यमोहनमहामधुराङ्गभङ्गि ।
राधाननं हि मधुराङ्गकलानिधान-
माविर्भविष्यति कदा रससिन्धुसारम् ॥६॥
यत्किंकरीषु बहुशः खलु काकुवाणी,
नित्यं परस्य पुरुषस्य शिखण्डिमौलेः ।
तस्या कदारसनिधेर्वृषभानुजाया-
स्तत्केलिकुञ्जभवनाङ्गणमार्जनी स्याम् ॥७॥
वृन्दानि सर्वमहतामपहाय दूराद्
वृन्दाटवीमनुसर प्रणयेन चेतः ।
सन्तारणीकृतसुभावसुधारसौघं,
राधाभिधानमिह दिव्यनिधानमस्ति ॥८॥
केनापि नागरवरेण पदे निपत्य,
संप्रार्थितैकपरिरम्भरसोत्सुकायाः ।
सभ्रू विभङ्गमतिरङ्गनिधेः कदा ते,

श्री राधिके नहि नहीति गिरः शृणोमि ॥९॥
यत्पादपद्मनखचन्द्रमणिच्छटाया
विस्फूर्जितः किमपि गोपवधू स्वदर्शि ।
पूर्णानुरागरससागरसारमूर्तिः,
सा राधिका मयि कदापि कृपा करोतु ॥१०॥
उज्जृम्भमानरसवारिनिधेस्तरंगै-,
रंगैरिव प्रणयलोलविलोचनायाः ।
तस्या कदानुभविता मयि पुण्यदृष्टि-
र्वृन्दाटवीनवनिकुञ्जगृहादिदेव्याः ॥ ११ ॥
वृन्दावनेश्वरि तवैव पदारविन्दं,
प्रेमामृतैकमकरन्दरसौघपूर्णम् ।
हृद्यर्पितं मधुपतेः स्मरतापमुग्रं,
निर्वापयत्परमशीतलमाश्रयामि ॥१२॥
राधाकरावचितपल्लववल्लरीके,
राधापदाङ्कविलसन्मधुरस्थलीके ।
राधायशोमुखरमत्तखगावलीके,
राधाविहारविपिने रमतां मनो मे ॥१३॥
कृष्णामृतं चल विगाढुमितीरिताहं,
तावत्सहस्व रजनी सखि यावदेति ।
इत्थं विहस्य वृषभानुसुतेहि लप्स्ये,
मानं रसद केलिकदम्बजातम् ॥१४॥
पादांगुलीनिहितदृष्टिमपत्रपिष्णुं,

दूरादुदीक्ष्य रसिकेन्द्रमुखेन्दुबिम्बम् ।
वीक्ष चलत्पदगतिं चरिताभिरामां,
झङ्कारनूपुरवतीं बत कर्हि राधाम् ॥१५॥
उज्जागरं रसिकनागरसङ्गरङ्गैः,
कुंजोदरे कृतवती नुमुदारजन्याम् ।
सुस्नापिता हि मधुनैव सुभोजिता त्वं,
राधे कदा स्वपिषि मत्करलालितांघ्रि ॥१६॥
वैदग्ध्यसिन्धुरनुरागरसैकसिन्धु-
र्वात्सल्यसिन्धुरतिसान्द्रकृपैकसिन्धुः ।
लावण्यसिन्धुरमृतच्छविरूपसिन्धुः,
श्री राधिका स्फुरतु मे हृदि केलिसिन्धुः ॥१७॥
दृष्ट्वैव चम्पकलतेव चमत्कृताङ्गी,
वेणुध्वनिं क्व च निशम्य च विह्वलाङ्गी ।
सा श्यामसुन्दरगुणैरनुगीयमानैः,
प्रीता परिष्वजतु मां वृषभानुपुत्री ॥१८॥
श्री राधिके सुरतरंगिणिदिव्यकेलि-
कल्लोलमालिनि लसद्वदनारविन्दे ।
श्यामामृताम्बुनिधिसङ्गमतीव्रवेगि-
न्यावर्तनाभिरुचिरे मम सन्निधेहि ॥१९॥
सत्प्रेमसिन्धुमकरन्दरसौघधारा-
सारानजस्रमभितः स्रवदाश्रितेषु ।
श्री राधिके तव कदा चरणारविन्द-

गोविन्दजीवनधनं शिरसा वहामि ॥२०॥

संकेतकुञ्जमनुकुञ्जरमन्दगामि-
न्यादाय दिव्यं मृदुचन्दनगन्धमाल्यम् ।
त्वां कामकेलिरभसेन कदा चलन्तीं,
राधेऽनुयामि पदवीमुपदर्शयन्तीम् ॥२१॥

गत्वा कलिन्दतनयाविजनावतार-
मुद्वर्तयन्त्यमृतमङ्गमनङ्गवीजम् ।
श्री राधिके तव कदा नवनागरेन्द्रं
पश्यामि मग्ननयनं स्थितमुच्चनीपे ॥२२॥

श्री राधिके सुरतिरंगिनितम्बभागे,
कांचीकलापकलहंसकलानुलापैः ।
मंजीरसिंजितमधुव्रतगुंजितांघ्रि-,
पङ्केरुहैः शिरसि यत्स्वरसच्छटाभिः ॥२३॥

सत्प्रेमराशिसरसो विकसत्सरोजं,
स्वानन्दसिन्धुरससिन्धुविवर्द्धनेन्दुम् ।
तच्छ्रीमुखं कुटिलकुन्तलभृंगजुष्टं,
श्री राधिके तव कदानुविलोकयिष्ये ॥२४॥

लावण्यसार-रससार-सुखैकसार-,
कारुण्यसार-मधुरच्छविरूपसारे ।
वैदग्ध्यसार-रतिकेलिविलाससारे,
राधाभिधे मम मनोऽखिलसारसारे ॥२५॥

(श्री हितहरिवंश गोस्वामी मथुरा)

हरिः ॐ

श्रीगणेशाय नमः

परिशिष्ट सं० २

राग-रागिनी

सोऽपि श्रीकृष्णचन्द्राय पुरुषाय महात्मने ।
बलिं दत्वा परां शश्वत् स्तुतिं चक्रे धनंजय ॥ २६
इत्थं पश्यन् देवदेवः सर्वं वर्षं मिलावृतम् ।
जगाम देवनगरं जंबूद्वीपं मनोरमम् ॥ २७
मूर्तिमान् यत्र निगमो दृश्यते सर्वदैव हि ।
तत्सभायां सदा वाणी वीणा-पुस्तक-धारिणी ॥ २८
गायंती कृष्णचरितं सुभगं मंगलायनम् ।
उर्वशी-पूर्वचित्याद्या नृत्यंत्यप्सरसो नृप ॥ २९
हाव-भाव-कटाक्षैश्च तोषयंत्यः सुरेश्वरम् ।
अहं विश्वावसुश्चैव तुम्बुरुश्च सुदर्शनः ॥ ३०
तथा चित्ररथो ह्येते वादित्राणि मुहुर्मुहुः ।
वेणु-वीणा-मृदङ्गानि मुरुयपि युतानि च ॥ ३१
तालदुन्दुभिभिः सार्द्धं वादयन्ति यथाविधि ।
ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतोदात्ताऽनुदात्त-स्वरिता नृप ॥ ३२
सानुनासिकभेदश्च तथा निरनुनासिकः ।
एतैरष्टादशैर्भेदै गीयंते श्रुतयः परैः ॥ ३३

मूर्तिमन्तो विराजंते तत्र वेदपुरे नृप ।
अष्टौ तालाः स्वराः सप्त तथा ग्रामत्रयं नृप ॥ ३४
वदन्ति वेदनगरे मूर्तिमन्तः सदैव हि ।
भैरवो मेघमल्लारो दीपको मालकंसकः ॥ ३५
श्रीरागश्चापि हिंडोलो रागाः षट् संप्रकीर्तिताः ।
पञ्चभिश्च प्रियाभिश्च तनुजैरष्टभिः पृथक् ॥ ३६
मूर्तिमन्तस्तु ते तत्र विचरंति नरेश्वर ।
भैरवो बभ्रुवर्णश्च मालकंसः शुकद्युतिः ॥ ३७
मयूर-द्युति-सँयुक्तो मेघमल्लार एव हि ।
सुवर्णाभो दीपकश्च श्रीरागोऽरुणवर्णभृत् ।
हिंडोलो दिव्यहंसाभो राजते मिथिलेश्वर ॥ ३८

बहुलाश्व उवाच

तालानाञ्च स्वराणां च ग्रामाणां मुनिसत्तम ।
नृत्यानां कति भेदा ये नामभिः सहितान् वद ॥ ३९

नारद उवाच

रूपकं चंचरीकश्च तालः परमठः स्मृतः ।
विराडः कमठश्चैव मल्लकश्च झटिञ्जटा ॥ ४०
निषाद-र्षभ-गांधार-षड्ज-मध्यम-धैवताः ।
पंचमश्चेत्यमी राजन् स्वराः सप्त प्रकीर्तिताः ।
माधुर्यमथ गांधार्यं ध्रौव्यं ग्रामत्रयं स्मृतम् ।
रासं च तांडवं नाट्यं गान्धर्वं कैन्नरं तथा ॥ ४२
वैद्याधरं गौह्यकं च नत्यमाप्सरसं नृप ।

हावभावानुभावैश्च दशभिश्चाष्टभेदवत् ॥ ४३
सारंगमयथान्यानि स्वरगम्यं पदं स्मृतम् ।
एतत्ते कथितं राजन् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४४

बहुलाश्व उवाच

रागिणीनां च नामानि वद देव ऋषे मम ।
तथा वै रागपुत्राणां त्वं परावरवित्तमः ॥ १

नारद उवाच

कालेन देशभेदेन यथा स्वरभिश्रया ।
भेदा बुधैः षटपंचाशत्कोट्यो गीतस्य कीर्तिताः ॥ २
अन्तर्भेदा अनन्ता हि तेषां संति नृपेश्वर ।
विद्धयेनं त्वमानंदं शब्दब्रह्ममयं हरिम् ॥ ३
तस्मान्मुख्याश्च भेदाः कौ वदिष्यामि तवाग्रतः ।
भैरवी पिंगला शंकी लीलावत्यागरी तथा ।
भैरवस्यापि रागस्य रागिण्यः पञ्च कीर्तिताः ।
महर्षिश्च सम्बृद्धश्च पिङ्गलो माधवस्तथा ॥ ५
विलावलश्च वैशाखो ललितः पंचमस्तथा ।
भैरवस्याष्टपुत्रा ये गीयंते च पृथक् - पृथक् ॥ ४
चित्रा जयजयावन्ती विचित्रा कथिता पुनः ।
वृजमल्लार्यंधकारी रागिण्यपि मनोहराः ॥ ७
मेघमल्लाररागस्य कथिताः पंच मैथिल ।
श्यामकारः ....॥८
..............................जलधारस्तथैव च ।

विहागश्चेत्यष्ट पुत्राः कथिताः पूर्वसूरिभिः ॥ ९
मेघमल्लाररागस्य मैथिलेन्द्र मनोहराः ।
कँचुकी मंजरी टोरी गुर्जरी शावरी तथा ॥ १०
दीपकस्यापि रागस्य रागिण्यः पंच च स्मृताः ।
कल्याणः शुभकामश्च गौडकल्याण एव च ॥ ११
......रूपः कान्हरेति रामसंजीवनस्तथा ।
सुखनामा मन्दहासः पुत्राश्चाष्टौ विदेहराट् ॥ १२
रागस्य दीपकस्यापि कथिता रागपंडितैः ।
गांधारी वेदगाँधारी धनाश्री स्वर्मणिस्तथा ॥ १३
गुणागरीति रागिण्यः पंचैता मिथिलेश्वर ।
मालकंसस्य रागस्य कथिता चाष्ट मंडले ॥ १४
मेघश्च मचलो मारू माचारः कौशिकस्तथा ।
चन्द्रहारो घुंघुटश्च विहारो नन्द एव च ॥ १५
मालकंसस्य रागस्य पुत्राः राग-प्रकीर्तिताः ।
वराटी चैव कर्णाटी गौरी गौरावटी तथा ॥ १६
चतुश्चन्द्रकला चैव रागिण्यः पंच विश्रुताः ।
श्रीरागस्यापि राजेन्द्र कथिताः पंच सूरिभिः ॥ १७
सारंगः सागरो गौरो मरुत्पंचशरस्तथा ।
गोविन्दश्च हमीरश्च गोभीरश्च तथैव च ॥ १८
श्रीरागस्यापि राजेन्द्र चाष्टौ पुत्रा मनोहराः ।
वासन्ती ऐरजा हेरी तैलंगी सुन्दरी तथा ॥ १९
हिंडोलस्य ᐯ रागस्य रागिण्यः पंच विश्रुताः ।

मङ्गलश्च वस...... विनोदः कुमुदस्तथा ॥ २०
एवं च विहितो नाम विभासः स्वरमंडलः ।
पुत्राश्चाष्टौ समाख्याता मैथिलेन्द्र विचक्षणैः ॥ २१
(अध्याय ४४, गर्ग संहिता, विश्वजित्)

परिशिष्ट सं० ३

पिरीति

Divine Love – इश्क़-हक़ीक़ी

प्रेम गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्द्धमानमवच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् ।

वाञ्छा ! सुनसान रात्रि के समय जब समस्त जगत नींद से अचेतन हो जाता था, उस समय नदी-तट की हमारी कुटी के किनारे के वृक्ष के तले बैठ कर तुम्हारे सँग मैं हौले हौले वार्तालाप करता था, उसी भाव से रात्रि व्यतीत होकर प्रभात हो जाता था। कभी नदी की ओर देखता तो वह कुटीर-कानन-प्रान्त-वाहिनी प्रवाहिनी कुलु-कुलु कल-कल शब्द करती हुई क्या जाने अपने मनकी बातें कहती हुई-सी आकुल-प्राणा उन्मादिनी की भांति ऊर्ध्वश्वास लेती हुई बही जाती थी। वह दृश्य कैसा सुन्दर था, वह तरल-गम्भीर-उज्ज्वल-मधुर समावेश कैसा सुन्दर था ! मैं बातें करते २ हृदय के भावों में डूब जाता था और स्वप्नमयी स्मृति के राज्य में जा पड़ता था, तब तुम मुझे चैतन्य करके कभी फुल्ल-कुसुम-विनिन्दित अगण्य-नक्षत्र-माला-खचित नील-नभस्थल-वासियों का तत्व जानने के निमित्त सैकड़ों प्रश्न उठाते थे। मैं भी तुम्हारे चित्त-विनोदार्थ कभी तो

astro-anthropology, कभी astro-psychology, फिर कभी astro-physics तत्व का वर्णन करके तुम्हें प्रसन्न करने का प्रयास करता था। वाञ्छा! तब वह एक दिन था जब आकाश, पृथ्वी और पाताल की बातें सोचना अच्छा लगता था, तुमसे कहता था और कहना भी अच्छा लगता था। किन्तु अब वे दिन नहीं रहे। जानते हो वाञ्छा! 'सब दिन नाहिं बराबर जात'। इस समय बाहर की खटखट अच्छी नहीं लगती है। एक दिन वह था जब कि सकल प्रकारोlogy के आकर्षण मन में अनुभव करता था, परन्तु इस समय इन सब का आकर्षण एक बार ही कट गया है, उठ ही नहीं सकता है।

यह विशाल विश्व ब्रह्माण्ड केवल अनन्त घटना पूर्ण है। अनन्त व्यापार का अनन्त आकर्षण हमारी अनन्त-मुखी प्रतिभा सब समझना चाहती है, किन्तु जानना चाहने पर अनजाने राज्य की परिधि क्रम-क्रम से बढ़ती ही जाती है। Knowable ससीम है, परन्तु unknowable असीम है। जानने की इच्छा किसको नहीं होती, किन्तु क्या मनुष्य सदा केवल जानने के ही निमित्त व्याकुल रह सकता है? क्या उसके मनमें आस्वादन की इच्छा जाग्रत नहीं होती? और यदि आस्वादन की इच्छा हो तो क्या वह अस्वाभाविक है? अच्छा, उस जाने हुये का परिणाम ही कहां है? जितना ज्ञान चाहिये, उतना ही उसका भोग भी तो चाहिये! भोग भिन्न, आस्वादन-भिन्न क्या मनुष्य की आत्मा सरस, सुन्दर, सजीव तथा सम्पुष्ट रह सकती है? इसही लिए मैं

आज तुमसे एक नया विषय छेड़ता हूं। आज तुमसे "पिरीति" तत्व कहता हूं।

दर्शन शास्त्र की चर्चा तुम्हें अच्छी लगती है। श्रीमद्भगवद्-गीता तुम्हारी प्रिय वस्तु है, परन्तु क्या तुमने कभी प्रेम-गीता भी पढ़ी है ? चण्डीदास, विद्यापति और ×गोविन्ददास की पदावली पढ़े बिना तुम इस प्रस्ताव को नहीं समझ सकते हो। मैंने "प्रीति" न कहकर 'पिरीती' कहा है। इससे स्यात् तुम यह समझोगे कि 'पिरीति' जब 'प्रीति' का ही अपभ्रंश है तो 'प्रीति' न कहकर ग्राम्य शब्द "पिरीति" क्यों कहा ? वाञ्छा ! मैंने 'पिरीति' क्यों कहा — यदि तुम यह समझ सकते तो कठोर कठोपनिषद् में रस निचोड़ने क्यों बैठते अथवा माण्डूक्य-कारिका लेकर ही क्यों शिर-धुनाई करते ? मैं तुमसे स्पष्टतः कहता हूं कि "प्रीति" और 'पिरीति' एक पदार्थ नहीं है। 'प्रीति' कठोर और पण्डिता, "पिरीति" कोमला और अहीर की व्रज-वाला है। "प्रीति" पाणिनि का व्याकरण अथवा श्री व्यासदेव जी का श्रीमद्भागवत् और "पिरीति" चण्डीदास की पदावली है। "प्रीति" कहने से जिस भाव का उदय होता है "पिरीति" कहने से उस भाव का उदय न होकर और ही भाव मन में आता है। राम से श्याम की "प्रीति" कहने से सद्भाव समझा जाता

× गोबिन्ददास की पदावली का एक उदाहरण इस परिशिष्ट के अन्त में दिया है। कैसा हृदयग्राही है, पढ़िये।

है, किन्तु "पिरीति" नहीं हो सकती है। "पिरीति" एक स्वतन्त्र पदार्थ है। प्रेम यदि पञ्चम पुरुषार्थ है तो 'पिरीति" षष्ठ पुरुषार्थ है। क्या कहा जाय, "पिरीति" श्रीमद्भागवत को भी अगोचर है। वाञ्छा! प्रीति और पिरीति एक पदार्थ नहीं है। 'पिरीति' चण्डीदास के हृदयनिहित एक महाभाव है। वह भाव वेद में नहीं, उपनिषद् में नहीं, श्रीमद्भगवद्गीता में नहीं, यहां तक कि श्रीमद्भागवत में भी नहीं है। तुम कुछ भी कहो और कितना ही समझाओ कि 'प्रीति' और 'पिरीति' एक ही पदार्थ है, मैं कैसे भी नहीं समझता। तुम लोग 'प्रीत्यर्थे' में 'प्रीति' शब्द का प्रयोग करते हो। हो सकता है कि अजीर्ण अथवा अरुचि रोग में आहार से प्रीति नहीं होती, किन्तु इन सब स्थलों में 'पिरीति' नहीं रह सकती। पिरीति के लिये केवल एक स्थान, केवल एक व्यवहार और एक प्रयोग है। 'प्रीति', वेदान्त-'प्रीति' सबको एक करना चाहती है, सबही को अपने में लाना चाहती हैं, किंतु "पिरीति" ऐसी नहीं है, "पिरीति" सांख्य है। सांख्य के पुरुष की भांति "पिरीति" एक-पक्षीय है। "पिरीति" उदारता नहीं जानती, विश्व-प्रेम वा universal love नहीं जानती। वह समझती है केवल निर्जन, वह समझती है केवल कुञ्ज-कुटीर, वह समझती है केवल भाण्डीर-वन – उसका लक्ष्य केवल एकरूप वही—

"श्यामल-सुन्दर-विश्व-मनोहर
उज्जवल-नटवर-वेशम्।"

"पिरीति" व्याकुला, 'पिरीति' उदासिनी, "पिरीति" योगिनी,

और भी कुछ कह सकते हैं। किंतु क्या यह कहने की बातें हैं ? क्या कभी मनुष्यों की भाषा में "पिरीति" की बातें समझा कर कोई प्रकाश कर सकता है ? वेदान्त की माया अनिर्वचनीया, अस्फुटता में "पिरीति" उससे कैसे कम है ? वाञ्छा ! मैं तुमको 'पिरीति' नहीं समझा सकता हूं। देखो तो ठाकुर चण्डीदास क्या कहते हैं ? सुनो तो ? तुम वेदान्तसूत्र पढ़ती समय "अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा" पढ़ते हो, अब एक बेर "पिरीति"-सूत्र तो पढ़ो, इसके उपरान्त सुतरां "पिरीति"-जिज्ञासा होगी,

'पिरीति' वलिया ए तीन आखर
सृजिल कोन धाता।
अवधि जानिते सुधाइ काहाके
घुचाइ ममेर व्यथा।

वेदान्त-सूत्र के ब्रह्म-जिज्ञासा की भांति इस "पिरीति"-जिज्ञासा का सूत्रपात हुआ। और वेदान्त-सूत्र के 'अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा' के अनुकरण में इस स्थान में हुआ।

इसके उपरांत, सुतरां "पिरीति"-जिज्ञासा, इसी प्रकार सूत्र की अवतारणा कर सकते हैं। कर्म्म-काण्ड समाप्त करने के उपरान्त जैसे ज्ञान-काण्ड में ब्रह्म-जिज्ञासा होती है, तद्रूप भक्ति भावादि के पीछे ही 'पिरीति' प्रसङ्ग का सूत्रपात ह ता है, यथा शास्त्र में:—

"आदौ श्रद्धा ततः साधु-सङ्गोऽथ भजनक्रिया,
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात् ततोऽनिष्टारुचिस्ततः ।

अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति
साधकानामयं प्रेम्नः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः॥,

पहिले श्रद्धा, तब साधुसङ्ग, फिर भजन-क्रिया, तदन्तर अनर्थ-निवृत्ति, तत्पश्चात् निष्ठा, तब गुण लीलादि श्रवण में अभिलाषा, उसके पीछे आसक्ति, तदुपरान्त शुद्धभाव, इसके पीछे ही प्रेम का उदय होता है। यही शास्त्रीय क्रम है। परन्तु मैं तो कहता हूं कि प्रेम से भी पीछे "पिरीति" का उदय होता है।

वेदान्त का दूसरा सूत्र है:—

जन्माद्यस्य यतः।

अर्थात् जिससे इस विश्व का जन्म होता है। "पिरीति" दर्शन का द्वितीय सूत्र कहता है:—

'एइ मोर मने हय राति दिने
इहा वइ नाहि आर
पिरीति वलिया ए तीन आखर
ए तीन भुवन सार'

वाञ्छा! अब एक बार अच्छी प्रकार मिलाकर देखो वेदान्त-सूत्र और "पिरीति"-सूत्र में किसी प्रकार साम्य-सामञ्जस्य देख पड़ता है या नहीं? वेदान्तसूत्र कहता है ब्रह्म से ही इस विशाल विश्व ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति है। श्रुति कहती है:—

ईशावास्यमिदं सर्व्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्।

अर्थात् इस जगत् में ब्रह्म-भिन्न और कुछ भी नहीं है। एक बेर सूत्र सुन लो, व्याख्या की आवश्यकताने हो पर पीछे की

जावेगी । सुनोः—

विहि एक चित्ते भाविते भाविते
निरमान कैल "पि"
रसेर सागर मन्थन करिते
ताते उपजिल "री"
पुन जे मथिया अमिया हइल
ताहे भिजाइल "ति"
सकल सुखेर ए तीन आखर
तुलना दिव जे कि
जाहार मरमे पशिल यतने
ए तीन आखर सार
धरम करम सरम भरम
कि वा जाति कुल तार

ये ही तीन आखर (अक्षर) जिसके मर्म में प्रवेश कर गये वह धर्म्म कर्म्म सरम भरम एवं जाति कुल इनकी कुछ भी धारणा नहीं धरती है । उसके समीप धर्म्माऽधर्म्म, पुण्य पाप, सुख दुःख जीवन मरण सबही नष्ट हो जाते हैं । इसीलिये चण्डीदास ने, कहा हैः—

श्यामेर पिरीति हृदये पशिले
तार कि परान रय
परानेर माझे पिरीति पुषिले
के तारे जीवन्त कय ॥

वाञ्छा ! समझ गये क्या ? तुम्हारे इस संसार की आशा, वासना वा तृष्णा "पिरीति"-मग्न हृदय में उत्तेजना लाकर उठा नहीं सकते हैं। 'पिरीति' हृदय को अवश कर देती है। दिन चला जाता है, रात होती है, रात के पीछे फिर दिन होता है, परन्तु पिरीति-मग्न हृदय के निकट दिवा-रात्रि का भेद नहीं, आलोक-अन्धकार का ज्ञान नहीं, सुख दुःख का बोध नहीं रहता है। ऐसी मादकता और किसी में भी नहीं है। ऐसा प्रभाव और किसी का भी नहीं है। "पिरीति" की रीति ही ऐसीहै कि प्राण भले ही चले जायें परन्तु "पिरीति" नहीं जाती है।

पिरीति पिरिति कि मूरति
हृदय लागिल से
परान छाडिले पिरीति ना छा

पिरीति गड़ल के।

'पिरीति' नित्या। यदि भाग्यवशात् किसी का हृदय 'पिरीति-मग्न हो जावे तो पिरीति अपने प्रभाव से उस हृदय को नित्य 'पिरीति' का आधार बना देती है। प्राण जाने पर भी वह 'पिरिति-शून्य' नहीं होता है।

श्रीमती के हृदय में जब श्यामानुराग का उदय हुआ था, श्याम की 'पिरिति' ने जिस समय उसके हृदय को आकुल किया था, उस समय उसकी जो अवस्था हुई थी चण्डीदास ने निम्न-लिखित भाव से उसका कुछ आभास दिया है:—

श्यामेर पिरीति आरति वढायां
मरन अधिक काजे।
लोक चरचाय कुलेर खांखाय
जगत भरिल लाजे॥
हइते हइते अधिक हइल
सहिते सहिते मनूं।
कहिते कहिते तनु ज्वर ज्वर
पागलि हइया गेनू॥

यदि चण्डीदास का उदय न होता तो समझ लो कि "पिरीति' की भाषा एक बार ही अस्फुट रह जाती। 'पिरीति' की यह तीव्र व्याकुलता चण्डीदास ने स्थान स्थान में जिस भाव से प्रकाशित की है, एवं उसके प्रत्येक स्तर में "पिरीति" का जो

शायन सजल जलद घन घोषत, गरगर नाद गभीर।
यामिनीगभरे तिमिर परिपूरल वरिषत झर-झर नीर॥
शिखि कुल कबहु केय रव गाउत, झिंझा झनकि झनराव।
नीरद नीर परशमत दादुरि कूदत पुनि उछलाव।
गोपल तारक अम्बर कोर।
शीतल सुखकर समय विहारत, पुरजने निन्दक घोर।
खितिरुह पत्र परशि झरु शीकर जागत नयन चकेवा।
परसदास चित्त कव जागव करव युगल पद सेवा॥

(पदचिन्तामणि माला० ४४ पृष्ठ)

वाञ्छा! कहते हुए भी सम्पूर्ण रूप से नहीं कह सका।

[पृष्ठ ३३६ की पंक्ति १२ से आगे पढ़िये]

सभी अव्यक्त, अथच तीव्र व्याकुलतापूर्ण कलकाकली प्रेमिक भावुकों के मानस श्रवणों में क्षण-क्षण परिश्रुत होती है, उसे हम अपनी मानवीय भाषा में किसी प्रकार भी अभिव्यक्त नहीं कर सकते हैं। हम अपने संसार के सीमावद्ध नगरों में रहकर नित्य व्यावहारिक मानव-समाज के सांसारिक भाव और भाषा लेकर पिरीति तत्व को नहीं समझा सकते हैं।

धरम करम लोक चरचाते, ए कथा वूझिते नारे।
ए तीन आखर जाहार मरमे, सेई से वूझिते पारे॥

जो इन तीन अक्षरों को हृदय में रखकर योगी की भांति ध्यान-मग्न होते हैं, वे ही इसके मर्म को समझ सकते हैं। हम इस दुर्ज्ञेय तत्व के विषय में दर्शन विज्ञान लेकर चाहे कितनी ही आलोचना क्यों न करें, उससे कुछ भी नहीं समझ सकते हैं। वाञ्छा, चण्डीदास का यह पिरीति तत्व कपिल में नहीं है, कैण्ट में नहीं है, गौतम सूत्र में नहीं है, मिल या वैन्थम में नहीं है, पुराणों में नहीं है, इतिहासों में नहीं है। श्रीमद्भागवत में इसकी भाव-छाया पाई जाती है, वहां भी सम्पूर्ण भाव प्राप्त नहीं किया जा सकता। जयदेव और विद्यापति निश्चय अनुसन्धान के स्थान हैं, परन्तु वहां भी सोलह आना नहीं मिलेगा। श्री चण्डीदास ही इस तत्व के उद्भावयिता हैं। श्री राधा उनकी एक मात्र आश्रय है, एवं मदनमोहन वंशीवदन श्री श्यामसुन्दर इसका विषय है। वाञ्छा, मैंने तो तुम से सुनी हुई बात कही है। पिरीति केवल

नयनों का जल है। कालाचांद गीता कहती है:—

"श्रीनन्दनन्दने भजिनू कि चाने, काँदि काँदि काँदि मनू।"

पुनस्तत्रैवः—

"अवनत मुखे देखि सो चांद वदन,
देखिव कि सखि मोर सजल नयन।"

वाञ्छा, यदि समझ सको, तो जानना यही पिरीति है। और भी यदि समझना चाहो, तो श्रावण मास के रात्रि काल में जब रिमझिम वर्षा हो, सुनसान रात्रि में एकान्त में बैठकर "जय राधे श्रीराधे" कहकर विद्यापति, चण्डीदास और गोविंददास की पदावली पढ़ना। प्रसाददास के पदों में क्या तुम्हारी रुचि होगी, लो एक पद तुम्हें उपहार देता हूं:—

लेखनी के मुख से भी सकल विषय प्रकाश नहीं हो सकता है, क्या यह दोष मेंरा है अथवा सृष्टि का है ? भाषा भाव की दासी है। तब वह भाव के अभिप्राय को क्यों पूर्ण नहीं करती है ? क्यों ? इसका उत्तर अनेक प्रकार से हो सकता है। किन्तु मैं समझता हूं—मनुष्य का भाव ही अपूर्ण है, भाषा उसकी अपेक्षा अधिक असम्पूर्ण है। इसी से भाषा अनेक स्थलों में नीरव रहती है। हम अपने हृदय में जो आस्वादन करते हैं उसे दूसरे को जनाना चाहते हैं, समझाना चाहते हैं परन्तु नहीं कर सकते हैं। हृदय में तो भाव खिल उठता है, किन्तु मुख से प्रकाश नहीं होता है। यह सब वही—

"मूकास्वादनवत्।"

"पिरीति" के विषय में मैं कुछ भी नहीं कह सका — जो कहूंगा-कहूंगा करके मन में समझा हुआ था उसका कुछ भी तो नहीं कह सका।

कालिदास, भवभूति, माघ प्रभृति बड़े कवि थे, किन्तु प्रेम का विषय वर्णन करने में उनकी भी भाषा ने हार मानी है। स्यात्, शतांश में एकांश ने प्रकाश पाया हो। और बाकी सम्पूर्ण अंश ही सहृदय पाठकगणों के हृदय में इङ्गित द्वारा प्रकाश डाल कर भाषा नीरव हो गई। इन सब कवियों की कविता का यही अंश तो सर्वोत्तम काव्य है, अर्थात् काव्य की नीरव भाषा ही सर्वश्रेष्ठ भाग है।

वाञ्छा ! स्यात् तुम समझते होगे यह एक प्रहेलिका कही

है। यह निश्चय प्रहेलिका नहीं है। अति सत्य है। इसी का नाम व्यञ्जना Suggestiveness है। किन्तु 'पिरीति' काव्य में व्यञ्जना का भी विशेष प्रवेशाधिकार नहीं है। तब कहो कैसे तुम से 'पिरीति' विषय कहा जाय ?

पिरीति का पथ खोजते-खोजते श्री भोलानाथ ने सब ही खो दिया, श्मशान-वासी हुए, भाव के तूफान में ताण्डव नृत्य करने लगे।

पञ्चानन पांच मुख से बोलना चाहते, पर कुछ भी न कह सके।

प्रिय वाञ्छा ! क्या मैं अपने मन की बात तुम से कह दूं ? मैं तो यह समझता हूं कि श्मशान ही 'पिरीति'—तत्त्वज्ञान की प्रथम पाठशाला है। इसी से मैं समझता हूं 'प्रेमपागल' भोलानाथ श्मशान को इतना चाहते हैं। लोग अग्नि को पवित्र कहते हैं, किन्तु श्मशान का अग्नि कैसा भीषण राक्षस है ? मनुष्य का शोणित, मनुष्य का मांस, मनुष्य की हड्डी ही उसका खाद्य है, इसी से वेद क्रव्याद नाम से उसका परिचय देता है। क्रव्याद नाम सुनकर भय मत करना, घृणा मत करना, क्यों न करना ? क्योंकि श्मशान ही 'प्रेम-गुरु' पञ्चानन का घर है।

यदि 'पिरीति' की बातें सुनना चाहो तो इसी क्रव्याद के पास अपनी कुटी बनाना, हो सके तो देखना कि जगत के स्वार्थ का परिणाम कहां है ? भोग का भी परिणाम कहां है ? जो आया था कहां गया ? वह किस की खोज में आया था और क्या

लेकर लौट गया ? जिस स्थान में स्वार्थ है, वहां प्रेम नहीं रह सकता है। तुम लोगों के प्रासाद-पूर्ण शहरों की अली गलियों में तुमको प्रेम की कोई भी खबर नहीं मिलेगी। जो कोई भी सुख-सुविधा चाहता है वह प्रेम नहीं जानता है। जिसको दुःख से भय होता है, उसको भी प्रेम नहीं मिल सकता है। प्रेम तो सुख-दुःख-अतीत है।

"बन्धुर लागिया योगिनी हइव कुण्डल परिव काने।
जाव देशे देशे बन्धुर उद्देशे सुधाइ जने जने॥
बन्धुया कोथा वा आछे गो॥"

यही प्रेम की भाषा है। इस स्थान में सुख नहीं, दुःख नहीं, पाप नहीं, पुण्य नहीं, घृणा नहीं, लज्जा नहीं, भय नहीं, भरोसा भी नहीं है। यह भाव प्रकृत पक्ष में सर्व धर्मों की समाधि है। सर्व स्वार्थों का महाश्मशान है। इस स्थान पर सम्पूर्ण संसार व्यापार जल-भुन कर भस्म हो गया है। रह गया है क्या ? केवल अनिद्र, अस्फुरन्त, तीव्र, अनुराग। वह अनुराग कैसा है ? बुद्धिहीन, विचारहीन, अथ च दुर्निवार।

'नवीन पाङ्से मीन मरन न जाने।
कानु अनुरागे चित्त धैरज न माने॥'

कहा तो है, परन्तु 'पिरीति' का विषय तुम्हें नहीं समझा सका। किन्तु और एक बात कहता हूं, समझना कि यही शेष हैः—

'श्याम रे तुहु मोर मरन समान,
लाख सुख-दुःख चित्ते कभू ना गनिलूं चरण परशि अगेयान।'

तुम्हारे पाश्चात्य पंडित लोग जिसको Consciousness कहते हैं और इस देश के दार्शनिक लोग जिसको संविद् कहते हैं, उक्त पद के भाव-राज्य में उसकी चिर समाधि है। इसी कारण मैं समझता हूं मेरा हृदय-सखा कृष्णदास गोस्वामी लिखता है:—

अकैतव कृष्ण-प्रेम येन जाम्बूनद हेम,
सेइ प्रेम नृलोके ना हय।
यदि हय तार योग ना हय तार वियोग,
वियोग हले केह ना जीयव ॥
कैतवरहितं प्रेम न भवति मानुषे लोके।
यदि भवति कस्य विरहे भवति को जीवति ॥

प्राकृत

कइअवरहियं प्रेम नहिं होइ मानुषे लोके।
जइ होइ कस्स विरहो होन्तम्मि को जीअइ ॥

हरि, हरि! कहां की बात कहां? सब गड़बड़, जैसे उलटा-पुलटा। इसलिये यहीं इति।

तुम्हारा चिर-दिन का वही—
Sd. सेवाराम शर्म्मा।

—०:)(:०—

श्री उमा बहुत दिन पीछे पितृग्रह में आईं। जननी मेनका उसे आभरण हीना देखकर दुःख करने लगी, तब उमा माता को समझाने लगीः—

गीत

आमार नाइ आभरन अमन कथा मुखे एनो ना मा आर।
आमिइ केवल ए जगते करते पारि अलङ्कारेर अहङ्कार॥
ए जगत् वटे आमार अलङ्कारे साजान थाल,
प्रातर्मध्य सायंकाले परिये देन स्वयं काल,
आवार निशाकाले वदूले पराय, ताते आलो आंधार दुई देखाय,
आहा वल ना भवे कार वा काछे एमन अलङ्कार॥ १॥
के बले मा तोमार उमार अलङ्कारेर अप्रतुल,
परि आमि स्थिर तडितेर सूताय गांथा तारार फूल।
प, रे थाकि बले वलि, इन्द्रधनु एकावली,
ता बइ जयन्ती कि आर परवे वैजयन्त-हार॥ २॥
जीवेर जीवन नासार लोलक ता त जाने सर्वजन,
पद्मपत्र जलेर मत दोले ये ता सर्वत्तण।
ज्ञान समुद्रेर महा रतन उपनिषद् आमार कर्णभूषण,
मुकुट आमार सदानन्द नाशेन भवेर अहङ्कार॥ ३॥
ओ मा वराभय मोर हातेर वलय से त सवार जाना कथा,
करुणा कङ्कणे परि मुक्ति फलेर मुक्ता गांथा।
मायावस्त्रे काया ढाकि, सतत संगोपने थाकि,

नितम्बे नियत परि सप्त सिंन्धु चन्द्रहार ॥ ४ ॥
ओ मा अष्ट सिद्धिर नूपुर परि, तातेई वेशो अनुराग,
पुराय गन्ध स्वरूपणी स्वयं श्री मोर अङ्गराग ।
ब्रह्मा आमार अलक्त जल, केशव आमार चोखेर काजल,
कालान्तक ताम्बूल आमि चर्वन करि वारम्वार ॥५॥
ए सब "गोविन्द" देखे छे भालो सुधाइले वलबे सेइ,
वाछा वाछा काला मेघेर आमला वाटा केशे देइ ।
पोहाइले विभावरी शिशु सूर्य्येर सिन्दूर परि,
चांदवेटे काला मेघेर शेंटा दिये थाकि अनिवार ॥ ६॥

अनुवाद

हे माता, मेरे अलङ्कार (गहना) नहीं है, ऐसी बात मुख में न लाना । इस संसार में केवल मैं ही अलङ्कारों का अहङ्कार कर सकती हूं ॥

निश्चय ही यह संसार मेरे अलङ्कारों का थाल है, जिसको काल (शिवजी) प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल को मुझे पहिना देते हैं । फिर (शिवजी) निशाकाल में बदल कर पहिनाते हैं, उसमें अंधेरा और उजेला दोनों दीखते हैं । आहा, कहो तो इस संसार में किसके पास ऐसे अलङ्कार हैं ॥१॥

हे मा ! कौन कहता है कि तेरी उमा को अलङ्कारों की कमी है, मैं स्थिर तडित् (बिजली) के सूतों से गुंथी हुई ताराओं के फूल पहिनती हूं । मैं इन्द्र धनुष की एक लड़ी पहनती हूं । इस

जयन्ती के अतिरिक्त वैजयन्त-हार क्या पहिना जा सकता है? ॥२॥

जीवों का जीवन मेरी नाक का लोलक है, यह सब ही जानते हैं, जो पद्म पत्र जल के समान सर्वदा दोलायमान रहता है। ज्ञान समुद्र का महारत्न जो उपनिषद् है वही मेरा कर्णभूषण है, सदानन्द मेरा मुकुट है, जो संसार के अहङ्कार का नाश करता है ॥३॥

हे माता, वराभय मेरे हाथों के वलय हैं, यह तो सब की जानी हुई बात है, मुक्ति फल देने वाली मुक्ता जड़ित मेरे करुणा कङ्कण हैं। मैं सर्वदा अपने माया वस्त्र को ढककर गुप्त रहती हूं और है नितम्बों में सप्त सागर रूपी चन्द्रहार पहिनती हूं ॥४॥

हे मां, मैं अष्ट सिद्धियों के नूपुर पहिनती हूं, मुझे उनसे ही अधिक अनुराग है, पुण्य गन्धस्वरूपिणी लक्ष्मी स्वयं मेरा अङ्गराग है। ब्रह्मा मेरे चरणों का अलक्त जल है और विष्णु मेरी आंखों का अंजन है, मैं बारम्बार कालान्तक ताम्बूल चावती रहती हूं ॥५॥

कहीं-कहीं काले मेघों की काली को केशों में देती हूं, रात खुलने पर बाल सूर्य्य का सिन्दुर पैरती हूं, सदा काले मेघों से लपेटे हुए चांद का टीका देती हूं ॥६॥

श्री गोबिन्ददास (सा० सा०)

श्री श्री यशोदादेवी-पालित श्री राधामात्र-आधार श्रीकृष्ण
भवनाश्रित श्रीकृष्ण

परिशिष्ट सं० ४

विरक्ति

गहन कानने, वसियार येछे ।१
ताहार रमणी, ताहारे साधिछे ॥२
"चल प्राणनाथ, वाडी फिरे चल ।३
तुमि बिना मोर, केवा आछे बल ॥४
आमारे फेलिया, आइले चलिया ।५
सकलि भूलिले, निदारुण हिया ॥६
मरिव हुतासे, पूडिव विरहे ।७
चाह प्रियापाने, फिरे चल गृहे ॥८
इहाते पुरुष, फिरिया वसिल ।९
अति मृदु स्वरे, कहिते लागिल ॥१०
"गृहे जाह तुमि, आमि ना जाइव ।११
विपिने वसिया, साधन करिव ॥१२
प्रिय जन मुख, आर ना हेरिव ।१३
जप तप करि, ए देह पाडिव ॥१४
घुरिया रमणि, सन्मुखे आसिल ।१५
गद्गद् स्वरे, कहिते लागिल ॥१६
एइ देख शिशु, आनि याछि कोले ।१७
चाहिछे तोमारे, शुन कि वा वले ॥१८

शिशुर वयस, एकइ वत्सर ।१९
जननीर कोले, परम सुन्दर ॥२०
हेनकाले मुखे, वाश्रा वाश्रा वले ।२१
पुरुष से ध्वनि, शुनि चमकिले ॥२२
दुवाहु पसारि, कोले तारे निल ।२३
घन घन चुम्बन, वदनेते दिल ॥२४
वले "वाप किवा, बोलेते डाकिले" ।२५
"तृषित हृदये, सुधा ढालि दिले ॥२६
के शिखाले तोरे, ए मधुर वाणी ।२७
"केन तोर बोले, ढले मोर प्राणी" ॥२८
तखनि हृदय, कांपिया उठिल ।२९
मायेर कोलेते, सन्तान राखिल ॥३०

स्त्रीरप्रति--

वले मायाविनि, कि काज करिलि ? ।३१
वेन्धेछिनू वांध, ताहा भेंगे दिलि ? ॥३२
निदय हयोना, दिओना वेदना ।३३
घरे जाओ आर, एखाने एसनो ॥३४
कर जोड करि, निवेदि कातरे ।३५
कभू उपकार, करे थाकि तोरे ॥३६
आजि सेइ ऋण, परिशोध कर ।३७
आमारे भूलिया, जाह तुमि घर ॥३८

रमणी कहिलेनः—

आमारे लइले, अर्धाङ्ग करिया ।३६
ताडाले पिरीति, यतन करिया ॥४०
संतान हइल, परम सुन्दर ।४१
त्रिज भूते तार, ना आछे दोसर ॥४२
अकूले फेलिया, चलि जाइ तुमि ।४३
निठुर एखून, हइलाम आमि ? ॥४४
उत्तम सेव ने, पालित ओ देह ।४५
आजि तुमि नाथ, धूला पडि रह ॥४६
विचित्र वसन, श्री अंगे परित ।४७
एवे कांथा गाय, कोपीन कटिते ॥४८
क्षुधाय आहार, के तोमारे दिवे ।४९
पशु भय हते, के तोमा राखिवे ?॥५०
पाशरि आभारे, ए सव करह ॥५१
आमारेई पुनः, निदय वलह ? ॥५२

पुरुष कहिलेनः—

सुधांशु वदन, तोमाय देखिले ।५३
भासि सदा आमि, आनन्द हिल्लोले ॥५४
निमिषे निमिषे, हाराइ तोमारे ।५५
कोथा गैल निल, सदाई अन्तरे ॥५६
दुदिन परेते, छाड़ाछाड़ि हवे ।५७
आमि कोथा रव, तुमि कोथा रवे ॥५८

राखि भुजे बांधि, हृदय मा झारे ।५९
तबू काल असि, लये जावे तोरे ॥६०
मरिवे निश्चित, तुमिश्रो मरिवे ।६१
से चरम काले, केवा कोथा रवे ॥६२
तुमि श्रामि जीव, भवेर माझारे ।६३
अकाज करिनू, वांधि परस्परे ॥६४
शुन जीव यदि, तुमि मोर हवे ।६५
अन्य आसि केन, तोरे काडि लवे ? ॥६६
जेइ वाजीकर, मोदेर लइया ।६७
एइ वाजीकरे, आडाले रहिया ॥६८
ताहारे पूछिव, निगूढ इहार ।६९
केन गडे, केन भाङ्गे आर वार ॥७०
तार लीला खेला, मोदेर मरण ।७१
माथाते वांधिया, करये छेदन ॥७२
मिलन यद्यपि, मरनेर पर ।७३
जीवे जीवे तवे, मिलिव आवार ॥७४
ता यदि ना हय, पिरीति वाडावि ।७५
वियोग विधुरा, पराने मरिवि ॥७६
फिरे जाओ घरे, भूलह आमारे ।७७
आमिओ यतने, भूलि जाव तोरे ॥७८
इहाई वलिया, नयन मूदिल ।७९
पतिव्रता सेथा, दाडाये रहिल ॥८०

एकदृष्टे हेरे, पतिर वदन ।८१
हृदय विदरे, ना सरे वचन ॥८२
प्राणनाथ मोर, निल साधु पथ ।८३
निज सुख लागि, भाङ्गि तार व्रत ॥८४
निदय हइया, त्यजिछे ना मोरे ।८५
भालवासे वले, परित्याग करे ॥८६
तपस्या करिले, तार हवे हित ।८७
आमि वाधा दिव, ए नहे उचित ॥८८
हेन काले शिशु, वाआ 'वाआ' वले ।८९
झांपिल शिशुर, वदन अञ्चले ॥९०
चुप कर वाप, विरक्त करो ना ।९१
ध्यान भङ्ग हवे, ओ बोले डेक ना ॥९२
गलाय वसन, प्रणाम करिल ।९३
शिशु कोले करि, आश्रमे आइल ॥९४

पुरुषेर चिन्ताः—

नयन मुदिया, भाविते लागिल ।९५
कोन जन मोरे, जगते आनिल ॥९६
केन वा आनिल, किवा सार्थ तार ।९७
कि सम्बन्ध तार, सहित आमार ॥९८
कि रूप से जन, भाल किवा मन्द ।९९
जीव-जीव सने, कि रूप सम्बन्ध ॥१००

देखिल भाविया, वृहत संसार ।१०१
आज्ञावह मत, धूरे वार-वार ॥१०२
चन्द्र सूर्य्य मेघ, जीव वृक्ष लता ।१०३
कार साध्य आज्ञा, करिवे अन्यथा ॥१०४
एरूप संसार, जे करे सृजन ।१०५
अतीत से जन, ज्ञान चक्षु मन ॥१०६
परिमाण शून्य, एवड संसार ।१०७
परिमाण शून्य, स्रष्टाओ ताहार ।१०८
आमि क्षुद्र कीट, ता सह मिलन ।१०९
कि कौन सम्बन्ध, नहे सम्भवन ॥११०
गज मक्षिकार, प्रेम ता सम्भवे ।१११
मक्षिकार वश, गज केन हवे ? ॥११२
शुनिवेसे केन, आमि यदि डाकि ?।११३
आमि दुःख पाइ, ताहार क्षति कि ? ॥११४
निराश हइया, लागिल कांदिते ।११५
भर्त्सये तांहारे, जत आसे चिते ॥११६
कोथा सृष्टा मोर, निठुर निदय ।११७
सृजन करिया, आमा समुदय ॥११८
मरि किवा वांचि, चोखे नाहि देख ।११९
मोरा केंदे मरि, तुमि सुखे थाक ॥१२०
पदे पदे भय, निवारिते नारि ।१२१
डाकिले दर्शन, ना पाइ तोमारि ॥१२२

खेला करिवारे, मोदेर लइया ।१२३
यदि मन छिल, पूतुल गडिया ॥१२४
तवे केन दिले, ममता चेतन ।१२५
"दुःखेते कांदिया, गोयाइ जनम" ॥१२६
पुरुषेर चित्त, अधीर हइल ।१२७
निराशा सागरे, भासिते लागिल ॥१२८
तवू तांर आशा, छाडिते ना पारे ।१२९
चिन्ता त्यजि पुनः, डाके उच्चे स्वरे ॥१३०
वाप वाप वाप! पुत्र डाके तोर ।१३१
वाप कृपा करि, देह गो उत्तर ॥१३२
कोथा वाप कर, सन्देह भञ्जन ।१३३
परिचय दाओ, छाड विडम्बन ॥१३४
यदि कृपा प्रभु, ना करिवे मोरे ।१३५
यन्त्रणा घुचाओ, हान वज्र शिरे ॥१३६
मरिताम आमि, निश्चय करिये ।१३७
शुधू वेंचे आछि, आशा पथ चेये ॥१३८
तपुवा तोमाय, कि करिले पाइ ।१३९
चलि दाओ मोरे, करिव ताहाई ॥१४०
नाना जन मोरे, नाना कथा वले ।१४१
वल तोमा पाव, कोन पथे गेले? ॥१४२
ये मान्त्र केन्दे छे, सरल अन्तरे ।१४३
आछे आछे आशा, हृदये सञ्चरे ॥१४४

आछे आछे भाव, मने सञ्चारिल ।१४५
कोन मते ताहा, छाडिते नारिल॥१४६
नयन मुदिया, अफोरे झुरिछे ।१४७
सन्मुखे दाडाये, रमणी देखिछे॥१४८
दुग्ध आहरिया, वर्तने करिया ।१४९
शिशु कोले आगे, आछे दाडाइया॥१५०
पति मुख देखि, हृदय फाटिछे ।१५१
कोन मते वामा, धैर्य्य धरे आछे॥१५२
बल साधु शुन, वदन मेलह ।१५३
दुग्ध पान करि, परान राखह ॥१५४
से स्वर सुनिया, अन्तरे बूझिल ।१५५
दुग्ध आहरिया, रमणी आसिल ॥१५६
मुखे पात्र धरे, साधु करे पान ।१५७
आंखि नाहि मेले, ना फुरे वयान ॥१५८
वामा कर जोड़े, वलिछे वचन ।१५९
अवश्य तोमारे, दिवेन दर्शन ॥१६०
आमरा दु जना, तोमार आश्रित ।१६१
मोदेर भूल ना, करोना वञ्चित ॥१६२
वासना आमार, आर किछु नहे ।१६३
जेन तव पदे, मोर चित रहे ॥१६४
स्वामीर चरने, प्रणाम करिया ।१६५
दाडायें रहिल, मुख नेहारिया ॥१६६

पुरुष भाविछे, कि वर मागिव ।१६७
प्रिय जन वञ्चि, किसे सुखी हव ॥१६८
मनेते धारणा, करिवारे नारि ।१६९
स्त्री पुत्र वञ्चिया, सुखी हते पारि ॥१७०
ऐश्वर्य मांगिले, भगवान काछे ।१७१
ताहाते विपद, पदे पदे आछे ॥१७२
अन्य कारु नाइ, हेन कोन धन ।१७३
ताहारे ऐश्वर्य्य, वले सब जन ॥१७४
सकलेर पिता, कहिव तांहाय ।१७५
कारे नाहि दिया, सुधु दाओ आमाय ॥१७६
ऐश्वर्य्येर सुख, प्रभुत्व करिया ।१७७
किम्बा आन जने, मने दुःख दिया ॥१७८
आमि वड हव, अन्ये छोट हवे ।१७९
निम्ने वसि मोर, चरन सेविवे ॥१८०
ताहे जेवा सुख, शीघ्र क्षय हवे ।१८१
दम्भ अहङ्कार, आदि वेडे जाय ॥१८२
वड हव पद, दिया आन वुके ।१८३
छि छि काज नाई, हेन भोग सुखे ॥१८४
द्वेष हिंसा लोभ, दम्भ वाडि जावे ।१८५
क्रमे पशुमत्त, चरित्र हइवे ॥१८६
साधु भाव युत, मनुष्य हृदये ।१८७
ऐश्वर्य सम्भोगे, जाय क्षय हये ॥१८८

वड मूर्ख जारा, मांगे अष्ट सिद्धि।१८९
क्षमताय कभू, नहे सुख वृद्धि।।१९०
जिनि महाराज, साध मिटे जाय।१९१
राज्ये सुख लेश, नाहि तार ताय।।१९२
लक्षपति यिनि, तिन लक्ष आशा।१९३
तीन लक्ष पेले, ना मिटे पिपासा।।१९४
क्षमताय सुख, आगे किछु हय।१९५
भोग मात्र जाहा, हये जाय क्षय।।१९६
सव साध येई (जेई), मिटाइते पारे।१९७
साध नाहि थाके, ताहार अन्तरे।।१९८
साध नाहि जार, अन्तर भितरे।१९९
क्षमताय सुख, दिते नारे तारे।।२००
आमि ए जगते, प्रिय पात्र हव।२०१
सवे भालवासि, भालवासा निव।।२०२
मधुर वचन, कहिव सुनिव।२०३
अन्ये सुख दिया, तार दुःख निव।।२०४
आमार रमणी, भाविछे अन्तरे।२०५
ऐश्वर्य्य लइया, भूलि जाव तारे।।२०६
ऐश्वर्य्य 'ल'वना, माधुर्य्य लइव।२०७
शीतल हइव, शीतल करिव।।२०८
रूप रस स्वाद, आनन्द भुञ्जिव।२०९
काहार सम्पत्ये, वाधा नाहि दिव।।२१०

आनन्द भुञ्जिव, अन्ये ना वञ्चिव ।२११
रूप रस स्वादे, केवल सम्भव ॥२१२
जे आनन्द वाडे, अन्ये भाग दिया ।२१३
से आनन्द वर, लइव मागिया ॥२१४

आवार

नारी कार्य्य भावि, द्रविल हृदय ।२१५
वन्धन सृजेछे, किवा मधु मय ॥२१६
आमि अनाहारे, दुःख नाहि देहे ।२१७
रमणी व्याकुल, स्थिर नहे गेहे ॥२१८
ए मधु वन्धन, सृजिल जे जन ।२१९
निदय केमने, हवे सेइ जन ॥२२०
पुत्र जन्म आगे, स्तने दुग्ध दिल ।२२१
मातृ स्नेह दिया, तारे वाञ्चाइल ॥२२२
पाछे कोन माता, स्तन नाहि देय ।२२३
सृजिल उपाय, दिये सुख पाय ॥२२४
वत्स पाछे गाभी, हम्वारवे जाय ।२२५
जार ए कौशल, निदय से नय ॥२२६
निठुरेर काज, ना आछे ता नय ॥२२७
दुई गुणान्वित, सदय निदय ।२२८
फाल्गुनी पूर्णिमा, जे जन सृजेछे ।२२९
भाद्र अमावास्या, सेइ त करेछे ॥२३०
चेतन से जन, चेतन सृजेछे ।२३१

स्वोय गुण दोष, मोदेर दियेछे ॥२३२
जाहा तार नाइ, केम नेता दिवे ।२३३
मनुष्ये जा आछे, सेजने मिलिवे ॥२३४
एइ युक्ति धरि, जगतेर नाथ ।२३५
हवेन निश्चय, मुनुष्येर मत ॥२३६
अमानुष सृष्टि, करिल जे जन ।२३७
मानुष अधिक, आछे किछू गुण॥२३८
अतएव हन, भगवान जिनि ।२३९
मनुष्यओ किछू, हइवेन तिनि ॥२४०
जत खानि तार, मनुष्य अतीत !२४१
धरिते नारिव, नहेत प्रतीत ॥२४२
मनुष्य प्रकृति, व्यतीत अन्तरे ।२४३
धरिते मनुष्य, शकति ना धरे ॥२४४
मनुष्ये जा नाइ, किन्तु आछे ताते ।२४५
केमन मानुष, धरिवे ता चित्ते ॥२४६
सेई टुकु तार, वाछिया लइव ।२४७
यत टुकू हृदये, धरिते पारिव ॥२४८
सव खानि निले, ज्ञानातीत हय ।२४९
ज्ञानातीत जाहा, प्रयोजन नाइ ॥२५०

अतएवः—

जिनि आमादेर, भजनीय हन ।२५१
समुदय तार, मोदेर मतन ॥२५२

वड भगवान, भजिते जाइवे ।२५३
वृथा श्रम ह्वे, लाग ना पाइवे ॥२५४
एइ सूर्य्य घोरे, महासूर्य्य पाशे ।२५५
चोखे नाहि देखि, ज्ञाने ते प्रकाशे ॥२५६
ए सूर्य्य उपेखि, तार काछे आवे ।२५७
वृथा श्रम सुधू, आलो नाहि पावे ॥२५८
यदि सूर्य्य लोके, पार जाइवार ।२५९
तवे महा सूर्य्ये, ह्वे अधिकार ॥२६०
आवार देखिछि, एइ जग माझे ।२६१
युग्मरूपे जीव, मात्रे ते विराजे ॥२६२
पुरुष प्रकृति, देखि सव जीवे ।२६३
एइ दुइ भाव, भगवाने ह्वे ॥२६४
भजनीय यदि, थाके कोन जन ।२६५
अवश्य हइवे, मनुष्य मतन ॥२६६
तार छाया मोरा, युगल सकल ।२६७
जार छाया सेओ, हइवे युगल ॥२६८
ओहे माता पिता, देखा दाओ मोरे ।२६९
सन्तान तोमार, डाकिछे कातरे ॥२७०
वहुतर साध, मन माझे आछे ।२७१
कोन कोन साध, अवश्य मिटेछे ॥२७२
पिपासा ओ जल, देखिछे एकत्र ।२७३
भालवासा आर, भालवासा पात्र ॥२७४

आवार देखिछे, ाध शत शत ।२७५
नाहि मिटे, दुख देय अविरत ॥२७६
तुमि कि एमन, क्षुद्रचेता हवे ।२७७
साध दिले, आर, ताहा ना मिटावे ? ॥२७८
वांचिवार साध, मनेते दियाछे ।२७९
अथच देखिछे, मरण सृजेछे ॥२८०
अन्तरे विश्वास, कभू नाहि हय ।२८१
त्रिजगत नाथ, तिनि नीचाशय ॥२८२
जे साध दियाछे, अवश्य पूरिवे ।२८३
एखाने ना हय, परकाले हवे ॥२८४
वांचिवार साध, मनेते प्रवल ।२८५
ताहाते वुझिनू, आछे पर काल ॥२८६
भगवान लागि, कान्दे मोर मन ।२८७
ताइ वुझि तुमि, आछे एक जन ॥२८८
केह वले तुमि, शुधू तेजोमय ।२८९
तेज देखिवार, मोर साध नाइ ॥२९०
यदि साध हय, चाव भानु पाने ।२९१
सृष्टि तेज जाहा, ना धरे नयने ॥२९२
निराकार तुमि, केह वले थाकि ।२९३
निराकार धरि, के मनेते वुके ॥२९४
निराकार रूपे, जे भजे तोमाय ।२९५
पिरीति ना जाने, तोमारे ना चाय ॥२९६

तोमारे करिया, भालोवासा नाइ ।२९७
थाकिले सन्तुष्ट, तेजेते कि हय ॥२९८
प्रवासे पुरुष, पत्र लिखे गृहे ।२९९
रमणी कि तार, तृप्त हय ताहे ॥३००
पञ्चेन्द्रिय द्वारा, तोमारे भुञ्जिव ३०१
तवे दयामय, तोमारे वलिव ।३०२
वदन हेरिव, वचन शुनिव ॥३०३
अङ्ग घ्राण स्पर्श, आस्वादन लव ॥३०४
सुखेर दुःखेर, काहिनी वलिव ।३०५
भालोवासा दिव, भालोवासा लव ॥३०६
आपन भाविया, निकट वसिव ।३०७
निगूढ रहस्य, शकल शुनिव ॥३०८
जाहा नाहि वुझि, जिज्ञासा करिव ।२०९
केमने कि हय, सब जानि निव ॥३१०
वड वड आंक, करिते ना पारि ।३११
वूझिया लइव, तन्न तन्न करि ॥३१२
कविता लिखिया, तोमारे शुनाव ।३१३
शुद्ध करि दिते, मिनति करिव ॥३१४
कि वा इच्छा हय, सङ्गीत गाइव ।३१५
किवा तोमा गीत, सुखेते शुनिव ॥३१६
यदि इहा हय, साथक जीवन !३१७
अष्ट सिद्धि आदि, सुधू विडम्बन ॥३१८

इहाई भाविते, हासिया उठिल ।३१६
भावे, 'एत दिने, हइनू पागल ॥३२०
एइ ये वासना, मोर मन कथा ।३२१
शुनिछ कि तुमि, उहे पिता माता ?॥३२२
आमि तोर सृष्ट, पाइ शुनिवारे ।३२३
तुमित वधिर, कभू हते नारे ॥३२४
जाहा जाहा वलि, तुमि शुन सव ।३२५
तवे उत्तर केन, नाहि दाओ वाप' ॥३२६
एमन समय, वाआ वाआ वोल ।३२७
आपन शिशुर, श्रवणे पशिल ॥३२८
रहिते नारिल, नयन मेलिल ।३२६
रमणीर कोले, शिशुरे देखिल ॥३३०
हस्तेते दुग्धेर, वर्तन लइया ।३३१
झूरिछे पतिर, काछे दाडाइया ॥३३२
उहार वदने, चाहिया रहिल ।३३३
कथा नाहि कहे, आंखि छल छल ॥३३४
शिशु मुख हेरि, मनेते भाविछे ३३५
एइ जीव शिशु, चित्त आकर्षिछे ॥३३६
प्राण दिते पारि, एइ शिशु लागि ।३३७
अथच ओ हते, किछु नाहि मागि॥३३८
निस्त्रार्थ वन्धन, जे केल सृजन ।३३६
अन्तत हइवे, आमारि संतन ॥३४०

वावा वलि आमि, डाकिले तांहारे ।३४१
नयन मेलिवे, तुषिवे आमारे ॥३४२
आमि त छिलाम, नयन मुदिया ।३४३
कथा नाहि कव, सङ्कल्प करिया ॥३४४
वावा वोल वलि, सङ्कल्प भाङ्गिल ।३४५
आनन्द तरङ्गे, हिया उथलिल ॥३४६
कि साधने आमि, तार पुत्र हव ।३४७
वावा वलि डाकि, ताहारे चेताव ॥३४८

*   ※   *

आवार चाहिछे, रमणीर पाने ।३४९
कनक पूतलि, झूरिछे नयने ॥३५०
आम उहा प्रति, निठुरालि कैनू ।३५१
अकूल सागरे, भासाइया दिनू ॥३५२
त्यजिया उहारे, आइलाम वने ।३५३
फिरिया जाइते, नारिछे भवने ॥३५४
शिशु कोले करि, आहरण करे ।३५५
दुग्ध पियाइया, प्राण देय मोरे ॥३५६
ये वन्धने आमि, वांधियाछे ओरे ।३५७
सेइ त वन्धने, वाँधिव ईश्वरे ॥३५८
येन चेताइल, वाश्रा वाश्रा वले ।३५९
आमि चेताइव, आमार पितारे ॥३६०
सरल हइव, वदने चाहिव ।३६१

वाम्रा वाम्रा वले, पितारे डाकिव ॥३६२
कहिछे नारीके, वसह अभेते ॥३६३
वसिल रमणी, दुग्ध दिल हाते ॥३६४
सन्तान वदने, सतृष्णा चाहिछे ॥३६५
धीरे मने मने, कलकि भाविछे ।३६६
यदि प्रभु एस, पुत्र रूप धरि ।३६७
तवे आमि तोमा, भजिवारे पारि ॥३६८
किछू ना मांगित्र, विरक्त ना हव ।३६९
दिवानिशि कोले, लइया वेडाव ॥३७०
आध आध बोल, शुनिव वदने ।३७१
सुखेर सागरे, रव राति दिने ॥३७२
यदि भगवान, मोर पुत्र हत ।३७३
तोरे भाल वासि, साध नां मिटित ॥३७४
आवार चाहिछे, रमणीर पाने ।३७५
माधुरी खेलिछे, से चांद वदने ॥३७६
वले, "प्राणप्रिया, तुमि किसे जन ।३७७
जांरे आमि खूंजि, करिछे भजन ? ॥३७८
"शुन प्रिया तुमि, भगवान हओ ।३७९
देख कत प्रेमे, पूजिव तोमाय ॥३८०
"एस भगवान, मोर नारी हये ।३८१
पूजित्र तोमारे, प्राण उषा ये" ॥३८२
क्षणिक पुरुष, नीरव रहिल ।३८३

धीरे धीरे पुन, कहिते लागिल ॥३८४
'रमणी रूपेते, ना हवे भकति ।३८५
पुरुष करता, अधीन प्रकृति ॥३८६
शुन प्रिये आमि, तोर पति हइ ।३८७
आमारे पूजिते, तोर दोष नाइ ॥३८८
आमारे पूजिया, शिक्षा दाओ तुमि ।३८९
केमने ताहारे, पूजा करि आमि ॥३९०
मोर जत दोष, सब भूले जाओ ।३९१
मोरे प्रेम तोर, सकलि जागाओ ॥३९२
मोरे भगवान, भाविया अन्तरे ।३९३
भक्ति भावे पूजा, करह आमारे ॥३९४
गन्ध पुष्प आनो, करि आहरण ।३९५
पूज मोरे आमि, करि दरशन ॥३९६
क्षणेक ए रूप, करह सेवन ।३९७
सेवा शिखि तारे, करिव भजन ॥३९८
तुमि येन मोरे, करेछे वन्धन ।३९९
सेइ मन वश, करिव से जन' ॥४००

*   *   *

आनन्दे रमणी, चलिल धाइया ।४०१
सेवार सामग्री, आने आहरिया ॥४०२
प्रेमेर तरङ्ग, सेविते ना पारे ।४०३
चरण धुइते, कांपे थरथरे ॥४०४

फूकारिया कांदे, पति मुख चेये ।४०५
अटल पुरुष, द्रवि गेल हिये ॥४०६
प्रेमे गद गद, चुम्बिल नयन ।४०७
सुखमय देखे, ए तिन भुवन ॥४०८
एइ त पिरीति, महा-शक्ति-धर ।४०९
इहाते वांधिव, परम ईश्वर ॥४१०
एत शक्तिधारी, ना देखि जगते ।४११
यदि वांधा जाय, वांधिव पिरीतें ॥४१२
अतएव सुन, परम कारण ।४१३
प्रेम डोरे तोमा, करिव वन्धन ॥४१४
पिरीति करिव, केमने तोमाय ।४१५
यदि तुमि ताय, ना कर सहाय ॥४१६
मानुषेर सङ्गे, पिरीति करिते ।४१७
मानुष तोमाय, हइवे हइते ॥४१८
किवा हओ प्रभु, किवा हओ पिता ।४१९
भाइ कि भगिनी, प्राणनाथ माता ॥४२०
कि वा बन्धु हओ दुहिता तनय ।४२१
कि मानुष हये, हओ हे उदय ॥४२२
रूपे गुणे प्राण, काडिया लइया ।४२३
शीतल चरणे, लओ आकर्षिया ॥४२४
तवे त कांदिव, चरणे पडिये ।४२५
येन नारी कान्दे, पति मुख चेये ॥४२६

चरण धोवाव, आंखि वारि दिया ।४२७
प्राण जुडाइव, वचन सुनिया ॥४२८
तुमि निराकार, तुमि तेजोमय ।४२९
ताहाते आमार, किवा एसे जाय ॥३३०
आमार उद्देश्य, तोमारे पाइव ।४३१
निराकार सने, किरूपे मिलिव ?४३२
येन काला गाछेर, सने हय विया।।३३३
तेमने पिरीति, तेजेर वरिया ॥४३४
जारा प्रेम करे, निराकार सने ।४३५
प्रेम मुखे वले, वस्तु नाहि जाने ॥४३६
तेजोमय देह, मनेते स्मरिया ।४३७
हाय हाय करे, मस्तक कूटिया ॥४३८
वले एइ प्रेम, करिनू ईश्वरे ।४३९
भाल वासा भान, भय करे तारे ॥४४०
मस्तक कूटिया, याके खुसि कर ।४४१
से त अति मन्द, निदय निठुर ॥४४२
जाहारे असुर, भाव तुमि मने।४४३
भय विन प्रेम, करिवे केमने ?४४४
मुखे बल प्रेम, मने कर भय ।४४५
एमन प्रेमेने, मोर काज नाई॥४४६
वलिते वलिते, देखिछे स्वपन ।४४७
सुन्दर विपिने, नारी कय जन ।४४८

पंच-सखी-सभा

भुवनमोहनि, रूप रस खानि, शैशव योवन मेला । १
माधवि लताय, कुसम शय्याय, अचेतन नव वाला ॥ २
वसिया निकटे, करिछे वीजन, रूपवती एक जन । ३
वालार वदने, तरङ्ग खेलिछे, करिछे ता निरीक्षण ॥ ४
आर तीन नारी, क्रमे तथि एल, कोथा हते नाहि जानि। ५
देखिछे चाहिया, वसि चारि भिते, मुखे कारु नाहि वानी॥ ६
रमणीर मेला, दैवे मिलियाछे, केह कारे नाहि चिने । ७
अचेतन वाला, देखे सवे चाहि, सेवा करे एक मने ॥ ८
नयन मेञ्जिल, अचेतन वाला, जने जने मुख हेरे । ९
चिनिते नारिया, कहिवारे गिया, सलाजे कहिते नारे ॥१०
यत सखी गण, युवति रूपसि, अवला सरला वाला ।११
सुस्निग्ध नयने, परस्परे चाहि, सखी भाव उपजिला ॥१२
पूछे एक सखि, 'केन अचेतन, किवा नाम कोथा घर ।१३
काहार हृदय, शीतल करह, कोथा तव प्राणेश्वर ? ॥१४
ए घोर विपिने, आइल केमने, केन हले अचेतन ।१५
वदन कमल, प्रफुल्ल नेहारि, पेयेछ कि प्राणधन ?' ।१६
कथा शुनि वाला, लाजेते कातर, कथा कहे धीरे धीरे ।१७
'तोरा के गो धनि, भुवनमोहनि, परिचय देगो मोरे' ॥१८
केहत काहारे, कभू देखे नाइ, करे मुख निरीक्षण ।१९
एक नव वाला, रङ्गिनी से नामे, कहे निज विवरण ।२०

आग्रह करिया, काहिनी सुनिते, वसिल सकल नारी ।२१
मधुर हासिया, सखी मुख चेये, कहे वाला धीरी धीरी ॥२२

रस रङ्गिनी-

(शान्त रस)

रसरङ्गिनीर उक्तिः-

गृहेर चौदिके, सुन्दर वागान, गवाक्ष हइते देखि ।१
कभू वा बागाने, छुटाछुटि करि, चपलिया दुनू पाखी ।।२
दैवे एक दिन सन्मुखे देखिनू, फूटिछे दोपाटि फूल ।३
कलि एक तूलि, चाहिया देखिनू, चित्रेर नाहित तूल ॥४
दले दले देखि, सुन्दर एँकेछे, भरि एकि अपरूप ।५
देखि यत फूल, एंकेछे सुन्दर, दियाछे मधुर रूप ॥६
धरिब से जने, जेवा आंके वने, दिवा निशि भावि ताई ।७
जिज्ञासि सवारे, तार परिचय, जाहारे सन्मुखे पाई ।८
केह हासि कय, "अवोध वालिका, ओ सब आपनि हय" ।९
आमि कहि तारे, "मन दिया तुमि, चित्र रङ्ग देख नाइ ॥१०
एइ देख चेये, एक फूल गाछ, एकइ ताहार मूल ।११
आपनि हइले, एक रूपइ ह' ते, केन दुई वर्ण फूल ? ॥१२
प्रति दले दले, कत कारीगिरी, मन दिया जेवा देखे ।१३
ए सव सौन्दर्य, आपनि हयेछे, ए भरम नाहि थाके' ॥१४
केह वले 'बाला, के जाने के आंके, जानि खूजि किवा फल' ।१५

आभि भावि मने, पाइले से जने, ता' सने काढाव काल ॥१६
केमने कि हय, कोथा रङ पाय, कि रूपे कुसुमे माखे ।१७
कि तुलिते आंके, पूछिवता हाके, शुनिव तांहार मुखे ॥१८
कोन एक वाला, वडइ मधुर, वलिल आमार ठाम ।१९
"निर्जने वसिया, कुसम आंकये, रसिकशेखर नाम" ॥२०
कि मधुर नाम, रसिकशेखर, कर्णे मोर जुडाइल ।२१
अवोध वालिका, किछू नाहि वूझि, नामे केन सुख दिल ॥२२
कत तांर रूप, मधुरस कूप, आपाद मस्तक मिठे ।२३
तांहारे भाविते, क तछवि चिते, सुखेर तरङ्ग उठे ॥२४
वेडाइव खूंजे, एइ वन माझे, येखाने तांहारे पाइ ।२५
आडाले दांडाते, आंकिवे देखिव, दिवा निशि भावि ताइ ॥२६
कत फूल दल, निहारे सरस, कत कलि फूटियाछे ।२७
मने हय येन, फूले रङ दिया, एइ मात्र पलायेछे ॥२८
निकटेते आछे, इहाइ भाविया, धरिते छूटिया जाइ ।२९
निकुञ्ज देखिले, चुपे द्रुत गिया, उकि मारि देखि ताइ ॥३०
रसिकशेखर, खूंजिया वागाने, वडइ कातर हनू ।३१
दिवानिशि हेन, भावि ओर खूंजि, कोथाओ नाहिक पैनू ॥३२
कखन वा आसे, कोन ठाइ वसे, कौन पथे फिरे जाय ।३३
प्रति कुञ्जे कुञ्जे, खूंजिया वेडाइ, पदचिह्न नाहि पाइ ॥३४
लुकाइया आंके, लुकाइया राखे, पाछे केह देखे भय ।३५
एमन मानुषे, देखिवारे साध, द्विगुण वाडिया जाय ॥३६
प्रासाद उपरे, गवाक्ष खूलिया, फूलेर वागाने चाइ ।३७

स्पन्द हीन हये, थाकि दांडाइये, यदि देखिवारे पाइ ॥३८
निराशे कातर, क्षीण कलेवर, भाविलाम मने-मने ।३६
समुदय मिछा, वृथा श्रम मोर, सुधू घोर विडम्बन ॥४०
भाविते भाविते, परान द्रविल, नयने वहिल वारि ।४१
छाया मत देखि, वागाने वसिया, रसिकशेखर हरि ॥४२

* * *

द्रुत धेये जाइ, पांजर वाजंय, शुनिया लुकाल वने ।४३
कत वा खूंजिनू, उद्देश ना पानू, फिरिलाम दुःख मने ॥४४
जागि कि स्वप्ने, कि देखिनू वने, सत्य कि देखिनू तारे ।४५
भावि भावि किवा, पागल हइनू, मायाय वञ्चिल मोरे ॥४६
आशा नाहि जाय, खूंजिया वेडाइ, गवाक्षे दांडाये थाकि ।४७
रसिकशेखर, गुणेर सागर, वलिया कांदिया डाकि ॥४८
कि जाने केमने, एत परिश्रमे, नाहि वोध हय क्लान्ति ।४६
वरञ्च खूंजिते, सुख पाइ चित्ते, मने येन कत शान्ति ॥५०
वहु दिन परे, देखि वन माझे, विरले वसि कि करे ।५१
कहे बलराम, चुपे-चुपे जावे, तवे से देखिवे तारे ॥५२

* * *

जाँइ धीरि-धीरि पदांगुले दिया भर ।५५
पांजर खूलिया चलि सभय अन्तर ॥५४
पथे पाछ धरा पडि इति उति चाइ ।५५
बन्धुजने पाछे लुकाइया जाइ ॥५६
गोपनीय पथे चलि आडाले-आडाले । ५७

क्रमे-क्रमे दाडालाम कामिनीर तले ॥५८
वूझिनू रसिक - वर कुञ्जेर ओ धारे ।५६
कि करिव कि कहिव चिन्तिनू अन्तरे ॥६०
चुपे-चुपे गेनू देखि वृक्ष ठेस दिये । ६१
वसिया आछेन केह भयङ्कर हये ॥ ६२

देखिया तांहारे, प्राण उडे डरे, दांडानू स्तब्ध हये ।६३
प्रकाण्ड आकार, अति भयङ्कर, थर-थर कापि भये ॥६४
बूझिनू तखनि, जिनि हन इनि, आमादेर जाति नय ।६५
इहार सहिते, नारिव मिलिते, स्वतन्त्र ये वस्तु हय ॥६६
भीषण लोचन, विकट दर्शन, खांड़ा रहियाछे पाशे ।६७
से रूप देखिया, द्रुत पलाइया, फिरिया आइनू त्रासे ॥६८
गृहेते फिरिया, निराश हइया, पडिया रहिनू घरा ।६९
"एइ के आमार, रसिकशेखर, देखि भये प्राण हारा ॥७०
रसिकशेखरे, काज नाइ मोरे, काज नाइ बांचि प्राने ।७१
जले झांप दिव, परान त्यजिव, दृढ़ करिलाम मने ॥७२
एमन समय, देखिलाम चाहि, प्रजापति उडि ऐल ।७३
येन तारे आंकि, सुन्दर करिया, एइ मात्र छाडि दिल ॥७४
सुन्दर एंकेछे, कि रङ दियेछे, मुगध हइया चाइ ।७५
से चित्र देखिया, उठिनू कांदिया, वलिया रसिकराय ॥७६
अन्तरे भाविनू, प्रकाण्ड से तनु, दीघल अङ्गुलि गुलि ।७७
ए सूक्ष्म आंकिवे, केमने धरिवे, एइ रूप सूक्ष्म तुलि ।।७८
भ्रम कि हइल, केह कि वञ्चिल, आगे लव ए सन्धान ।७९

•

एखन आमार, भय किवा आर, पूछि जाई तार स्थान ॥८०
निकटेते जाव, कोन्दल करिव, मारिवारे यदि आसे ।८१
वलिव ताहारे, वालिकारे मारे, जग भरिवे तू यशे ॥८२
मरिव वलिया, एसेछि निकटे, गला चेपे मोरे मार ।८३
वांचिया कि फल, असुर हइल, आमार रसिकवर ॥८४
मने दृढ़ करि, चलिलाम धीरि, दांडाइनू लुकाइया ।८५
ना देखिल मोरे, आमि देखि तारे, तांर भाव ठाहुरिया ॥८६
हेनइ समय, चारि दिके चाहि, काके काछे नेहि देखि ।८७
क्रमे उन्मोचन, अङ्गेर साजन, करिते लागिल सखि ।८८
देखि स्तब्ध हये, मुखोस परिये, हइयाछे भयङ्कार ।८९
वड वड हात, वड वड दांत, किछुइ नहेक तार ॥९०
सकलि फेलिल, मानुष हइल, तवे सूक्ष्म तुलि लये ९१
एक मने आंकि, इहा आमि देखे, पश्चाते दांडानू गिये ॥९२

❀ ❀ ❀

सेटि वन फूल, सुन्दर अतुल, राखिलेन तृण माझे ।९३
कतलोक जाय, नाहि देखे जाय, विव्रत संसार काजे ॥९४
आपनि आंकिया, देखिछे वसिया, नयने वहिछे धारा ।९५
आमि दांडाइया, से ओ ज्ञान नाइ, आनन्दे आपन-हारा ॥९६
तूलिते सुगन्ध, यतने माखिया, फूलेते दिते छे छिटे ।९७
कुसुम आंकिछ, सुखेते हाशिछे, त्वणे शिहरिया उठे ॥९८
शामुक लइया, आंकिते लागिल, हटात् देखिल मोरे ।९९
तरस्त हइया, सागरे फेलिल, अवनत मुख करे ॥१००

अति लज्जा पाय, मुख ना उठाय, आमि पानू लज्जा अति ।१०१
नमित वदने, रहिनू दांडाये, आत्महारा शून्य मति॥१०२
कांपि थर-थर, वुक दुर-दुर, मुखे नाहि कथा सरे ।१०३
लज्जा ओ आतङ्क, आशा ओ आनन्द, हृदयेते खेला करे ॥१०४
आमार अवस्था, देखिया तखन, बूझि दया ह'लो मोरे । १०५
ईषत् चाहिल, इङ्गिते डाकिल, काछे गेनू धीरे-धीरे ॥ १०६
किछू ना कहिल, आमि हेंट मुखे, दांडानू स्तब्ध हये ।१०७
क्षणेक रहिया, कहे धीरे-धीरे, आगमन कि लागिये ?१०८
किवा कण्ठस्वर, अमृतेर धार, मोह पाइलाम सखि ।१०९
मुख हेंट करे, कथा नाहि फुरे, नीरवे दांडाये थाकि ॥११०
मधुर वचन, सङ्गीतेर मत, शुनिया आश्वास पानू। १११
साहस बांधिया, लज्जाते यागिया, धीरे-धीरे तारे कनू ॥११२
मुखोस परिया, आछिले वसिया, भये ना आसिते पारि ।११३
कत वा भेवेछि, कत वा केन्देछि, आसि जाइ फिरि-फिरि॥११४
कहिवारे गेल, किन्तु ना कहिल, केवा जाने तार मन ।११५
क्षणेक रहिया, आवार पूछिल, कि लागिया आगमन?११६

आमि

चित्र चारिदिके, ज्ञानहारा देखे, आनू जिज्ञासार तरे ।११७
केन वा आंकिछ, लुकाये राखिछ, किवा सुख चित्र करे ॥ ११८
केह यदि देखे, देखि ना भूलिवे, पण्ड श्रम मात्र सार ।११९
जार लागि आंकि, से त नाहि देखे, कि लागि ए श्रमभार ॥१२०

रसिकशेखर

अवनत मुखे, क्षणेक रहिल ।१२१
ईषत् हासिया, कहिते लागिल ॥१२२
लोके हवे खुसि, मोर चित्र देखि ।१२३
मोरे प्रशंसिवे, एइ लागि आंकि ॥१२४

आमि

ता यदि हइवे, सुचित्र आँकिया ।१२५
सागरेते राख, केन लुकाइया ? १२६

रसिकशेखर

पुनः अवनत, वदने से रहे ।१२७
ईषत् हासिया, धीरे-धीरे कहे ॥१२८
ये वा सुख पाय, मोर चित्र देखि ।१२९
खूंजिया लइवे, येथा आमि राखि ॥१३०
छवि नहे भाल, ताइ वा लुकाइ ।१३१
लुकाये उहार, गौरव वाडाइ ॥१३२
जेवा चित्रकर, करिवे स्वीकार ।१३३
चित्र करा मत, सुख नाहि आर ॥१३४
चित्र करि आमि, वड सुख पाइ ।१३५
आंकिया आंकिया, ए काल कटाइ ॥१३६
तुमि नव वाला, आनन्द पाइला ।१३७
श्रम ये आमार, संफल करिला ॥१३८

चलिते चलिते, हल अदर्शन, येन छाया मिलाइल ।१३९
भाविया चिन्तिया, बूझिते नारिनू, केन अकस्मात् गेल ॥१४०
केमन मानुष, किछू ना बुझिनु, भोर हये आमि छिनू ।१४१
चेतन ना छिल, ताइ पलाइल, किवा स्वपन देखिनू ॥१४२
आवार खुंजिते, पाइया देखिते, आइलाम तार स्थाने ।१४३
निभृत निकुञ्जे, आसने से वसि, वसिनू ताहार वामे ॥१४४
विभोर हइया, हाते तुलि लये, आंकेन रसिकवर ।१४५
निस्पन्द रहिया, देखि आड चोखे, पाछे हाथ कांपे तार ॥१४६
चित्र सारा ह'ल, सन्मुखे राखिल, देखि अति सूक्ष्म काज ।१४७
सूक्ष्म सूक्ष्मतम, किछू नाहिं देखि, तवे चक्षे दिनू काच ॥१४८
काच चोखे दिया, मक्षिकार शिरे, देखि अति सूक्ष्म चित्र ।१४९
किवा कारीगरि, जाइ वलिहारि, सुखे पुलकित गात्र ॥१५०
एक विन्दु जल, नयने आइल, मुख हेंट करि रनू ।१५१
कचू पाता एक, तखनि ऐंकेछे, हाते करि तुलि लनू ॥१५२
पाता माझे येन, चन्दनेर फोटा, तुलिते दियाछे छिटे ।१५३
पुखुरे जाइया, कत वा धूइनू, किछुते ना दाग उठे ॥१५४
मुख पाने तार, चाहिया रहिनू, कहिलाम मृदुस्वरे ।१५५
"तोमारे देखिया, नाहि जानि केन, कांदिवार इच्छा करे॥१५६"
इहाते रसिक, हइया लज्जित, चाहिल आमार पाने ।१५७
मुख चेये देखि, छल छल आंखि, कि जाने कि तार मने ॥८१५
नयने नयन, हइल मिलन, मुख अवनत करे ।१५९
बुझिते नारिनू, माथा हेंट करि, कि कहिल धीरे धीरे ॥१६०

देखिते देखिते, मयूर आइल, नाचे पुच्छ प्रसारिया ।१६१
मयूरेर नृत्य, हाते तालि दिया, देखिछे मगन हइया ॥१६२
कनू धीरे धीरे, "लोके कहे मोरे, ए सब आपनि हय" ।१६३
आमारे चाहिल, येन व्यङ्ग कैल, मुखे कथा नाहि कय ॥१६४
एमन समय, क्षुद्र एक पाखी, गाय आम्र डाले वसि ।१६५
श्रवण पातिया, मधु गीत शुने, मुखे मुखे मधु हासि ॥१६६

तखन

डाकिल गर्धव, पाखि उडे गेल, आमारे शुनाये कय ।१६७
ए जगत माझे, विपरीत विना, कभू रस नाहि हय ॥१६८
अमावास्या विना, ज्योत्स्ना सम्भोग, केह ना करिते पारे ।१६९
ज्योत्स्ना भुञ्जाते, अमावास्या हैल, लोके ता वूझिते नारे ॥१७०
नित्य पूर्ण चन्द्र, यदि देखे लोके, चान्दे ना आनन्द दिवे ।१७१
निगूढ रहस्य, लोके ना वूझिया, देखे नाना मन्द भवे। १७२
ताहारे पूछिनू, गर्धवेर डाके, आछे कि वा कारीगरी" ।१७३
सुन्दर कुत्सित, समान कौशल, कहे मोरे धीरि धीरि ॥१७४

* * *

कपोत कपोती, करिते पिरीति, आगे आसि दांडाइल ।१७५
आमारे चाहिया, ईषत हासिल, रङ्ग देखे कुतूहले ॥१७६
गला फुलाइया, कपोतीर आगे, 'वकम' करिया जाय ।१७७
से रङ्ग देखिया, वदन झांपिया, हासि मोरे पाने चाय ॥१७८
दुइटि विडाल, युद्ध करिवारे, आसिया दांडालो आगे ।१७९
विपरीत दिके, रहे ताकाइया, विकट गर्जन रागे ॥१८०

से भाव देखिया, धैर्य्य हाराइया, हासिया पडिल धरा।१८१
आमिओ वा सने, लागिनू हासिते, आनन्दे नयन धारा॥१८२
ए सव नेहारि, हासिया हासिया, वडइ चपल हलो।१८३
ताहाय आमाय, वाध वाध भाव, क्रमे दूर हये गेल॥१८४
रस आस्वादिते, साथ तव चित्ते, एसो वेडाइववने।१८५
रसिकशेखर, चलिल उठिया, आमि जाइ तार सने॥१८६
सेइ पथ दिया, जाय कोन जन, रसिक चलिल पाछे।१८७
चुपे चुपे जेये, हुङ्कार करिल, हटात् ताहार पाछे॥१८८
भय पेये सेइ, जाय पलाइया, गालि पाडे विधातारे।१८९
आमारे चाहिया, हासिया हासिया, भय देय आरो तारे॥१९०

* * *

आर एक जने, वड भय दिल, से त ना पलाये जाय।१९१
भय ना पाइया, फिरे दांडाइल, हासिया चाहिया रय॥१९२
इहाते रसिक, हय अप्रतिभ, आइल आमार काछे।१९३
आमि कहिलाम, "येमन चतुर, तारि मत हइयाछे"॥१९४
रसिक कहिल, भय दिया हेन, गालि खाइ हासि तबू।१९५
कभू भय दिले, भय नाहि पाय, से मोरे हासाये कभू॥१९६
प्राय देखि लोके, छूटे भय पाये, पश्चाते नाहिक हेरे।१९७
फिरिया ये देखे, हाते चित्र तूलि, से त भय नाहि करे॥१९८
ताहार निकटे, हार मानि आमि, लज्जा पेये फिरे आसि।१९९
एइ कुञ्ज वने, एइ रङ्ग करि, वञ्चि आमि दिवानिशि॥२००

ए देख चेये, धूलाय पडिये, कान्दे कोन जन दुःखे ।२०१
किलागि कांदिछे, चल जाइ काछे, शुनि तार निज मुखे ॥२०२
दुइ जने जाइ, वलिनू ताहाय, एइ सुख वृन्दावने ।२०३
सकलेइ सुखी, तुमि सुधू दुःखी, कि दुःख तोमार मने ? ॥२०४
कातर वदने, चाहि मोर पाने, वले केवा सुख हेथा ।२०५
कखन जीवेर, सुख हते नारे, मांस मद नाहि यथा ।।२०६

आमि

ए देख चेये, मन्द वायु वहे, सुगन्ध माखिया अङ्गे ।२०७
शान्त शुद्ध स्थान, सुखे करे गान, शुक सारी पिक भृङ्ग ॥२०८
हासिया से कय, इथे सुख हय, ए सव कविर वाणी ।२०९
मद्य मांस विना, सुख किछू आछे, इहा आमि नाहि मानि । २१०
यदि उपकार, करिवे आमार, लइ मोर सेइ स्थाने ।२११
जाइले जे स्थले, मद्य मांस मिले, खाइ पिइ राखि प्राण॥२१२

*　　*　　*

रसिक कहिल, चाहि मोर पाने ।२१३
जार जेवा रुचि, पाय से इ स्थाने ॥२१४
केह हेथा आसि, जाइते ना चाय ।२१५
से जन अवश्य, हेथा रहि जाय॥२१६
भाल नाहि लागे, एइ स्थान एसे ।२१७
से त जाय फिरे, पुनराय देशे ॥२१८

आसिते जाइते शोधन हृदय, पुनःफिरे जेते,इच्छा नाहि हय ॥२१९

*　　*　　*

वले "हेथा रह, एखनि आसिव", वलि कोथा गेल चलि ।२२०
सन्मुखेते देखि, नाना खेला करे, काठेर पुतुल गुलि ॥२२१
पुतुल पुतुले, करे आलिङ्गन, कखन कलह करे ।२२२
केह धूला लये, राखे यत्न करे, केह मुक्ता फेले दूर ॥२२३
अनर्थक केह, काँदिया भासाय, केह सुखी काजे मिछा ।२२४
केह निज करे, गरल खाइया, अन्ये दोष देय पिछा ॥२२५
वाजारे वसिया, करे विकि किनि, येन कत व्यस्त सवे ।२२६
सन्ध्या हइतेछे, सेओ ज्ञान नाई, वाडी परे जेते हवे ॥२२७
कोन साधु वसि, क्रोडे 'कथा' लइ, खाय दन्त कड मडि ।२२८
अन्न भोजी पाने, उठाये उद्‌गार, चाहे अति घृणा करि ॥२२९
केह आपनार, प्रतिमा गडिव, भक्ति भरे पूजे ताय ।२३०
प्रतिष्ठार होमे, आगुन ज्वालिया, सर्वस्व ढालिया देय ॥२३१
केह निज काज, करिया साधन, आनेर वेतन चाय ।२३२
केह आने स्कन्धे, चडिया जाइते, भूमेते पडिया जाय ॥२३३
एक अन्ध आने, पथ देखाइया, लये दुहे गर्ते पडे ।२३४
केह खञ्ज हये, गिरि लंघिवारे, आने लय निज घाडे॥२३५
केह वोझा लये, जले झांप दिया, माझगाङ्गे डूवि मरे ।२३६
केह वोझा लये, नौकाय चडिया, अनायासे जाय पारे ॥२३७
केह उडिवारे, देह शीर्णकरे, तवुत उडिते नारे ।२३८
केह भार लये, पुष्प रथ चडि, अनायासे जाय उडे ॥२३९
पुतुले पुतुले, से रङ्ग देखिया, हासिया हासिया मरि ।२४०
ए रङ्ग देखिले, कतई हासित; रसिकशेखर हरि ॥२४१

कोथाय लुकाल, कौन काजे गेल, एखन ना फिरे केन ।२४२
खूंजिते खूंजिते, पाइनू देखिते, लुकाये निकुञ्ज वने ॥२४३
अति सङ्गोपने, शूताते पूतुल, वांधि लुकाइया वसे ।२४४
पूतुल नाचाय, यथा इच्छा हय, सेइ रङ्ग देखि हासे ॥२४५
देखिया तखन, वड हासि पेल, रसिक देखिल मोरे ।२४६
सरम पाइया, ईषत् हासिया, काछे एल धीरे धीरे ॥२४७
हासिया कहिनू, "ए त भाल नय, लुकाये भुलाओ लोके" ।२४८
कहिल हासिया, "वाहिरे आइले, खेला कि हइया थाके ?" २४९

रङ्गिनी

"चक्षे नाहि नींद, क्लान्ति नाहि देहे, चरकि तोमारे हारे ।२५०
घाट किवा भाट, भूमे कि आकाशे, तोमा पाइ देखिवारे ॥२५१
घुमाइया थाकि, प्राते उठि देखि, सारा निशि जागि याछे।२५२
आगाने वागाने, अगम्यत नाइ, सव स्थाने वेडायेछ ॥२५३
सदा घूरितेछ, केह नाहि देखे, एवड़ आश्चर्य्य कथा ।२५४
स्थिर हया रह, विश्राम करह, तू वड चञ्चल चेता ॥२५५
हासिया कहिल, "वृहत्संसार, आमार स्कन्धेते वइ ।२५६
आराम करिव, मने इच्छा करि, करिवारे पारि कइ ॥२५७
वलिते वलिते, ना पाइ देखिते, कोथा अदर्शन हलो ।२५८
सत्य ना स्वपन, करिनू दर्शन, केमने वलिव वल ॥२५९
देखिव सुनिव, रहस्य वूझिव, थाकिव ताहार पाश ।२६०
खूंजिया विपिने, उद्देश ना पेये, दुःखे वहे घन स्वास ॥२६१
खूंजिते खूंजिते, पाइनू देखिते, भारी सभा हइयाछे ॥२६२

मौलवी यतेक, आनाभिलम्बित, दाडि धारी वसियाछे ।।२६३
माथे बांधा, पाक आलवोला, आमीर से माझे वसि ।२६४
एक हाथ दाडी, अतीव गम्भीर, आरवी कहे हासि हासि।।२६५
सकलि ताहारे, भक्ति करिछे, मुख तार चाहि देखि ।२६६
चेन चेन करि, चे नितेना पारी, दाडि गेछे मूख ढाकि ।।२६७
एमन समय, हठात् से जन, चाहिल आमार दिठे ।२६८
नयन मिलल, अमनि चिनिनू, आमार रसिक वटे ।।२६६
से वेश देखिया, वड़ हासि पेल, आंचल झांपिनू मुखे ।।२७०
लज्जा पेये येन, आंखि ठारि वले, "प्रकाश करना काके" ।।२७१
एकटु परेते से स्थान त्यजिया, आइल आमार सने ।२७२
हासिते हासिते, चलि जाइ पथे, से चले लज्जित मने ।।२७३

आमि

छुओ ना आमारे, पेयाज रसून, गन्ध कय गाय तव ।२७४
एत दिने सखा, जातटिखोयाले, समन्वय कराइव" ।।२७५

रसिक

लुकाये सवारे, गियाछिनू आमि, वाहिर करिले तुमी ।२७६
चिर दिन हेन, जे खूजे आमाके, तारे धरा दिइ आमी ।।२७७
आडाले अ डाले, सदाइ वेडाई, ठाउरिया जे वा देखे ।२७८
अल्प धैर्य, धरे पाछे पाछे फिरे, से धरिते पारे मोके ।।२७६
उहारा आमाके, भकति करिया, मुखेते दियाछे दाडी ।२८०
ओइ रूपे ओरा, पाय सुख मने, तेइ आई रूप धरि ।।२८१

तुमि जाहा चाओ, वेश फेराइव, घुचाव पेयाज गन्ध ।२८२
तोमार नयने, सदाइ मिलिव, रसिक नयनानन्द ॥२८३

* * * *

आर दिन आमि, तार पाशे वसि, चाहिनू वदन पाने ।२८४
सुधीर गम्भीर, येन आनमना, ब्रह्माण्ड भाविछे मने ।२८५
गम्भीर हइया, कहिल चाहिया, "चञ्चल ना हवि मने॥२८६
या किछू देखिवि, सुस्थिर रहिवि, पाषाण बांधिया प्राणे" ।२८७
देखि मुख चाइ, पूर्व भाव नाइ, अटल गम्भीर येन ॥२८८
चपल रसिक, केन हेन ह'ल, चिन्ताकुल मोर मन ।२८९
रसिकेरे सदा, चपल देखिया, श्रद्धा त्रुटि हये छिल ॥२९०
से दिन देखिया, से भाव घुचिया, भयङ्कर बोध हल ।२९१

तखन

नवीना युवति, सन्मुखे देखिनू, कांदे मृत पति लये ॥२९२
नूतन यौवन, येमन मदन, निज कोले शोयाइये ।२९३
सुवेश करेछे, वेनीठि वेंधेछे, प्राणेशेरे सुख दिते ॥२९४
प्राण पति तार, पराणे मरेछे, रजनीते सर्पाघाते ।२९५

युवती

आछिनू दू'जना, केलि एकाकिनी, कि सुख पाइलि विधि ।२९६
येते चन्दन, माखाइते नारि, धूलाय से गुणनिधि ॥२९७
इहाइ वलिया, देह एलाइया, घन चुम्बे मृत मुख ।२९८
सब त्रिजगत, हइल स्तम्भित, देखिया अवला दुःख ॥२९९

तखन आमी

फिरिया कहिनू, रसिकरे प्रति ।३००
बल देखि शुनि, किं तोमार रीति ॥३०१
परम आनन्दे, वसि चित्र आंकि ।३०२
जीवे दुःख पाय, चोखेते ना देख ॥३०३
रसिकशेखर, नामठि लयेछ ।३०४
निठुरेर काज, सदाइ करिछ ॥३०५
जेइ हाते तुमि, आंकितेछ फूल ।३०६
से हाते अवला, वुके मार शूल॥३०७
छि छि मेने तव, चरित्र देखिले ।३०८
दुख पाय सवे, भये नाहि वले ॥३०९
तोमारे सङ्गते, नाहि प्रयोजन ।३१०
ए हते करिव, आकाश भजन ॥३११
बलिया चाहिनू, मुख पाने तार ।३१२
देखि दुःखे मुख, हये छे आन्धार॥३१३
देखि दुःख तार, लज्जित हइनू ।३१४
केन तार दुःख, बूझिते नारिनू ॥३१५
अवाक् हइया, रहिनू चाहिया ।३१६
मुख देखि तार, विदरिल हिया ॥३१७
क्षणेक ए रूपे, चुप करि रहे ।३१८
मुख उठाइया, धीरे धीरे कहे ।३१९
अटल रहिवे, सम्मत हइले ।३२०

किछु ना देखिते, ढलिया पड़िले ? ३२१
नितान्त वालिका, ज्ञान तोर अल्प ।३२२
जानिते चाहिछ, आमार सङ्कल्प ॥३२३
जन्मिया मात्रइ, जानिवे सकल ।३२४
जवे बड हवे कि जानिवे वल । ३२५
मोर कथा यदि, वालिका जानिवे ।३२६
तो माते आताते, कि प्रभेद रवे ॥३२७
चिरकाल हेन, जानिते हइवे ।३२८
ए सन्देह जावे नूतन आसिवे ॥३२९
यत जीव आशा, सब पूर्ण हवे ।३३०
आशा संगे आशा, पूर्ण वस्तु पावे ॥३३१
क्षुधा येन दिनू, तेमनि आहार ।३३२
साध दिनू तार, दिनू प्रतिकार ॥३३३
जीव मने साध, चिर वांचि रवे ।३३४
सेइ साध साक्षी, जीव ना मरिवे ॥३३५
प्रीति डोरे जीव, करिछे वन्धन ।३३६
सेइ प्रीति साक्षी, जीवेर मिलन ॥३३७
जीव मन साध, करिले विचार ।३३८
जीव परिणाम, हइवे गोचर ॥३३९

रमणी

आज से वलिव, मोर मनोकथा ।३४०
तोमार निन्दाय, पाइ मनेव्यथा ॥३४१

कत वाधा पाइ, किछु ना मानिनू ।३४२
खुंजिया खुंजिया, सोमारे धरिनू ॥३४३
भावि या देखिते, गूढ़ तव रङ्ग ।३४४
अन्तरे विभोर, पुलकित अङ्ग ॥३४५
तोमा गुण गाइ, साध ना मिटिवे ।३४६
तव साध मिटे, यदि सबे गाये ॥३४७
केह नाहि माने, केह वा जाने ना ।३४८
जानिया ओ केह, तोमारे खोजे ना ॥३४९
निश्चिन्त ताहारा, सकलेतें रहे ।३५०
मोरा दुःख पाइ, तोतार हइये ॥३५१
केह तुया गले, मुण्ड माल दिल ।३५२
तूलिटि काड़िया, हाते दिल शूल ॥३५३
भयेतें तोमार, साक्षाते ना पारे ।३५४
अपवाद करे, प्रकार अन्तरे ॥३५५
आमरा सकले, तव जन हइ ।३५६
तोमार हइया, केमने ता सइ ॥३५७
जगते तोमार, देह परिचय ।३५८
नतुवा साक्षाते, मरि निश्चय ॥३५९
सवारि भरण, सवारि पोषण ।३६०
तुमि यदि मार, राखे कोन जन ॥३६१
तुमि ना बुझाले, आर के बुझावे ।३६२
कत दिन आर, लुकाइया रवे ॥३६३

तोमारि संसार, गैल छार खार ।३६४
वलराम तोमा, कइ अवसार ॥३६५

रसिक----

चिर दिन इहा, प्रतिज्ञा आमार ।३६६
चाहिले वासना, पुराइ ताहार ॥३६७
वाहिरे वासना, अन्तरेते नाइ ॥३६८
प्रकृत चाहेना, ताइ नाहि पाय ।३६९
निगूढ जानिते, वासना हयेछे ॥३७०
यत दूर वृक्ष, कब तव काछे ।३७१
एइ जग माझे, मन्द किछु नय ॥३७२
अवस्थानुसारे, भालो मन्द हय ।३७३
चूने मुख दहे, पान सङ्गे नय ॥३७४
चूने मन्द वला, उचित ना हय ।३७५
जिह्वाय लवण, दिले दुःख हय ॥३७६
ताइ वल कभू, उहा मन्द नय ।३७७
आतरेर स्थान, नासिकाजे हय ॥३७८
नयनेते दिले, दुःखेर उदय ।३७९
जे अग्निर तापे, सुख वोध हय ॥३८०
परिमाण दोषे, अङ्ग पूड़े जाय ।३८१
स्थान परिमाण, हइले विकृत ॥३८२
ताहाते जगते, दुःखेर उत्पत्ति ।३८३
परिमाण आर, स्थान ठीक यदि ।३८४

साहाले जगते, सुख निर वधि ॥३८५
पञ्जरे ना राखि, दिनू स्वाधीनता ।३८६
जीवे यत खनि, धरिते क्षमता ॥३८७
पेये स्वाधीनता, स्थान भ्रष्ट करे ।३८८
स्थान भ्रष्ट करि, दुःख आने शिरे ॥३८९
किम्वा परिमाण, करिये विभ्राट ।३९०
नि ज दोषे खूले, दुःखेर कपाट ॥३९१
पिञ्जरे राखिले, ए दुःख पेतेना ।३९२
किन्तु परिणति, ताहाते हत ना ॥३९३
जीवेर यद्यपि, ना हत वद्धन ।३९४
समान हइत, मरण वाचन ॥३९५
एइ स्वाधीनता, नाइ पशुगणे ।३९६
वृद्धि सुख दुःख, नाइ से कारणे ॥३९७
स्वाधीनता पेये, करे अपचय ।३९८
तवू परिणामे, तार भाल हय ॥३९९
आपन इच्छाय, आने निज दुःख ।४००
ताइ सृष्टि हय, नव नव सुख ॥४०१
अत्याचार करि, देहे आने ज्वर ।४०२
परिणामे हय, सुस्थ कलेवर ॥४०३
अति दुःखे आने, मृत्यु निज शिरे ।४०४
दिव्य लोके जाय, उत्तम शरीरे ॥४०५
क्रन्दने ते हासि, हासिते क्रन्दन ।४०६

एइत नियमे, संसार सृजन ॥४०७
नयने ते जल, जेइ हेतु हय ।४०८
तार परिणाम, सुखेर उदय ॥४०९
प्रत्यक्ष प्रमाण, कान्दिया देखिवे ।४१०
ये टुकू कांदिवे, से टुकू हासिवे ॥४११
दुःख पाय सवे, दुःख देखि भवे ।४१२
दुःख वीज हते, सुख अभ्युदय ॥४१३
दुःखे आर सुखे, वीज वृद्धि हय ॥४१४
पति हीना नारि, कान्दिल सन्मुखे ।४१५
हाहाकार रवे, कान्दिले ता देखे ।४१६
यत खानि दुःख, पाइल दुःखिनी ॥४१७
परिमाण करि, सुधिव आंपनि ॥४१८
यत काङ्गालिनी, मोर महाजन ।४१९
सूदेर सहित, ऋण प्रत्यर्पण, ॥४२०
वड सुख मोर, सुधिवारे धार ।४२१
तोमार कृपाय, अक्षय भण्डार ॥४२२
आपाततः दुख, देखि पाओ व्यथा ।४२३
आमि भेवे थाकि, सुदूरेर कथा ॥४२४
शुनि तवे आमि, गम्भीर हइनू ।४२५
छलछल आंखि, चाहिया रहिनू ॥४२६
हृदये ते जानि, तुमि दयामय ।४२७
हृदयेर कथा, कभू मिथ्या नय ॥४२८

तबू मोर मने, सन्देह ना जाय ।४२९
केन तोमा जने, एत दुःख पाय ॥४३०
सर्वशक्तिमान, केन देह दुःख ।४३१
दुःख नाहि दिया, सुधू देह सुख ॥४३२
दुःख नाहि दिया, आनन्दे भाशाले ।४३३
सब गण्डगोल, जाइवे ता हले ॥३३४

* * *

रसिक----

दिनू भाल मन्द, वूझिवार ज्ञान ।४३५
सेइत जीवेर, उन्नति सोपान ॥४३६
भाल मन्द भेद, वूझिया अन्तरे ।४३७
भालो हइवारे, सदा चेष्टा करे ॥४३८
भालो मन्द वूझि, अभाव देखिये ।४३९
ज्ञान अभिमानी, श्रेष्ठारे निन्दये ॥४४०
शुधू आमि पूर्ण, अपूर्ण से अन्य ।४४१
सृष्टि माझे दोष, आछे सेइ जन्य ॥४४२
भालो मन्द वूझा, ज्ञान ना थाकित ।४४३
तवे सेइ दोष, देखिते नारित ॥४४४
एइ ज्ञाने भाल, हते चेष्टा करे ।४४५
एइ ज्ञाने दोष, देखि निन्दे मोरे ॥४४६
क्रमेते उन्नति, अभाव पूर्ण ।४४७
क्रमे क्रमे हवे, आमार मतन ॥४४८

क्रमशः विकाश, एइ त नियमे ।४४९
संसार सृजन, भालो हवे क्रमे ॥४५०
चिर परिणति, एइ जीव गति ।४५१
अस्फुटे आरम्भ, क्रमशः उन्नति ॥४५२
ताइ भवे मन्द, पाओ देखिवारे. ॥४५३
आरम्भे निर्दोष, ताइ हते नारे ॥४५४
शुन नव वाक्य, दिया मनोयोग ।४५५
वियोग व्यतीत, नहेत संयोग ॥४५६
अभाव व्यतीत, पूरण हयना ।४५७
वियोग व्यतीत, संयोग घटेना ॥४५८
वियोग संयोग, सुख दुःख सेतु ४५९
इहाते उत्पत्ति, सुख दुःख हेतु ॥४६०
वियोग संयोग, संसार नियम ।४६१
केवल वियोगे, योग सम्भवन ॥४६२
दुःखेर कारण, अभाव वियोग ।४६३
पूरण संयोग, हय सुख भोग ॥४६४
अभाव व्यतीत, वृद्धि नाहि हय ।४६५
वृद्धि बिना जीवे, सुख किछू नय ॥४६६
ये कोन कारणे, सुखेर उदये ।४६७
भोगे से आनन्द, हये जाय क्षय ॥४६८
दुःखी लक्ष मुद्रा, पैले सुखी हय ।४६९
लक्ष अधिकारी, सुख नाहि पाय ॥४७०

पति सङ्ग करे, पति प्राणा सती ।४७१
सदा सङ्ग करि, लघु हय प्रीति ॥४७२
सेइ पति यदि, परदेशे जाय ।४७३
आदर सुखेर, धन तव हय ॥४७४
येमन वियोग, तेमनि संयोग ।४७५
शोक यत खानि, ततखानि भोग ॥४७६
ये दुक्कू हइवे, ताहार प्रमाद ।४७७
निश्चय पाइवे, सेदुक्कू प्रसाद ॥४७८
येइ कोन दुःख, हइल ताहार ।४७९
से दुःख एकटि, सुखेर आकर ॥४८०
दुःख जार नाइ, सुख नाइ तार ।४८१
वाचन मरण, समान ताहार ॥४८२
अभाव व्यतीत, वृद्धि नाहि हय ।४८३
वृद्धि जार नाइ, सुख तार नाइ ॥४८४
कार हृदे दुःख, पुकुर केटेछे ।४८५
तत खानि सुधा, मापिये रेखेछि ॥४८६
बालक कालेते, कत दुःख पाय ।४८७
वयस हइले, कठि मने रय ।४८८
कत दुःख पाय, देखिया स्वपन ।४८९
प्रभाते से दुःख, सुखेर कारण ॥४९०
क्रमशः आनन्द, वाडिते थाकिवे ।४९१
पूर्वेर दुःख, भासिया जाइवे ॥४९२

जाहार वियोग, नहे संघटन ।४६३
सम सुख दुःख, वांचन मरण ।४६४
वियोग केवल, पिरीति वर्द्धन ।४६५
जीवेर पिरीति, सर्वोत्तम धन ।।४६६
तुमि थाके मने, भाविछे मरण ।४६७
से केवल वाला, नूतन जीवन ।।४६८
वलिते वलिते, ईषत् हासिया ।४६९
वले 'नव वाला, देखना चाहिया ।।'५००

* * *

देखिनू से नारी, पतिके पाइया ।५०१
दुहू दुहू मुख, देखिछे चाहिया ।।५०२
पति मुख चाय, संशय मगन ।५०३
'तुमि कि हारान, सेइ प्राण धन' ।।५०४
आशा नाहि छिल, हइवे मिलन ।५०५
सुख वाडियाछे, ताहे कोटि गुण ।।५०६
आनन्दे वचन, कहिवारे नारे ।५०७
केवल अझोरे, दुनयन झोरे ।।५०८
घिरि घिरि दुहुं, दुहु मुख हेरे ।५०९
पागलेर मत, कि प्रलाप करे ।।५१०
गलागलि हये, दुहू दाडाइल ।५११
रसिकेर मुख, प्रफुल्ल हइल ।।५१२
तखन हषिया, कहिलाम आमि ।५१३

"उदेर प्रकृति, देखिले कि तुमि ॥५१४
तोमार लागिया, ए सुख सम्पत्ति ।५१५
तोमारे भूलिया, सुखे मग्न अति" ॥५१६
कहिछे रसिक, धैर्य्य धर मन ।५१७
आनन्दे एखन, आछे अचेतन ॥५१८
आमार विषय, हइवे से परे ।५१९
नयन जुडाइ, दुंहु मुख हेरे ॥५२०

तखन ता हारा

युगल हइया, गले वस्त्र दिया ।५२१
प्रणाम करिल, भूमे लोटाइया ॥५२२
दुःख पेये यत, दुजने केन्दिेछि ।५२३
कोटि गुण तार, सुख से पेयेछि ॥५२४
कांदिया चरणे, कैनू अपराध ।५२५
श्री कर कमले, कर आशीर्वाद ॥५२६

तखन

कहिछे रसिक, मुचुकि हासिया ।५२७
"यावि अधः पाते पिरीति मजिया ॥५२८
छिडिले वन्धन, साधु गण वले ।५२९
तवे लोक जाय, अति उच्च स्थले" ॥५३०

पुरुष

वन्धन छिडिते, हृदय विदरे ।५३१
युगल हइया, भजिव तोमारे ॥५३२

पृथी आर चन्द्र, मोरा दुइ जन ।५३३
तुमि सूर्य्य पाशे, करिव भ्रमण ॥५३४
आमि गीत गाव, नाचिवे न प्रिया ।५३५
साजाव तोमारे, दुजने मिलिया ॥५३६
दुजने मिलिया, गांथि दिव माला ।५३७
भजिव दुजने, मनो चोरा काला ॥५३८
दुजने मिलिया, अधोगति भाल ।५३९
वियोग लइया, गोलोके कि फल ॥५४०

तखन रसिक

मलिन वदने, आमारे चाहिल ।५४१
करुणार स्वरे, कहिते लागिल ॥५४२
जीवेर सौभाग्ये, पिरीति सृजन ।५४३
जीवे जीवे जाहे, करिछे वन्धन ॥५४४
हृदये हृदये, आलिङ्गन करे ।५४५
डूवये अमनि, शीतल सागरे ॥५४६
उभय रूपेते, उभय मोहित ।५४७
प्रिया सुख लागि, प्राण नियोजित ॥५४८
प्रिये सुख दिया, निजे सुख पाय ।५४९
दुहु सम्वर्द्धने, प्रेम वाडि जाय ॥५५०
जीवेर विमल, सुखेर लागिया ।५५१
युगल करिनू, प्रीतिते वांधिया ॥५५२
दुहेते दुंहार, दुःख निवारण ।५५३

निर्भय आश्रय, अभाव पूरण ॥५५४
दुहुं दुहुं साथे, पिरीति शिखिवे ।५५५
सेइ सुधा पिये, मोर तृप्ति हवे ॥५५६
देखह युगल, रसेर आकर ।५५७
ताहे नाम मोर, रसिकशेखर ॥५५८
अबोधिया जने, वियोग देखिले ।५५९
करुणाय कान्दे, मोरे मन्द वले ॥५६०
वियोग नहिले, संयोग मिलन ।५६१
नहे कभू ताइ, वियोग सृजन ॥५६२
वियोगेर दुःख, यदि ना थाकित ।५६३
प्रीति सुखास्वाद, किसे से हइत ॥५६४
निश्चित मिलिव, जानिले दुजने ।५६५
तवे आर सुख, थाके कि मिलने ॥५६६
जीवेर वियोग, येन वज्रा घात । ५६७
यारे आशा नाइ, पाय अकस्मात ॥५६८
दारुण वियोगे, हठात् मिलन ।५६९
मिलनेर सुख, वाडे कोटि सुख ॥५७०
वांधि प्रेम डोरे, करिव ता खण्ड ।५७१
भाविस आमाके, एतइ पाखण्ड ॥५७२
हेन मूढ जन, त्रिजगते नाइ ।५७३
मातृ क्रोड हइते, पुत्र काडि लय ॥५७४
किवा पति नारी, छाड़ा छाडि करे ।५७५

सुख पाय डारि, वियोग सागरे ॥५७६
ये काज करिते, नारे मूढ जने ।५७७
आमि ता करिव, केन भाव मने ॥५७८
वियोगे संयोग, यदि नाहि हय ।५७९
मुकुन्द निठुर, भजिओ ना ताय ।'५८०
मोहइते दयाल, तोमरा यदि हवे ।५८१
तारा भजनीय, मोरे हवि तवे ।५८२
वियोग संयोग, यदि नाहि हय ॥५८३
आन्धार संसार, भगवान नाइ ॥५८४
हृदय द्रविल, हरि कथा सुनि ।५८५
नीरवे रहिनू, नाहि सरे वाणी ॥५८६

आमि कहिलाम

रसेर लागिया, युगल सृजिया ।५८७
नयने हेरिया, आनन्द भुञ्जिला ॥५८८
हइया निठुर, किसेर लागिाय ।५८९
दुःख देह सवे, एकक रहिया ? ॥५९०
कारुण्ये जखन, मलिन वदन ।५९१
प्रिया काछे नाहि, के मूछे नयन ॥५९२
प्रिया काछे रहे, नयन मुछाय ।५९३
शत गुण आर, धारा वहि जाय ॥५९४
जवे भास तुमि, आनन्द तरङ्गे ।५९५
कारे भाग दिवे, प्रिया नाहि सङ्गे ॥५९६

कारे साजाइवे, वन फूल दिया ।५६७
हेरिवे वदन, वामे वसाइया ॥५६८
एमनि मोदेर, मनेर गठन ।५६९
कारे एका देखि, विदरे जेमन ॥६००
वडइ तापित, से जन संसारे ।६०१
एकाकी ये जन, विचरया करे ॥६०२
तुमि प्रिय जन, एकाकी भ्रमहे ।६०३
तोमार ये जन, केमने ता सहे ॥६०४
सुख आमादेर, यदि दिते चाओ ।६०५
प्रणयिनी आनि, वामेते वसाओ ॥६०६
भुवनमोहनि, रूपसि आनिया ।६०७
सिंहासने वसो, युगल हइया ॥६०८
निज जन यत, दुहे वसाइया ।६०९
नाचिवे गाहिवे, घिरिया फिरिया ॥६१०

रसिक

मोरे भालो वासे, एका देखि मोरे ।६११
संगिनी दिवारे, ताइ वाञ्छा करे ॥६१२
मम मत जन, कोथा आमि पाव ।६१३
आपनार प्राण, जाहारे संपिव ॥६१४
मोर जन यत, आमार पालित ।६१५
निज सुख लागि, सवे लालायित ॥६१६
केहवा भूषण, केहवा वसन ।६१७

केहवा सम्पद, लइया मगन ॥६१८
आमार ऐश्वर्य्य, लये मोर गण ।६१९
आमारे भूलिया, ताहे अचेतन ॥६२०
काहारे भजिव, संपिव जीवन ।६२१
त्रिभुवन माझे, नाहि एक जन ॥६२२
भजिवे आमारे, आमार लागिया ।६२३
ताहारे संपिव, मन प्राण हिया ॥६२४

* * *

करे छल छल, रसिक नयन ।६२५
कहिनू तखन, कातर वचन ॥६२६
"तोमारे भुलावे, हेन कोन जन ।६२७
ना मिलिवे कभू, खुंजिले भुवन ॥६२८
जीवे के तोमारे, भुलाइते पारे ।६२९
तार दुइ भाग, कर आपनारे ॥६३०
पुरुष प्रकृति, दुइ भाग हओ ।६३१
एइ रूपे निज, गणे सुख दाओ" ॥६३२
एइ वन माझे, शुन सखी गण ।६३३
गाइया वेडाइ, रसिकेर गुण ॥६३४
प्रति पदे देखि, तार कारीगिरी ।६३५
सुखेते विभोर, झूरे झूरे मरि ॥६३६
सुखे रह मोर, रसिकशेखर ।६३७
वलराम दास, मांगे एइ वर ॥ ६३८

कांगालिनी

(दास्य)

द्वितीय सखीर काहिनी

सुन्दर ठाकुर, करुणा प्रचुर, आमार निकटे वास । १
तांहार काहिनी, लोक मुखे सुनि, तांहार दासी ह'व आश ॥ २
क्षीणा निराश्रय, भासिया वेडाइ, नाहि केह निज जन । ३
भेवे भेवे मरि, दिवस सर्व्वरी, सदा चिन्ताकुल मन ॥ ४
तार योग्य हवे, तार काछे रव, वसिव पालङ्क तले । ५
दुठि राङ्गा पद, हृदये धरिया, दुःख भय दिव फेले ॥ ६
सुवेश करिते, आरसि आगेते, वसिनू गौरव करि । ७
आरसि चाहिते, भय ह'ल चित्ते आपन वदन हेरि ॥ ८
एत कुरूपिणी, कभू नाहि जानि, हृदय सुखाये गेल । ९
अथवा दर्पण, मलिन हयेछे, ताते मुख हेन ह'ल ॥ १०
दर्पण माजिनू, आवार देखिनू, आरो कदाकार रूप । ११
यत आर्शी माजि, आमार कुरूप, फूटे तत दुःख कूप ॥ १२
आवार देखिनू, व्रण कि वसन्त, वदने रयेछे चिन । १३
क्षत लुकायेछे, दाग रयेगेछे, क्षत साक्षी रात दिन ॥ १४
से दागेर नीचे, क्षत रये गेछे, ज्वले उठे रये रये । १५
ताहार लागिया, स्वस्ति नाहि पाइ, देखिलाम ठाहुरिये ॥ १६
अन्ये दुःख दिते, सुख भेङ्गाइते, सेइ मत सुख हेल । १७
येइ मत सुख, भेङ्गि करेछिनू, सेइ मत रये गेल ॥ १८

आपनार दोषे, आपनि मजिनू, मोर दुःख कव काके । १६
अन्य छिद्र पेये, दोष आघ्रानिते, नासिका मिशाल मुखे ॥२०
सर्वाङ्ग मलिन, देह क्षत चिन, ताहे सुखे वुले कृमि ।२१
दुर्गन्ध छुटाये, मक्षिका घिरये, अस्पृश्य पामर आमि ॥२२
सङ्गिनि सवारे, दर्शन करिया, विकट दशन मोर । २३
क्रोधे माति माति, राङ्गा दुठि आंखि, हये गेछे भयङ्कर ॥ २४
लोभेते निवृत्ति, कभू नाहि करि, वदन वाहिरे जिह्वा । २५
ताहा वाहिसदा, विन्दु लाला पडे, एइ से बदन शोभा ॥ २६
ए कि देखि हाय, करिनू चीत्कार, स्वर येन क्षुर धार । २७
यत संगीगने, कुवचन बोले, गर्दभेर मत स्वर ॥ २८

भांगि गैल गौरव ओ मान— ध्रु० ।
सुन्दर ठाकुर घर, शीतल आश्रय जार । ३०
पाव आरो छाडि दिल प्राण ॥ ३१
सेइ त सुन्दर शिरोमणि । ३२
आमि तार योग्य नाइ, केमने ताहार हय ॥३३
अस्पृश्य पामर कुरूपिणी । ३४
यदि देखा पाइ कभू तारे ॥ ३५
कोन मुखे कव तारे पादु खानि दाओ मोरे । ३६
लह देह मलिन आमार ॥ ३७
किसे हव तार दासी योग्य । ३८
पद दिया मोरेशिरे, स्नेह कथा कवे मोरे ॥३६
कि साधने हवे हेन भाग्य ॥ ४०

हलुद माखि, रोदे वसे रइ ।४१
ताहाते वरन, आरो मन्द हय ॥४२
रेशम माखिया, पराड श्रम हय ।४३
मलिन वरण, छिछूते ना जाय ।४४
वांका अङ्ग ऋजु, करि जोर करि ॥ ४५
पूर्व मत हय, येइ सेइ छाडि ।४६
यत मन्द स्थान, वसनेते ढाकि ॥४७
सब देखा जाय, लोके हासे देखि ॥४८

* * *

सुधांशु वदनि, कोन एक धनि, ढलि ढलि चलि जाय ।४९
यौवनेर भरे, चलिवारे नारे, रुनू झुनू वाजे पाय ॥५०
ताहारे देखिया, चलिनू धाइया, निवेदिनू तार पाय ।५१
"एइ रूप खानि, अङ्गेर लावण्य, पाइल कि तपस्याय ?" ॥५२
मधुर हासिया, कहिल चाहिया, केन भग्नि दुःख कर ।५३
यमुनाय निति, देहठि माजिवे, डूबखे यत पार ॥५४
यत अङ्ग दाग, सव लुकाइवे, देह हवे मनोहर ।५५
धैर्य्य धरि अङ्ग, नितुइ माजिव, मिलिवे ठाकुर वर ॥५६

* * *

परे काङ्गालिनी वलितेछेनः—

साधु वाक्यधरि लाम शिरे ध्रु० ।५७
प्रतिदिन काज सारि यमुना, सिनाने जाइ, अङ्ग माजि जलेर भितरे ।५८
माजिते माजिते देह क्रमे, निरमल हल, वर्ण येन कांचा वाला सोना ५९

लुकाये देखिल मोरे, सेइ आसि दांडाइल,से रूपेर नाहिक तुलना ॥६०
छल छल राङ्गा आंखि, मोर पाने चाहे सखि, कथा कहे गदगद स्वरे ६१
'आमारे भूलिये तुमि कतदिन रवे आर, अमि मरे आँछि तोर तरे'॥६२
करजो`वलि आमि,'आमारे छुंओनातुमि, मोर अङ्ग कयट्ट रसा चले६३
आमि पीछे पीछे जाइ,पाछे त्वत लागे गाय,वाहु प्रसारिया धरे गले६४

*　　　*　　　*

कि आर वलिव सखि, आर किछू मने नाइ, अचेतन रहिनू पडिया६५
से पद परशे मोर, चिरदिन दुःख यत, वहिया चलिल आंखि दिया६६
भिन जन देखे पाछे, इति उति चाइ सखि, घरे आर जाइते पारिने६७
घरेर वाहिरे सखि, जनमेर मत हनु, तार लागि आइनू विपिने ॥६८
गुरुजन घरे निते, आसे सखि वारे वारे, कांदिया पडिनू सवा पाय६९
"प्राण मन देह धर्म्म,जाहारे संपिनू सव, तारे छाडि जाइ कोथाय७०

+　　　+　　　+

तार तिन नाम, "हरि" 'कृष्ण' "राम"　डाकिया वेडाइ वने ।७१
'कोथा दयामय, दुःखिनी आश्रय,　देखा दाओ दुःखी जने'७२
नाम विना आर, नाहि जानि तार,　श्रीनाम सर्वस्व धन ।७३
"हरे कृष्ण हरे", डाकि उच्च स्वरे,　"देह हरि श्रीचरण" ॥७४
केवल मात्र हरि वोल ध्रु० ।
आग नाइ, यज्ञ नाइ, तन्त्र नाइ, मन्त्र नाइ, केवल मात्र हरि वोल ।७५

आवार

श्री मूर्ति गडिया, फूल जल दिया,　पूजि तारे भक्ति करि ॥७६
कखन विह्वल, आंखि छलछल,　तांर श्रीवदन हेरि ।७७

कथा नहि क'न, कातरे तखन, कान्दि पडि पद तले ॥७८
"कथा कह नाथ, कर आत्मसात, कांदि वलि आंखि जले।७६
इहाते श्री मूर्ति, देखि मोर आर्ति, कभू हासि चाहे मोरे ॥८०
आस्वास पाइया, आनन्दे मातिया, निरभये सेवि तारे ।८१

× + ×

वसानू पङ्कज आसने प्र ०, ॥८२
प्रणामिया राङ्गा पाय जोड़ हाते गुण गाइ ।८३
प्रभु सुखी आमार स्तवने ॥८४
पञ्चदीपे आरत्रिक करि ।८५
कङ्कण वलय वाजे घण्टा रव मिशे ताते ॥८६
प्रभु तृप्त मोर सेवा हेरि ।८७
फूल शय्या यतने विछाइ ॥८८
निद्रा जान सुखे परि पद सेवि मुख हेरि ।८६
हृदे राखि अवशे घुमाइ ॥६०
पंहु सिंहासने वसे राङ्गापा मुछाइ केशे ।६१
सेइ धुला अङ्गेर चन्दन ॥६२
इहा वलि नव वाला, सखी पाय प्रणमिला ।६३
कृपा कर दीन हीन जन ॥६४
तोदेर चरण धूलि ताहे मोर स्नान केलि ।६५
भरसा मोर तोदेर प्रसाद ॥"६६
येन कत अपराधी अधोमुखे कांदे वाला ।६७
कातर मलिन मुख चांद ॥६८

मुखे जपे कृष्ण नाम, "पुराओ हरि मनस्काम ।९९
दासीर दासी करे राख मोरे ॥"१००
ऊर्द्ध नयनेते चाथ उच्चैःस्वरे डाके ताय ।१०१
गडि देय धूलिर ऊपरे ॥१०२
वुके जारे आमि राखि कोथा पलाइल सखि ।१०३
खूंजि वेडाइ विपिन माझारे ॥१०४
वले वलराम दासे झांपिया राखिया वासे ।१०५
केन फांकि दितेछ सखीरे ॥१०६

तखन

रङ्गिनी कहिछे, मधुर हासिया, "तू पति सन्मान चाय ।१०७
प्रणामेर लागि, व्यस्त सर्वदाय, मने हलो हासि पाय ॥१०८
जीवन मरण, करता जे जन, हासि प्रण मिले ताय ।१०९
मने सुख पाय, हेन जन जेइ, तार काण्ड ज्ञान नाइ ॥११०
सिंहासने वसि, हाते लये असि, जेइ ठाकुरालि करे ।१११
क्षुद्र जन जारे, त्राहि त्राहि करे, सन्मुखेते जोड करे ॥११२
सवे मुखेवखे "तू वड दयाल" ता शुने भूलिया जाय ।११३
किछु त्रुटि पेले, आमि मेरे फेले, दिवानिशि छिद्र चाय ।११४
एमन प्रभूर मुखेते आगुन, जारे एत कर धय ।११५
भक्ति करतारे केमन करिया, वुझारया वल भाइ" ॥११६

काङ्गालिनी कहितेंछेन

ओ तार वुक हते श्रीचरण मधु० ध्रु ।११७
सेत वुक दिया छिल आमि पद मागिलिनू ॥११८

ताहाते दुःखित आमार वन्धु ।११९
ओ तार पदतले करि आमि वास ॥१२०
वुके यदि सखि जाइ पडि पडि हय भय ।१२१
चरणे नाहिक सेइ त्रास ॥१२२
ओ तार हिया माझे प्रेमागुन ज्वले ।१२३
मोर वुके प्रेम नाइ वन्धुर प्रेमे दुःख पाइ ॥१२४
ताइ जाइ स्निग्ध तले ।१२५
सखि निज सुख लागि स्तुति करि ॥१२६
जवे वलि दयामय अंग ऐलाइया जाय ।१२७
सुखमय त्रिजगत हेरि ॥१२८
स्तुति शुने तन्धु लज्जा पाय ।१२९
स्तुति करि सुख पाइ देखि वन्धु दयामय ॥१३०
निषेध ना करेन आमाय ।१३१
केशे पद मुछाइते जाइ ॥१३२
पहूं मोर धरे हात आमिवलि एइ केश ।१३३
किवा अपराधी तुमा पाय ॥१३४
एक वार मुछाये देख सखि ।१३५
तुमित मुछाओनि सखि आमि मुछाइया थाकि ॥१३६
देख देखि के वा वड सुखी ।१३७
स्तुति शुनि वन्धु भूले साधे ॥१३८
यदि वन्धु नाहि भूले आमि कि भुलाइते पारि ।१३९
वन्धु भूले मोर अनुरोधे ॥१४०

के छोट के वड के ता जाने ।१४१
वन्धु छोट हते चाय, आमि नाहि देइ ताय ॥१४२
ठेलाठेलि करि तार सने ।१४३
साधे कि भाइ पाग वान्धे माथे ॥१४४
क्षुद्र जीव निराश्रय क्षमता मात्र त नाइ ।१४५
तवू वाद करे तार साथे ॥१४६
आमरा सव तार काछे दोषी ।१४७
कि वा वाडाई कर सखी, तोर सुख सुसम्पत्ति ॥१४८
पेयेछ सेइ चरण परशि ।१४६
सवे जेते चाय तार वुके ॥१५०
आमि यदि वुके जाइ पद सेवा नाहि हय ।१५१
पद-सेवा भार दिव काके । १५२
जान ना नदेर गौर हरि ।१५३
दास्य सुख स्वाद करे मजिलेन एके वारे ॥१५४
पासरिल निज व्रजपुरी ।१५५
सर्व्वेश्वर से आनन्दमय ॥१५६
या' करे तोदेर लागि, करि हय निन्दा भागि ।१५७
तोदेर काछे नाहि किछू चाय ॥१५८
यदि पञ्चेन्द्रिय नाहि दित ।१५६
तवे बल वलराम, पूर्णानन्द गुणधाम ॥१६०
रूप रस किसे आस्वादित ।१६१

* * *

काङ्गालिनी आवार वलिते लागिलेन

शुन सखि परे, कहिलाम तारे, अभिमाने हये अन्ध । १६२
डाकिले तोमाय उत्तर ना पाइ, ए वड मनेते अन्ध ।१६३
परम दयाल, तुमि चिर काल, निठुरेर काज कर ।१६४
कान्दिया डाकिले, उद्देश नामिले, वधिरेर मूर्ति धर ।१६५
डाकि शत वार, नाहि एक वार, पाय तुया निदर्शन ॥१६६
ना डाकि जखन, कर आगमन, चञ्चल तोमार मन ।१६७

तखन

दुठि करे धरि, वलिलेन हरि, "मोरे कत डाकियाछे ॥१६८
देखा ना पाइया, प्राण उघाडिया, कतइ ना कान्दियाछे ।१६९
अपराधी आमि, क्षमा कर तुमि, एमन आर ना हवे ॥१७०
आमारे देखिते, साध ह'ल चित्ते, तखनि आमारे पावे ।१७१
ए कथा शुनिया, विकल हइया, भाविलाम मने मने ॥१७२
दुःख विमोचन, वासना पूरण, ह'लो मोर एत दिने ।१७३
अह्लादे गलिया, चरणे पडिया, कोटिवार प्रणमिनू ॥१७४
मलिन वदने, चाहि लुकाइल, आमि मनानन्दे रनू ।१७५

* * *

डाकिलाम कोथा जगन्नाथ ? ॥१७६
लुकायेछिलेन हरि, आइलेन दया करि ।१७७
दाडालेन आमार साक्षात् ॥१७८
मनानन्दे प्रणमिनू पाये ।१७९
कहिलाम "नाथ शुन, नाहि कोन प्रयोजन ॥१८०

डाकिनू से परीक्षा लागिये ।१८१
पर दिन डाकि उच्चैःस्वरे ॥१८२
आवार करुणा करि आगे दाडालेन हरि ।१८३
प्रणमिनू जुडि दुइ करे ॥१८४
हेन मते डाकि वार वार ।१८५
डाकि वामात्रेते आमि, सेइ त्रिलोकेर स्वामी ॥१८६
दाडान आसि आगेते आमार ।१८७

× × ×

हेन मते तारे, डाकि मात्र पाइ ॥१८८
तखनि ता मिले, जाहा आमि चाइ ।१८९
लोभेर सामग्री, आर ना रहिल ॥१९०
क्रमेते हासना, कमिते लागिल ।१९१
जाहा चाव पाव, मनेने धारणा ॥१९२
क्षय हये गेल, सकल वासना ।१९३
देखिव श्रीमुख, मनेते हइले ॥१९४
आगे भासिताम, आनन्द हिल्लोले ।१९५
देखिवार साध, क्रमे घूचे गेल ॥१९५
दरशन सुख, आर ना रहिल ।१९७
कखन वा तारे, आंखि मुदे डाकि ॥१९८
आगे ते आइल, नाहि मेलि आंखि ।१९९
डाकिले आसिवे, जानिये निश्चय ॥२००
डाकिते वासना, हृदये ना हय ।२०१

वासना जे गैल, आइल अलस ॥२०२
शयने यापन, रजनी दिवस ।२०३
सारा दिन राति, घुमाइते नारि॥ २०४
नयन मुदिया, भूमे थाकि पडि ।२०५
आगे डाकिताम, तारे निति निति ॥२०६
डाकिते ओ एवे, नाहय प्रवृत्ति ।२०७
श्री हरि सहाये, भय गेछे दूरे ॥२०८
दुःख नाहि मने, आंखि नाहि झुरे ।२०९
हासिते कांदिते, किछू नाहि पारि ॥२१०
मरन वांचन, समान आमारि ।२११

× × ×

एक दिन मने, आचन्वित ह'ल ।२१२
डाकि नाइ तारे, आमि वहु काल ।२१३
डाकि तारे हाइ, तुलिते तुलिते ॥२१४
अमनि देखिनू, आमार अग्रेते ।२१५
नयन मेलिनू, देखिलाम हरि ॥२१६
आमार अग्रेते, कर जोड करि ।२१७
देखिया तखन, कहिलाम तारे ॥२१८
"केन तुमि मोर, आगे जोड़ करे ।२१९
आमि तव दासी, तुमि मोर स्वामी ॥२२०
आमार सम्मान, केन कर तुमि ।२२१
इहाते श्रीहरि, घाड हेंटे करि ।२२२

कहिलेन मोरे, अति धीरि धीरि ।२२३
"तुमि मोरे डाक, एसे थाकि आमि ॥२२४
आमि इच्छावह, प्रभु जे से तुमि ।२२५
नाहारते दांडाइ, आमि जोड करे ॥२२६
केन दुःख तुमि, पाइछ अन्तरे" ।२२७
इहा शुनि आमि, पानू लज्जा अति ॥२२८
कर जोड क'नू, करिया मिनति ।२२९
"शुन प्रभु तुम, ओरूप करो ना ॥२३०
एके मरे आछि, दिओ ना यन्त्रणा ।२३१

× × +

तिनि चलि गेले, भाविलाम मने ॥२३२
समान आमार, मरण वांचने ।२३३
इहा हते मोर, मरण से भालो ॥२३४
ए रूप जीवने, दुःख चिर काल ।२३५
जीव सौभाग्येर, जाहा हय सीमा ॥२३६
दयाल श्रीहरि, दियाछेन आमा ।२३७
आवार डाकिव, मागिव ए वार ॥२३८
ए रूप जीवन, सहे ना आमार ।२३९
मरिव मरिव, हइव निर्वाण ॥२४०
निर्वाण मुकति, देह भगवान ।२४१
इहाइ वलिते, हृदय द्रविल ॥२४२
वहु दिन परे, नयने ते जल ।२४३

हृदय कपाट, दृढ़ वन्ध छिल ॥२४४
ये मात्र खुलिल, तरङ्ग उठिल ।२४५
हा नाथ वलिया, भूमिते पड़िनू ॥२४६
अचेतन हये, पड़िया रहिनू ।२४७

* * *

वहु क्षण परे, मेलिनू नयन ॥२४८
कि जानि केन ये, पुलकित मन ।२४९
देखि शिओरेते, श्रीहरि वसिये ॥२५०
सकरुणे मोरे, रयेछेन चेये ।२५१
उठिया तखन, पड़िनू चरणे ॥२५२
वलिलाम "प्रभू, क्षम दीन जने ।२५३
सुखे रेखे छिले, भाल ना लागिल ॥२५४
तोमा उपदेश, दिते रुचि हल ।२५५
किसे भालो,किसे मन्द, नाहिं जानि ॥२५६
तवू वर मागि, लइनू आपनि ।२५७
एवे एइ मागि, तुया रांगा पाय ॥२५८
देह वर जाहा, तव इच्छा हय" ।२५९
"तथास्तु तथास्तु" वलि लेन नाथ ॥२६०
वलि अदर्शन, हलेन हठात् ।२६१
कि वर पाइनू, नारिनू वुझिते ॥२६२
कि वर पाइनू, लागिनू भाविते ।२६३
शेषे विचारिनू, तांहाके डाकिव ।२४६

क्कि वर पाइनू, वृक्मिया लइव ।२६५
इहा भावि मने, डाकिनू ताँहारे ॥२६६
"देखा दाओ हरि" डाके उच्च स्वरे ।२६७
ना एलेन हरि, इथे हलो भय ॥२६८
वार वार डाकि, कोथा, दयामय ।२६९
राम कृष्ण हरि, देखा दाओ मोरे ॥२७०
मृदुस्वरे डाकि, डाकि उच्चस्वरे ।२७१
दिवा निशि डाकि, कातर अन्तरे॥ २७२
आरत देखिते, ना पाइ ताँहारे ।२७३
तारे हाराइया, आन्धार भुवन ॥२७४
दिवा निशि एवे, करि अन्वेषण ।२७५
कहे वलराम, शुन काङ्गालिनी ॥२७६
जीव हित लागि, सुदुर्लभ तिनि ।२७७

कुल कामिनी

(सख्य)

तृतीय सखीर काहिनी

शैशवे विवाह, नाहि चिन्निनाथ, काने शुनि नाहि जानि ।१
यौवन अंकुरे, मने ह'लो तारे, किसे पाव अनुमानि ॥२
पति पर देश, ना जानि उद्देश, आमि भासि निराश्रय ।३
भरण पोषण, करे कोन जन, किसे धर्म रक्षा हय ॥४
खेलाय धूलाय, कभू भूले जाइ, रये रये मने पड़े ।५
खेला फेलि जाइ, विरले लुकाय, निराशे परान उडे ॥६
लज्जा परिहरि, सुधाइ सवारि, नाना जने नाना वले ।७
कि वुद्धि करिव, कोन पथे जाव, के मने मिलिव कुले ॥८
केह वले मोरे, तोर प्राणेश्वर, मन्त्रौ षले वश हय ।९
विविध प्रक्रिया, दिल शिखाइया, ताइ करि निशि दिवे ॥१०
उपवास करि, शरीर शुखाल, मुखे मन्त्र जप करि ।११
योगासने वसि, कत क्रिया करि, मने ओ राखिते नारि ॥१२
पडिवारे जाइ, मन्त्र छूटे जाय, कत कथा पडे मने ।१३
पुन भावि पति, नहे सर्प जाति, मन्त्रे वश हवे केन ॥१४
पुरुष प्रवल, आमि क्षुद्र नारि, तिनि स्वामी आमि दासी ।१५
छिटा फांटा दिया ताहारे वांधिव, मने हले आसे हासि ॥१६
केह शिखाइल, दिवस रजनी, तार नाम मुखे वल ।१७

डाकिते डाकिते, त्वरित आसिवे, शुधू वल "हरि बोल' ॥१८
नाम जप करि, वदन सुखाय, दाये टेकि नाम लइ ।१९
जपिते जपिते, पुनः पुनः हेरि, कत वाकि आछे ताय ॥२०
आवार कखन, संसारे मगन, अभ्यासेते नाम लइ ।२१
तांर नाम लइ, आन कथा कइ, सतीत्वे कलङ्क हय ॥२२
तांर नाम निव, हृदय द्रविवे, तवेत चरण दासी ।२३
शुष्क नाम निते, भय वासि चिते, अपराध मने वासि ॥२४
नियम करिया, नाम निते नारि, जवे भालो लागे लइ ।२५
वसिया विरले, प्राणनाथ सने, मने मने कथा कइ ॥२६
नापाइ उत्तर, तवू सुखे भोर, पति चिन्ता वड मधु ।२७
निराश्रये भासि, मने कर दासी, कोथा अशरण वन्धु ॥२८

मने मने वलि

लोके वुझाय, नाहि वूझे मन ध्रु०।२९
याश आसे वुझाइते केन्दे वूले पथे पथे ॥३०
तारा दुःखी आमारि मतन ।३१
आछे कि ना आछे, आमाय वल ॥३२
एकठि वार कथा वले, अनायासे जेओ चले ।३३
सेइ कथा करिव सम्वल ॥३४
यदि कोन निदर्शन पाई ।३५
सव दुःख सये रव आर त्यक्त ना करिव ।।३६
शत वष रव पथ चाइ ।३७
एक वार कओ दुठि कथा ॥३८

कवे आमि स्थिर हव आर कत दोल खाव।३९
आकाशे वांधिया आशा लता ॥४०

* * * *

आइल सङ्गिनि, चाहि मोरे वले "कि भाविछे मने मने ॥४१
पतिर उद्देश, पेयेछ कि भाइ, एसेछिल कोन दिने ।४२
आर कोन जन, करे ज्वालातन, वले 'कोथा कार पति ॥४३
ज्ञान जवे हवे, तखनि आसिवे, ओ सव मनेर भ्रान्ति"।४४
आमि वलि"भाइ आमि भजि त य, तोर ताहे के वा क्षति ॥४५
से ज्ञाने ते मोर, कि वा लाभ हवे, यदि नाहि मिले पति ।४६
थाके वा ना थाके, पाइवा ना पाइ, रव तार अन्वेषणे ॥४७
योगिनी हइये, कुण्डल परिये, वेड़ाइव वने वने ।४८
यदि तारे पाइ, जुडाव हृदय, तापित आमार हिया ॥४९
ना पाइ ताहारे, अधिक कि हवे, येन आछि रव ताइ' ।५०

* * *

आवारः--

विरले जाइया, कांदि पुकारिया, एस एस प्राणेश्वर ॥५१
भ्रमिया कातर, एकाकिनी चिर, देखा दाओ एक वार।५२
सुवेश करिया, सिन्दूर परिया, पथे जेये वसे थाकि ॥५३
चाहिया चाहिया, कांदिया कांदिया, आधार हइल आंखि।५४
आंचल पातिया, भूमेते शुइया, कांदि आमि शून्यघरे ॥५५
देखिनू स्वपने येन कोन जने, आमा आलिङ्गन करे ।५६

* × *

स्वप्न

तड़ितेर मत, एलये से जन ।।५७
बाहु प्रसारिया, चुमिल वदन ।५८
हृदये धरिल, अति अल्प क्षणे ।।५९
नयन मेलिते, ह'ल अदर्शन ।६०
घूमेर आवल्लि, नयन विभोर ।।६१
लखिते नारिनू, मोर चितचोर ।६२
कय दिन रनू, पागल मतन ।।६३
बूझितें नारिनू, सत्य कि स्वपन ।६४
जबे सत्य भावि, आनन्द उथले ।।६५
मिथ्या भावि यदि, भासि आंखि जले ।६६

* * *

स्वामोर सम्वाद प्राप्ति

के जाने से मन, सेइ अशरण, करिल स्मरण मोरे ।६७
बूझि कोन दिन, मोर दुःख कथा, बलेछिल केह तारे ।।६८
करिल स्मरण, विचित्र वसन, सिन्दुरेर फांटा दिया ।६९
विविध गहना, मुक तारमाला, दिल मोरे पाठाइया ७०
कलम कागज, पडिवार पूंथि, पाठायेछे सेइ सने ।७१
लिखिते पडिते, हइवे आमाय, बूझिलाम मने मने ।।७२
पुन भावि मने, पाठालो से जने, ताहार प्रमाण कइ ।७३
किवा प्रवञ्चना, करे कोन जन, पाठा लो से नाम लई ।।७४

आइल सङ्गिनी गने । ध्रु०॥ ७५
केह वड सुखो, केह वा विधुरी, नाना कथा नाना जने ।७६
केह धन्य वले, केह हासि वले, कृत्रिम भूषण तव ॥७७
पाठाइ वे तोरे, केह हेन नाइ, तैयारी तोमार सव ।७८
शुनि सब कथा, कभू पाइ व्यथा, कभू उडाइया दिय ॥७९
आपनार दुःख, सङ्गिनीर सने, विरले वसिया कइ ।८०

* * *

पूंथि खोले देखि, पाठायेछेन मोरे, दुइखानि भागवत)*॥८१
श्री चरितामृत, आर चन्दनामृत, लोचन नाटिका गीत ।८२
पडिते वूझिते, खूंजिते खूंजिते, अति सूक्ष्म वर्णे लेखा ।८३
दुछत्र माझारे, लुकाये लिखेछे, तार लिपि पानू देखा ॥८४

* * *

मधुर भगिनि, नव अङ्गे मोर, भूषण पराये दिल ॥८५
"दर्पण लइया, मुख देख भाइ, रूप तोर फिरिगेल"।८६
सींथार सिन्दूर, हासिया से दिल, वले "चिन्ह दिनू तोरे ।८७
आज ह'ते तुइ, ताँहारि हइलि,युगे युगे भज तांरे"।८८
लज्जा वस्त्र दिया, वदन झांपिल, वले "आज ह'ते तोरे ॥८९

* *

---

*श्रीमद्भागवत, श्रीचैतन्यभागवत, कविराज गोस्वामीश्रीचैतन्यचरितामृत, श्री प्रबोधानन्द सरस्वतीर चन्द्रामृत, ठाकुर लोचनदासेर चैतन्य मङ्गल, कविं कर्णपूरेर श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक, जयदेव गोस्वामीर श्री,गीत गोविन्द, एवं रामानन्देर जगन्नाथवल्लभनाटक,

कुदृष्टि करिते, नारिवे छुइते, यत्न रत्न कि वा नरे "।६०

लुकाइया लिपि, लिखिल से जन। ६१

वुक दुर दुर, आनन्दे मगन ॥६२

सत्य कि ताहार, हस्तेर लिखन ।६३

किवा मोरे केह, करिछे वञ्चन ॥६४

इहाते नयने, घन वारि पडे ॥६५

अमनि सन्देह, सव जाय दूरे ।६६

आमारे प्राणेश, स्मरण करेछे ॥६७

पिरीति पत्रिका, लुकाये लिखेछे ।६८

कि मधुर लिपि, लिखियाछे मोरे ॥६६

चुम्बिया लुकानू, हृदय माझारे ।१००

लिखेछे पत्रिका, एमनि भावेते ॥१०१

कत काल देखा, शुना तार साथे ।१०२

तिनि मोर जन, ए कथा स्वीकार ॥१०३

करेछेन पूंथि, माझे वार वार ।१०४

* * *

स्वामीर पत्र

"जाइते ना पारि, एइ कय छत्र ॥१०५

पाठानू तोमारे, उपदेश पत्र ।१०६

चाह अलङ्कार, पाठाव तोमारे ॥१०७

यदि चाह मोरे, जाइव सत्वरे ॥१०८

तेमनि हइव, येमन हइवे ॥१०६

ज़े रूप वाञ्छह, से रूपे पाइवे ।११०
जखन देखिते, व्याकुल हइवे ॥१११
तखन निश्चय, देखि चारेपावे ।११२
बहु दिन हल, छिल परिचय ॥११३
आवार मिलिते, चञ्चल हृदय ।११४
कि तोरे लिखिव, कि तुइ वुझिवि ॥"११५
क्रमे क्रमे मोरे, जानिते पारिवि ।११६
मधु हते मधु, ए पत्र पडिया ॥११७
घूचिल आन्धार, द्रवि गैल हिया ।११८
तवे कि से जन, प्रभू से आमार ॥११९
आमा प्रति एत, ममता तांहार ?।१२०
एतइ आनन्द, हृदये उठिल ॥१२१
वाहु तूले नाचि, वलि हरि वोल ।१२२

० ० ०

संगिनी आइल, लिपि दिनू हाते ॥१२३
वले "ए इत पेली, तोर प्राणनाथे ।१२४
चाहिले एखनि, पावे तारे सखि ॥१२५
आमि वलि "भाइ, चाहि तारे कइ ?"१२६
भावि देख सखि, गूढ अर्थ पावे" ।१२७
येमन हइव, से तेमन हवे ।१२८
आमित मलिन, प्रभूरे डाकिले ॥१२९
गाय छाइ माखि, आसि वेनचले ।१३०

आमि त निर्गुणा, डाकि यदि -'एस' ॥१३१
पति तवे पाव, निर्गुणा पुरुष ।१३२
पति नाहि चाहि, आगे साधि व्रत ॥१३३
सर्व्वाङ्ग सुन्दर, करि प्राणनाथ ।१३४
मधुर हइव, पति मधु हवे ॥१३५
सुन्दरि हइले, सुन्दर मिलिरे ।१३६

० ० ०

तखनि

विरले वसिया, श्रीमुख लिखिया, चित्र निरीक्षण करि ॥१३७
कखन चरण, आंकि भक्ति भरे, ताहे लुटाइया पडि ।१३८
कखन कुत्सित, यदि हय छवि, दुःख पेये मूछे फेलि ॥१३९
आंकि आर मुछि, मुछि आर आंकि, दिवा निशि एइ केलि।१४०
मोर प्राणनाथ, आंकि मनो मत, मंनो मत साजाइवे ॥१४१
सन्मुखेते राखि, आंखि भरि देखि, एक दृष्टे थाकि चेये ।१४२
देखिते देखिते, भाव गठे चित्ते, ए संसार भूले जाइ ॥१४३
येन सेइ छवि, जीवन पाइया, सप्रेम नयने चाय ।१४४
करुण नयने, हेरे मोर पाने, एइ भाव उठे प्राणे ॥१४५
तार मुख कथा, शुनिवार तरे, जेये थाकि तार पाने ।१४६
कथा नाहि करे, चुप करि रहे, इथे पाइ दुःख अति ॥१४७
भावि मोर सने, कथा कवे केन, आमि अति मूढ मति ।१४८
करि जोड कर, वलि, "प्राणेश्वर, मोरे दुठि कथा वल ॥१४९
तुमि प्राणनाथ. तोमार आश्रित, तुमा दासी चिर काल' ।१५०

आइल संगिनि, कहे हासि हासि, आंकितेछे प्राणेश्वर ।१५१
कि वा तार रूप, कि वा तार गुण, कत वड तोर वर ॥१५२

आमि

येमन आंकित्र, सेइ मत पाव, तिनि लिखेछेन मोरे ।१५३
देख देखि भाइ, केमन एंकेछे, मने धरे कि ना धरे ।१५४
मोर प्राणेश्वर, नवीन पुरुष, शुन कहि काने काने ।१५५
वदन चन्द्रमा, पूर्णिमार शशि, सदा हासि से वयाने ॥१५६
गले वन माला, क्षीणी माझा खानि, कमल नयने चाय ।१५७
नासिका ललाटे, अलका शोभेछे, परान काडिया लय ॥१५८
श्री अङ्ग वहिया, लावण्य झरेछे, सर्व्व अंगे शुधु मधु ।१५९
प्रशस्त हृदये, वला'ये जुडावे, सेइ काला चांद वन्धु ॥१६०

आवार वलिलाम—

रागिनी आलेया ।

कि कव वंधुयार कथा, आमि कि तार देखेछि नयने ॥१६१
विरले वसिया तारे यतने आंकि मने मने ।१६२
तिनि ना कि परम सुन्दर, लोके मुखे शुनेछि श्रवणे ॥१६३
अभागीरे मने करे यदि आसेन मोर घरे ।१६४
रूप गुण क'व तोर सने ॥१६५

+ + +

वकुल फुटेछे, वसिनू तलाय, पद्म दल करे निया ।१६६
नयन अञ्जन, निहारे गुलिया, लिखिनू से कालि दिया ॥१६७

* * *

कुल कामिनीर पत्र।

सखी सने वने वुलि, महानन्दे फूल तुलि।१६८
कति वा गाँथिव आर माला ॥१६६
गाँथि माला तुमि नाइ, फेले दिइ यमुनाय ।१७०
दिवानिशि करि एइ खेला ॥१७१
पेतेछिनू कुसुम शय्या । ध्रु० १७२
ज्वालिया मो मेर वाति, जागि पोहाइनू राति ॥१७३
विफल ए सव मोर सज्जा ।१७४
एस नाथ छाड चतुराली ॥१७५
या' चाहिवे ताहा दिव, कृपणता ना करिव ।१७६
दिवानिशि दुइ जने केलि ॥१७७
मोर नृत्य देखिवारे चाओ ? १७८
आध से वदन ढाकि, नयने नयन राखि ॥१७६
नाचिव त्यजिया लाज भय ।१८०
यदि घूमे ढुलु ढुलू आंखि ॥१८१
आंचले वातास दिव, उपन्यास शुनाइव ।१८२
उरु पर शिर तव राखि ॥१८३
आसे पाशे रसेर वालिस ।१८४
हृदय माझारे थो'वं, आदरे घूम पडाइव ॥१८५
मिटाइव अङ्गेर आलिस ।१८६

*   *   *

विदेशीर आगमन

एल कोन जन, केह हय तार ॥१८७
पिता माता वन्धु, कि तार किङ्कर ।१८८
जिज्ञासिले वले, शुधु "आमि तार" ॥१८९
नाहि पाइ कोन, परिचय आर ।१९०
सर्व्वदा आमार, साथे साथे रय ॥१९१
प्राणनाथ कथा, मोर सने कय ।१९२
यदि ओ सदाइ, रहे साथे साथे ॥१९३
वदन ताहार, ना पाइ देखिते ।१९४
आमारे कहिल, शुन विरहिणी ॥१९५
वडइ निठुर, तोर स्वामी जिनि ।१९६
निज जन प्रति, करे अत्याचार ॥१९७
विविध यन्त्रणा, देय वारे वार ।१९८
शुनिया ए कथा, सुखेर स्वपन ॥१९९
चिर दिन आशा, भाङ्गिल तखन ।२००
तवे कि केवल, दुःखेर लागिया ॥२०१
जनमिनू मुइ, धराते आसिया ? ॥२०२
तवे कि आपन, मोर केह नाइ ।२०३
अदृष्टेर स्रोते, भासिया वेडाइ ॥२०४
कातर हइया, उठिनू दांडाये ।२०५
कहिनू विधिरे, दु' कर जुडिया ॥२०६
निठुरेर हाते, मोरे संपे दिलि ।२०७

कोन अपराधे, ए भवे आनिले ॥२०८
अवला रमणी, निठुरेर हाते ।२०९
कि रक्षिवे मोरे, से भाङ्गिले मथे? ॥२१०
स्वामी वइ आर, कि आछे आश्रय ।२११
जाव कार काछे, स्वामी निरदय ॥२१२
किसेर लागिया, करिलि सृजन ।२१३
कांदिया कातरे, हनू अचेतन ॥२१४
सखी पाशे वसि, शियरे सेजन २१५
कहिते लागिल, मधुर वचन ॥२१६
तोर प्राणनाथ, निठुर से नय ।२१७
निदय देखाय, किन्तु प्रेममय ॥२१८
तोके जा लिखिल, भूलि ना जाइवि ।२१९
येमन हइवि, तेमन पाइवि ॥२२०
शुनिया, आश्वास, पाइलाम मने ।२२१
दुःख आर कारु, नाहि दिव प्राणे ॥२२२
दयालु हइले, दयाल पाइव ।२२३
तवे पतिव्रता, धरम साधिव ॥२२४
कहे सेइ जन, "पतिव्रता शुन ।२२५
तोर स्वामी हय, भुवन मोहन ॥२२६
करूपिणी तुइ, तोरे निये केन ।२२७
तोमा हते भाल, कत तार गणा ॥२२८
ए कथा शुनिया, कान्दिनू विकले ।२२९

धुइलाम अङ्ग, नयनेर जले ॥२३०
मलिन वलिया, पति त्याग करे ।२३१
तवे कि आश्रय, दिवे आर मोरे ॥२३२
हासिया कहिल, "भाल वासो तारे ।२३३
आदरे राखिवे, हृदय माझारे" ॥२३४
इहाते मनेते, गौरव हइले ।२३५
कान्दाय आवार, कटु कथा वले ॥२३६
कोन निज जने, वासि तामभालो ।२३७
के आसि ताहारे, हरिया लइल ॥२३८
वहु दिन कान्दि, शोकेर लागिया ।२३९
अविरत धारा, पडे आंखि दिया ॥२४०
सर्व्वाङ्ग मलिन, हृदयेते ताप ।२४१
अन्तरे वाहिरे, कत मोर पाप ॥२४२
से सव शोकेते, द्रवीभूत हल ।२४३
आंखि वारि रूपे, वाहिया चलिल ॥२४४
यखन अधीर, वड हय हिये ।२४५
मोरे शान्त करे, मधु कथा कये ॥२४६
एइ मत मोर, कत दिन गेल ।२४७
क्रमे क्रमे मन, किछु शान्त हल ॥२४८
तखन कहिल, "चल मोर साथ ।२४९
देखाव तोहारे, तोर प्राणनाथ" ॥२५०
आनन्दे चलिनु, वने लये गेल ।२५१

कांटा वने फेलि, कोया पलाइल ॥२५२
सर्व्व अङ्ग क्षत, आइलाम घरे ।२५३
वले 'पा'र कांटा, दिव वार करे ॥२५४
कहिलाम आमि, आर काज नाइ ।२५५
भूलिव ना आर, तोमार कथाय ॥२५६
यमुनाय जाई, झारि लये कांके ।२५७
गह्वर करिया, सेइ पथे राखे ॥२५८
पड़े व्यथा पाई, झारि भेङ्गे जाय ।२५९
हासे दाडा इया, हाथे तालि देय ॥२६०
फांकि दिया पुन, कूपे फेलाइल ।२६१
कृपा करि धरि, पुनः उठाइल ॥२६२
आमि यदि कांदि, अंगे दुःख पाइ ।२६३
ताहे दुःख नाइ, हासिया उडाय ॥२६४
एइ मत रङ्ग, करे मोर सने ।२६५
कखन दारुया, क्रोध हय मने ॥२६६
आवार देखिया, सरल व्याभार ।२६७
तार प्रति धाय, अन्तर आमार ॥२६८
आवार कखन, धरे मोर करे ।२६९
काने काने वले, भजह आमारे ॥२७०
राग करि आमि, पालाय से त्रासे ।२७१
दूर दूर रहे, निकट ना आसे ॥२७२
दुर्व्वला रमणी, पाये पाये भय ।२७३

विभीषिका देखि, प्राया उडे जाय ॥२७४
स्वामी निरुद्देश, से जनरयेछे ।२७५
मोर रक्षा लागि, सदा काछे आछे ॥२७६
ए सब देखिया, क्रोध दूरे जाय ।२७७
पुनः भूलि जाइ, ताहार कथाय ॥२७८
एक दिन देखि, आडाले वसिया ।२७९
मृदु स्वरे कांदे, कातर हइया ॥२८०
सब कथा काने, नाहि प्रवेशिल ।२८१
येन आध बोले, मोर नाम निल ॥२८२
किछू नाहि जानि, किवा तार मने ।२८३
क्षणेक विलम्वे, मिलिल मुसने ॥२८४
तार भाव देखि, चिन्तित हृदय ।२८५
भाविलाम आज, लव परिचय ॥२८६
कहिलाम तारे, विनय करिया ।२८७
पति काछे मोरे, चल गो लइया ॥२८८
जानिलाम मने, तुमि मोर सखा ।२८९
वल पति सने, किसे हय देखा ?" ॥२९०
वलिल आमारे, "लव तार काछे ।२९१
तोर प्राणेश्वर, येथा लुकि आछे" ॥२९२
भाविते भाविते, गेनू तार साथे ।२९३
देखि कत लोक, वसिया सभाते ॥२९४
इति उति चाइ, पति देखि वारे ।२९५

आनन्दे हृदये, दुर दुर करे ॥२९६
देखाइया वले, "एइ तोर पति" ।२९७
ताहारे देखिया, भय पानू अति ॥२९८
हाड-माला गले, भस्म माखा गाय ।२९९
निराश आगुने, शुखालो हृदय ॥३००
हासिया कहिल, अपराध कैले ।३०१
पति देखे भये, नयन मुदिले ॥३०२

आमि

"उहारे देखिले, भक्तिर उदय ।३०३
हृदये धरिते, मने भय हय ॥३०४
प्राणेश्वर हवे, हृदये धरिव ।३०५
अमिय सागर, माझारे डूविव ॥३०६
इनि गुरु जन, देखे भक्ति हय ।३०७
वल वल मोर, प्राणेश्वर कइ" ॥३०८

तिनि

"भालो वासियाछ, ओइ देख चेये ।३०९
स्वामी गज मुख, आछेन वसिये ॥३१०
परम सुन्दर, सुवलित देह ।३११
नयन भरिया, पति मुख चाह" ॥३१२
दुःखेते कहिनू, "शुन महाशय ।३१३
मानुसे गजेते, प्रीति नाहि हय ॥३१४
गजेर जे रूप, करिणी वूझिवे ।३१५

मानुष केमने, से रूपे भूलिवे ?॥३१६
देखिव जखन, पिया मुख चन्द ।३१७
उथलिव प्राणे, केवल आनन्द" ॥३१८
इहाते कहिल, व्यङ्ग करि अति ।३१९
"कोथा पाव तोर, मनो-मत पति ? ॥३२०
पति देख चेये", देखाल आमारे ।३२१
अनेक रमणी, सभार माझारे ॥३२२
केह दशभुजा, कारु हाथे वीणा ।३२३
केह उलङ्गिनी, विकटदशना ॥३२४
आमि कहिलाम, विरक्त हृदय ।३२५
"रमणी रमणी, मिलन कि हय ॥३२६
एरा हवे मोर, माता कि भगिनी ।३२७
केह दिदि वुडि, केह वा संगिनी ॥३२८
प्राण कान्दे मोर, यतिर लागिया ।३२९
कि करिव मुइ, रमणी लइया ? ॥३३०
मने वोध हय, रहस्य करिछ ।३३१
मनो दुःख मोर, किछु ना देखिछ ॥३३२
चरणे मिनति, वेदना दिओना ।३३३
मोर प्राणनाथ, कोथाय वल ना ॥३३४
आशा दिया . दिया, नाचाओ आमारे ।३३५
कथा शुने भूले जाइ ॥३३६
आशा भाङ्गि भाङ्गि, ज्वालह आगुन, वुक पूडे हय छाइ ।३३७

अति दुःखी आमि, भूलेछेन स्वामी, स्वामी लोभ देखाइया ३३८
दुःख दाओ मोरे, दग्ध अवलारे, कठिन तोमार हिया ३३९
ए कथा वलिया, कान्दिया कान्दिया, तथाय वसिया पनू ।३४०
कान्दिनू फूकरि, "उहू 'मरि मरि" वदन झांपिया रनू ।३४१

तखन

हासिते लागिल, नीरव हइल ॥३४२
क्षणेक चिन्तिया, कहिते लागिल ।३४३
"शुन हे सरले, कृष्णा काङ्गालिनी ॥३४४
कि वलिव तोरे, सुधांशुवदनी ।३४५
कहिते तुहारे, मने वासि भय ॥३४६
तोर प्राणपति, मोर मत हय ।३४७
वदन तुलिया, चाह मोर पाने ॥३४८
काल मुख यदि, धरे तोर मने" ।३४९
मने मने भावि, रहस्य करिछे ॥३५०
क्रन्दन देखिया, मनेते हासिछे ।३५१
किन्तु भङ्ग स्वरे, कहिल आमारे ॥३५२
ताहाते वूझिनू, कान्दिछे अन्तरे ।३५३
तखन चाहिनू, ताहार वदने ॥३५४
हासिवारे गेल, नयन द्रविल ।३५५
आमार हृदये, शैल विधि गेल ॥३५६
कहिल आमारे, "हे सरल मति ।३५७
अकृपा करना, आमि तोर पति" ।३५८

आंचलें झांपिनू मुख ।३५९ ध्रु०
चिर दिन मने, या'छिल सञ्चित, उथले उठिल दुःख ।३६०
कान्दिया कान्दिया, अधीर हइनू, तिनि वसिलेन आगे ॥३६१
कर धरि कहे, "तोर पति आमि' भालवासा भिक्षा मागे३६२
कठिन ए हिया, उठिछे कान्दिया, देखिया तुहार दुःख॥३६३
नयन मूछह, मोर पाने चाह, देखि तोर चन्द्र मुख ।३६४
यदि अपराधी, तोर काछे थाकि, तवू तोर पति हइ ॥३६५
तुइ पतिव्रता, आमि तोर स्वामी, कृपा कर कृपा मयी" ।३६६
अवाक् हइया, रहिनू चाहिया, देखिया ताहार काज ।३६७
"कि कर किकर" वलिया श्री कर, धरिनू हृदय माझे ।३६८
"तुमि सर्व्वेश्वर, सवार उपर, तुमि यदि क्षमा याच ।३६९
अधीनी किङ्करी, वलहे कि करि, जाइवे तोमार काछे ॥३७०
एके अपराधी, ताहे निरवधि, ज्वलिया पुडिया मरि ॥३७१
तुमि क्षमा चाह, येन कत दोषी, केमन्न सहिते पारि ।३७२
ए रूप सौजन्य, शुधू तोमा भिन्न, अन्ये ना सम्भव हय ॥३७३
वलि जुडि हाथ, दैन्य राख नाथ, हृदय फाटिया जाय ।३७४
दुर्मति प्रवला, अवला दुर्व्वला, सदा मोर भ्रान्त मन ॥३७५
निज कर्म्म दोषे, वेडाइनू भेसे, कूल पाइनू एखन ।३७६
कहि मनो कथा, मुखे पतिव्रता, मने भक्ति मात्र नाइ ॥३७७
वलि दयामय, भावि निरदय, मये जनम गंवाइ ।३७८
आछे कि ना आछे, समुदाय मिछे, रहिव कि हव लय ॥३७९
इहाइ भाविया, तोमा ना भजिया, जनम करिनू क्षय ।३८०

आगे यदि जानि, तुमि गुणा मणि, तवे कि ए दशा हय ॥३८१
तोमारे खूंजिया, यौवन याचिया, संपिताम राङ्गा पाय ।३८२
ए मोर यौवन, वृथा वहि गैल, थाकिते ए गुणामणि ॥३८३
एइ दुःख मोर, उथले हृदये, ज्वम तोर काङ्गालिनी ।३८४
सहस्र सहस्र, दिन वये गेल, ए दुःख कहिव काके ॥३८५
तोमारे भूलिया, केमने रहिनू, तुमि शुये मोर वुके ॥३८६

*　　　　*　　　　*

कोलेते करिल, मुद्धाल नयन ॥३८७
"अति गुप्त कथा, वलि प्रिया शुन ।३८८
पूरिवे वासना, निश्चित जानिले ॥३८९
मिलने कभू कि, आनन्द उथले ।३९०
सन्देह केवल, पिरीति वर्द्धन ॥३९१
सन्देह जीवेर, वहुमूल्य धन ।३९२
वियोग सन्देह, यदि ना रहित ॥३९३
तवे कि संसार, सरस हइत ?।३९४
एवे कोले, तवू, सन्देह करिवि ॥३९५
सन्देह करिया, आवार कांदिवि" ।३९६
ये वलिल आर, देखिते ना पाइ ॥३९७
कोथाय गियाछे, फेलिया आमाय ।३९८
कि देखिनू मुइ, सत्य कि स्वपन ।३९९
वलाइ कि तारे, हवे दरशन ?॥४००

———

প্রেম তরংগিণী

(বাত্সল্য)

চতুর্থ সখীর কাহিনী

मधुर निकुञ्जे, अलि कुल गुञ्जे, मत्त मधु खाइ खाइ ।१
अबला सरला, नाहि प्रेम ज्वाला, कुसुम तुलिते जाइ ॥२
निर्ज्जने स्वच्छन्दे, मनेर आनन्दे, वेडाइ कुसुम वने ।३
फूल डाल धरि, सुखे शोभा हेरि, नासिका मात ये घ्राणे ॥४
मालती तुलिया, मालाटि गांथिया, आपन गलाय परि ।५
दर्पण लइया, विपिने वसिया, आपन वदन हेरि ॥६
वेनी बांधि माथे, गन्धराज हाथे, मने हले वेनी खुलि ।७
आनन्दे अज्ञान, सुखे करि, गान, अङ्गेर वसन फेलि ॥८
ना जानि कारण, कखन कखन, आपन मनेते हासि ।९
आवार कखन, कि करे पराण, कान्दि वृक्ष तले वसि ॥१०

* * *

निर्जन कानने, शुनि कोन दिने, येन के शवद करे ।११
मने बोध हय, आडाले दांडाये, केवा येन देखे मोरे ॥१२
इहाते किञ्चित, हइनू कुण्ठित, पुन भाविनू अन्तरे ।१३
देखिछे आमाय, क्षति किवा ताय, ना देखिव आमि ओरे।१४
कखन वा पाछे, कखन वा पाशे, सदाइ आडाले थाके ।१५
आन मना हये, जवे देखि चेये, छाया मत देखि ताके ।१६
जखन से जाय, कि वा वाजे पाय, रुनू झुनू शुनि काने ।१७

पाछे फिरे चाइ, देखिते ना पाइ, आङ्ग गन्ध पाइ घ्राणे१८
येन वंशी ध्वनि, दूर ह'ते शुनि, केमन करये मन ।१६
शुनिवारे जाइ, फिरि भय पाइ, कि जानि से कोन जन।२०
देखिवारे तारे, कभू इच्छा करे, कांपिया उठिये प्राणी ।२१
आड चोखे चाइ, देखिवे ना पाइ, तवू काछे आछि जानि २२
चिर एकाकिनी, सङ्गी नाहि जानि, एकि दाय हलो मोरे ।२३
किवा भावे मने, मञ्जीर चरणे, केन पाछे पाछे फिरे ॥२४

* * *

मालती शुंकिये, विभोर हइये, भावि शुकाइव कारे ।२५
एकला शुंकिये, तिरिप्ति ना हय, ताइ मने पडे तारे ॥२६
गांथि गुञ्जाहार, अति मनोहर, भावि कारे देखाइव ।२७
सुन्दर सुजन, पाइ कोन जन, तवे तारे पराइव ॥२८
एकाकि वेडाइ, यदि कारु पाइ, मोर मनोमत हय ।२६
दुजने वेडाव, सुखे कथा कव, माला गांथि दिव ताय ३०

* * *

करुणार स्वरे, वंशी ध्वनि करे, लुकाइया वुले वने ।३१
कि जानि केमने, द्रव हय प्राणे, वांशीर करुणा गाने ॥३२
वृक्ष तले वसि, शुनिलाम बांशी, नयने चलिल धारा ।३३
अवला रमणी, किछु नाहिं जानि, येन किवा धने हारा ॥३४
धैरेज धरिया, ताहार लागिया, गाँथिनू चिकन हार ।३५
वकुलेर डाले, राखिलाम तुले, लवे, इच्छा ह'ले तार ।३६
विपिन घूरिया, देखिनू आसिया, नाहिक आमार माला ।३७

नूतन गेंथे छे, से खाने रेखेछे, वासे भृङ्ग मातोयाला ।३८
आमार लागिया, रेखेछे गांथिया, लयेछे आमार माला ।३९
निव कि ना निव, कि वा उपेक्षिव, हाम अबोधिनी बाला ॥४०
हाम अभागिनी, केमनेते जानि, देखिनू सुन्दर माला ।४१
जीर्ण पुष्प हार, एत शक्ति तार, फांसेतें बांधिवे गला ॥४२
सेई माला निया, भाविया चिन्तिया, गलाय तुलिया दिनू ।४३
मुख तुलि चाइ, देखिवारे नाइ, नवीन नीरद कानू ॥४४

× + ÷

वृन्दे हेला दिया, निश्चिन्त हइया, आछे दाडाइया देखि ।४५
कि जाने प्रथमे, धान्धाय नयने, देखिते नारिनू सखि ॥४६
क्रमेते फूटिल, परिष्कार हल, आगे देखि पद दुटि ।४७
रातुल चरण, पल्लव नवीन, पद्म आध कि वा फुटि ॥४८
नृत्य करिवारे, सोनार जञ्जीरे, साजियाछे पा दुखानि ।४९
डाल धरि आछे, आंटिया वेधेछे, अति क्षीण माजा खानि ॥५०
अति सुकुमार, नवीन नागर; गले दोले वन माला ।५१
आदरे भासिछे, गलिया पडिछे, वरण चिकन काला ॥५२
वदन देखिते, तारा नाहि उठे, ए कि दाय मोर हलो ।५३
ललाटे चाहिते, आंखिते आंखिते, तारा तारा मिलि गैल ॥५४
नयन कमल, रसे टलमल, आरोपिल मोर मुखे ।५५
प्रसन्न वदन, प्रेम निकेतन, विन्धे गेल मोर बुके ॥५६
कोन वा रसिका, अलका तिलका, दियाछे से चान्द मुखे ।५७
एकि चमत्कार, रूप सरोवर, धरिल ना मोर चोखे ॥५८

स्तम्भित हइया, रहिनू चाहिया, आखि नाहि कथा शुने ।५९
रमणी गौरव, लज्जा भय सब, टानि निल निज गुणे ॥६०
विम्बा ओष्टाधर, कांपे थर थर, कि कहिल धीरे धीरे ।६१
वुझिते नारिनू, चाहिया रहिनू, तमाल तरुठि धरे ॥६२
वदन कमले, नाना भाव खेले, छल छल राङ्गा आंखि ।६३
रुनू झुनू बाचे, एल धीरे काछे, भोर दुर दुर वुकि ॥६४
पलाइते चाइ, शकति त नाइ, नयने वेंधेछे मोरे ।६५
अत्रसित अङ्ग, हृदय तरङ्ग, शुभ्र काँपि थर थरे ॥६६
कथा ना कहिल, चिवुक धरिल, चुम्बिल वदन मोर ।६७
स्पर्श प्राण पेये, पनू मुर छिये, धरिल आपन कोर ॥६८

* ❀ ❀

चेतन पाइया, चलिनू धाइया, लुकाइनू गृह कोने ।६९
विरले वसिनू, कान्दिते लागिनू, धैरज ना माने प्राणे ॥७०
फ़िरिल प्रकृति, फिरिल आकृति, संगिनी चिनिते नारे ।७१
चञ्चल आछिनू, गम्भीर हइनू, कथा नाहि कहि कारे ॥७२
अन्तर निर्मल, आपनि हइल, कि लागि वलिते नारे ।७३
आनन्द हृदये, खेलिछे सदाइ, दिवस रजनि झूरे ॥७४
आमि कोन जन, वूझिनू तखन, आगे जानि ना अन्तरे ।७५
आछे निजन, वुझिनू तखन, एकानहि संसारे ॥७६
आछे मोर घर, संसारे आमार, ए वाडी आमार नय ।७७
आमिना आमार, आमि हइतार, हइलो ए ज्ञानोदय ॥७८
यत निज जन, आपन आपन, आछये संसार लइ ॥७९

शुद्ध से आमार, केह नाहि तार, सेइ निज जन वइ ॥८०
केवल आमार, केह नाहि आर, इहाते आनन्द उठे ।८१
तार नाम कथा, वास तार यथा, सब मोर लागे मिठे ॥८२
ताहार सम्बन्ध, ये कोन प्रबन्ध, यथा सुनि जाइ चुपे ।८३
नयन मुदिले, हृदय कमले, हेरि सेइ रस रूपे ॥८४
सन्मुखे दर्पण, देखिते वदन, चन्द्र मुख देखि तार ।८५
अति लज्जा पाइ, मुख फिरि चाय, देखिते ना पाइ आर ।८६
स्वपन निशिते, देखि कत मते, प्रभाते ना थाके मने ।८७
सदाइ हुताश, घन दीर्घ स्वास, तार चिन्ता राति दिने ॥८८
चमकि चमकि, उठि थाकि थाकि, सखी गण पूछे मोरे ।८९
"किवा आगे छिलि, किसे हेन हलि, कि व्यथा हयेछे तोरे" ॥९०
सखीरे कहिनू, "विपिने देखिनू, नवीन पुरुष रत्ना ।९१
सत्य कि देखिनू, किधान्धाय पनु, किवा दिवा भागे स्वप्न" ॥९२
सखीरा कहिल, "नन्देर दुलाल, देखिलि विपिने सखी ।९३
तांहारे भजिवे, कान्दिते हइवे, आगे तोरे चले थुइ" ॥९४
जाइ वन माझे, बुझि अति लाजे, चकित हिरनि मत ।९५
आड चोखे चाइ, उदेश ना पाइ, फिरि आसि मर्म्माहत ॥९६
आर नाहि शुनि, मुरलीर ध्वनि, ना शुनि मञ्जीर रव ।९७
कुसुम फुटिले, गन्ध नाहि मिले, निरानन्द देखि सब ॥९८
घरेते वसिया, गवाक्ष खुलिया, आंखि दिया वहे लोर ।९९
स्थिर हये थाकि, एक दिठे देखि, यदि जाय चित्त चोर ॥१००
रुनू झुनू ध्वनि, यदि कभू शुनि, चमकिया उठि चाइ ।१०१

देखि देखि देखि, कोथा प्राणपाखी, आर ना देखिते पाइ ॥१०२
वनेते खुजिव, हवे प्रिय लाभ, सङ्कल्प करिनू मने ।१०३
यदि नाहि पाव, घरे ना फिरिव, वने रव चिर दिन ॥१०४
निज जन सव, छाडि वने रव, कान्दिया उठिल प्राणे ।१०५
आपन जे आछे, सकलेर काछे, विदाय लइनु मने ॥१०६

* * *

वैशाख विकाले, वेला माला गले, कवरीते गन्धराज ।१०७
नयने काजर, मल्लिका वेसर, पागलिनी मत साज ॥१०८
आंगिना आसिया, भूमे लोटाइया, प्रणमिनू निज वाडी ॥१०९
कान्दिते कान्दिते, चलि जाइ पथे, वनेते प्रवेश करि ॥११०
मालञ्च माझारे, क्रमे जाइ धीरे, दांडानू तगरतले ।१११
हइया अवला, खुजि नन्दलाला, लाज भय दिनू जले ॥११२
आइनू तांहारे, वने खुजिवारे, कोथाय खुंजिव ताय ।११३
देखि देखि देखि, कोथा जाय लुकि, रुनू झुनू वाजे पाय ॥११४
सहजे स्वपने, कि देखिनू वने, सत्य कि पाइव तारि ।११५
सत्य कि विपिने, थाकि सेइ जने, युवति वधेर तरे" ॥११६
चौदिके विजन, देखिनू विपिन, गाइते लागिनू गान ।११७
कोकिल मयूरी, भृङ्ग शुक सारि, संगेते धरिल तान ॥११८

सूरठ झांप ताल

सेइत कालो शशी ।११९
चाहिल इषत् हासि ॥१२०
हृदये गेल पशि ।१२१

ऊहु ऊहू विन्धिल वाया ॥१२२
आमित कुल वाला ।१२३
ना जानि प्रेम ज्वाला ॥१२४
कि कैले चिकन काला ।१२५
निल निल रे कुल मान ॥१२६
कि वा रूप धरिल ।१२७
आगे आसि दांडाइल ॥१२८
अवलार परान निल १२६
एस एस राख पराण ॥१३०
मन चुरि करिया ।१३१
एका गल फेलिया ॥१३२
कांपे अवलां हिया ।१३३
गुरु जन रुजिछे मोरे ॥१३४
वाहु पसारिया ।१३५
हृदि माझे चापिया ॥१३६
निये चलं लुकाइया ।१३७
वन वासिनी कर मोरे ॥१३८
गाइते गाइते गीत पद्म गन्ध पाइ ।१३६
नासिका मातिल गन्धे चरिदिके चाइ ॥१४०
रुनू भुनू रुनू भुनू वाजिया चलिल ।१४१
माधवी लतार माझे येन से लुकाल ॥१४२
शुनिछे शुनिछे गीत निश्चय जानिनु ।१४३

लज्जाय कातर हये वदन झाँपिनू ॥१४४
कि करिव कोथा जाव एकाकिनी नारी ।१४५
भाविलाम यमुनाय झांप दिया मरि ॥१४६
एमन समय शुनि वन प्रान्त भागे ।१४७
मोहन मुरली वाजे येन मोरे डाके ॥१४८
स्तम्भित हइया शुनि दिक नाहि जानि ।१४६
एके दिके बाजे चारि दिके प्रतिध्वनि ॥१५०
वृत्त मञ्जरित ह'लो परिमल झरे ।१५१
शुक सारि मृग सुखे कलरव करे ॥१५२
वाँशिरवे त्रिजगत शीतल हइल ।१५३
आमार पराण सखि कांदिया उठिल ॥१५४
एमन करुण स्वरे मुरलि वाजाय ।१५५
कांदिया उठिये प्राणी काम गन्ध नाइ ॥१५६
केन कांदे केन कांदे किवा दुःख मने ।१५७
वाँशि छले केन कान्दे ए घोर कानने ॥१५८
कार प्रेमे कान्दि वूले अधीर हइया ।१५६
प्रेम बिना केन्न कान्दे ए रूप करिया ॥१६०
धिक धिक निठुरा से कालारे कान्दाय ।१६१
क्रन्दन शुनिले सेइ वज्र गले जाय ॥१६२
मति छन्न हल सखि भाविते भाविते ।१६३
जोड करे ऊर्द्ध मुखे चलि जाय पथे ॥१६४

* * *

तखन

कात्यायनी ठांइ, पूजिबारे जाइ, 'से स्थान विरल अति ।१६५
कुसुम चन्दने, पूजिनू चरणे, दाओ मोर प्राणपति ॥१६६
मातार हृदये, स्नेह रूप हये, तुमि मा विराज कर ।१६७
अन्नपूर्णा हये, जीवे अन्न दिये, क्षुधार्तेर दुःख हर ॥१६८
विपदे पडिले, तोमारे डाकिले, 'मा भै' बलिया एस ।१६९
त्रैलोक्य तारिणी, भक्ति प्रदायिनी, घुचाओ आमार क्लेश ॥१७०
तुइ मा जननी, ममतार खनि, दुःखिनी तनया तोर ।१७१
यौवन हयेछे, परान काँदिछे, कोथा प्राणनाथ मोर॥१७२
आमारे छुंयेछे, पराण नयेछे, पशेछे हृदये रूप ।१७३
बांधा कटि आंटि, राङ्गा आंखि दुठि, दे मा सेइ रूप कूप ॥१७४

* * * *

अतः पर

विरल पाइया, हृदय खुलिया, बलिते हृदय व्यथा ।१७५
येन मोर पाछे, दांडाइया आछे, शुने से आमार कथा ॥१७६
मुख फिरि चाइ, देखिते ना पाइ, कोथा लुकाइल वने ।१७७
पूर्व कार मत, श्रवण अमृत, रुनू झुनू शुनि काने ॥१७८
अवाक हइया, रहिनू चाहिया, जननीर मुख पाने ।१७९
लज्जा पेये अति, कहि तार प्रति, धारा वहे दुनयने ॥१८०
'जेथा आमि जाइ, काछे देखि ताय, मन कथाक'ते नारि ।१८१
देखा नाहि दिवे, पश्चाते फिरिवे, कि उपाय मागो करि" ।१८२
मा जननी येन, हासिल तखन, आमा प्रति स्नेह करि ॥१८३

मुकुटेर फूल, खसिया पडिल, धरिनू अञ्जलि पुरि ॥१८४
सेइ फूल दिया, वेणी साजाइया, चलिनू गहन वने ।१८५
जाइ थाकि थाकि, विभीषिका देखि, कत भय हय मने ॥१८६
जवे हय भय, शुनिवारे पाइ, मधुर मञ्जीर ध्वनि ।१८७
दूरे जाय भय, भरसा उदय, काछे आछे मने जानि।१८८
ना पारि जाइते, ए क्लान्त देहेते, वसिनू वृक्षेर तले ।१८९
आन्धार भुवन, नमित वदन, हिया भासि आंखि जले।१९०
कि हल दुराशा, मोर भालो बासा, संपिनू काहार पाय॥१९१
आमि बासि भाल, तार कि वा वल, तार कि वा आसे जाय।१९२
भालो वासि जेन, किनिनू जे जन, से केन वासिवे भाल ।१९३
आमि कुरूपिणी, से त सुधा खनि, स्वेच्छामय चिर काल ॥१९४
वासे यदि भाल, तवे केन बल, आमा देखि जाय दूरे ।१९५
सर्व्वदायी काछे, सङ्गेते शिरिछे, देखा त ना देय मोरे ॥१९६
कांन्दिया कहिते, पाइनू शुनिते, सेइ मंजीरेर ध्वनि ।१९७
मुख तुले चाइ, देखिवारे पाइ, सेइ नीलकान्त मणि॥१९८
चाह्न मोर पाने, करुणा नयने, शुनिछे आमार कथा ।१९९
लज्जा पाइ मने, नमित वदने, आंचले झांपिनू माथा॥२००
ताहार चरिते, कि वा हलो चित्ते, चलिलाम क्रोध भरे ।२०१
भरसा मनेते, से आसि पश्चाते, साधिवे विनय करे ॥२०२
बहु दूर जाइ, शुनिते ना पाइ, मधुर मंजीर काने ।२०३
पाछे फिरे चाइ, नाहि देखि ताय, वसिनू निराश प्राणे॥२०४
हृदय आनिल, तवू उपेक्षिल, आर ना वांचिते साध।२०५

तांहार सन्मुखे, प्राण दिव दुःखे, दिया तारे अपराध॥२०६
हेन काले देखि, यत प्रिय सखी, आमा खुंजिते छ वने।२०७
आमारे देखिया, त्वरित आसिया, बसे सवे सेइ स्थाने॥२०८
कहे सखीगण, "श्री नन्दनन्दन, भजिया ए दुःख तोर।'२०६
कहिनू तखनि, ना शुनिनि वाणी, कान्दि एवे हलि भोर॥२१०
कथा शुन सखि, वांका पथ राखि, चल सोजा पथ धरि।२११
चिर प्रचलित, सेइ साधु पथ, कुल राख कुल नारी॥२१२
विचारिनू मने, कहे सखी गणे, आमार हितेर कथा ।२१३
पराण जे हते, दिनू तार हाते, सेइ हते मनो व्यथा" ॥२१४
एइ व्रज पुरी, यत कुल नारी, सुखेते संसारे वुले ।२१५
करिते पिरीति, हइल दुर्मति, एवे भासि आंखि जले ॥२१६
सखीरे कहिनू, "मने विचारिनू, आर ना भजिव तारे ।२१७
रहिव संसारे, येन सवे करे, फिरे जाव चल घरे" ॥२१८
ए कथा कहिते, पाइनू देखिते, हिया माझे दांडाइये।२१६
जारे भाल वासि, सेइ कालो शशी, एक दिठे मोरे चेये ॥२२०
मलिन वदन, कातर नयन, मु'खानि शुखाये गेछे ।२२१
येन भय पेये, साधेछे विनये, आमि तारे छाडि पाछे॥२२२
से मुख देखिया, जाव ना वलिया, मुरछि पडिनू धरा ।२२३
कि ह'लो कि ह'लो, सखिरा धरिल, आमि रइ ज्ञानहारा॥२२४
हेन अचेतन, छिनू बहु क्षण, किछुइ ना आमि जानि ।२२५
पद्म गंध पाइ, आंखि मेलि चाइ, मंजीरेर रव शुनि ॥२२६
सखी कहे काने, "चाह आंखि कोने, शिओरे कि सखि हेर" ।२२७

ए कथा शुनिये, मस्तक फिराये, देखि मोर प्राणेश्वर ॥२२८

*   *   *

ताप अतिशय, अंगे वस्त्र नाइ, यखन हेरिनू तारे ।२२९
अति लज्जा पेये, वदन झांपिये, रहिं आमि पाश फिरे॥२३०
पुने भावि मने, पलावे एखने, यदि ना सम्भाष करि ॥२३१
आसने वसिते, सखीरे इंगिते, कहि आमि धीरि धीरि।२३२
कहे सखी काने, "शुये आछे केने, वन्धुरे आदर कर" ।२३३
आमि कहि काने, "उठिते पारिने, क्षीण अङ्ग जरजर ॥" २३४
कहे सखीगण, "शुन सुवदन, सङ्गिनी कातर हेर ।२३५
सम्भाष करिते, नारिछे उठिते, कृपा अरि क्षमा कर' ॥२३६
से कथा सुनिया, शिओरे वसिया, कहिते लागिल वन्धु ।२३७
प्रथम तखन, पाइल श्रवण, वचन कमल मधु ॥२३८
कहे चन्द्रमुख, "मने पाइ दुःख, देखिया बालार व्यथा'।२३९
ए कथा शुनिये, आरो लज्जा पेये, हृदये लुकानू माथा ॥२४०
कहिछे आवार, "कि व्यथा इहार, कि लागिया मर्म्माहत ।२४१
शकति आमार, थाके उपकार, करिव जे साध्य मत" ॥२४२
शुनि एइ वाणी, कातर पराणी, वलिं "सखि गृहे चल ।२४३
एखनि चलिव, हेथा नाहि रव, कि लागि रहिव वल ? ॥२४४
आमि दुःख पाइ, कार क्षति नाइ, के वा मोर आमि कार ।२४५
निज कर्म्म योग, करिव से भोग, नाहि चाहि उपकार" ।।२४६
कहे सखी गण, "शुन सुवदन, सखीर ये मनोव्यथा ।२४७
जिज्ञास उहाय, कि दुःखे धराय ? तुमि उनि कह कथा"।२४८

कहिछे नागर, वडइ कातर, तोदेर सङ्गिनी देखि ।२४९
"कि दुःख उहार, हृदय माझार, विवरिया कह सखी" ॥२५०

सखीगण

निवेदन करि, शुन हे श्री हरि, एनेछि नवीन वाला ।२५१
मोदेर सरले, दिवे तव गले, गेंथेछे चिकन माला ॥२५२
श्री कर कमले, संपिनू सरले, राखिवे यतन करि ।२५३
ना जाने केमनि, पिरीति काहिनि, शिखाइवे धैर्य्य धरि ॥२५४
हवे रसाभास+, तुमि रसराज, पाइवे हृदये व्यथा ।२५५
क्षमि अपराध, करिवे प्रसाद, कहिवे मधुर कथा ॥२५६
प्रेमेर सञ्चार, हृदये उहार, तोमारे संपिछे प्राण ।२५७
वाहु प्रसारिया, हृदये लइया, कर आलिङ्गन दान ॥२५८
वन फूल दिया, प्रिया साजाइया, आदरिनी कर तारे ।२५९
कुसम कानने, वेडाओ दुजने, देखिव नयन भरि" ॥२६०

तखन तरङ्गिनी कहितेछेन

"एवे मोरा जाइ, तुमि रव भाइ, दुहे लह परिचय" ।२६१

* * *

सखीरा जाइते, किवा हलो चिते, किछु मात्र ज्ञान नाइ ॥२६२
हइया व्याकुल, धरिनू अञ्चल, "कोथा जाह कारे दिया२६३
कि कहिले तुमि, ना वुझिनू आमि, भये कांपे मोर हिया ॥२६४
नहे परिचित, ना जानि चरित, तार काछे राखि मोरे ।२६५
यदि फेले जावे, कलङ्क हइवे, आरत ना निवे घरे ॥२६६

+रसाभास=रस भङ्ग ।

कार लागि वल, दुकूल निर्म्मल, त्यजि सव निज जन ।२६७
उनिजे सुजन, हृदय केमन, जानिया छि एइ त्वरा ॥२६८
चल घरे जाइ उठिनू दांडाइ, धरिनू सखीर गले ।२६९
कांधे मुख दिया, कांदि फुंकारिया, "किह'ल""किह'ल"वले ॥

तखन सखी कहितेछेन

ए कि गो सरले, कान्दिछ विकले, सुपात्रे संपिनू तोरे ।२७१
ये जन तोमार, चिर दिन जार, दुःख केन पेये तारे?॥२७२
धुइ आंखि जले, ओ पद कमले, केश दिया मुछाइवे ।२७३
यतन करिये, राखिवे हृदये, अङ्ग व्यथा नाहि दिवे ॥२७४
जाहा बासे भाल, मथिवे सकल, ताहाते उठिवे मधु ।२७५
सेइ मधु दिया, आदर करिया, तुषिवे आपन बन्धु ॥२७६
नव नव रागे, नूतन सोहागे, कत सुख वन्धु दिवे ।२७७
प्रेम सरोवरे, दुजने सांतारे, चिरकाल जुडाइवे ॥२७८
घिरिले आलिसे, रसेर वालिसे, यतने शोयाये वन्धु ।२७९
भुजेते वांधिया, मुखे मुख दिया, पिवे से कमल मधु ॥२८०
नयने नयन, करिया मिलन, निमिख हाराये रवे ।२८१
नयन सलिल, उठिवे उथलि, दुइ मुख भेसे जावे ॥२८२
कथा कहिवारे, जावे वारे वारे. कथा ना वाहिर हवे ।२८३
अन्तरे अन्तरे, झुरिवि निझोरे, चोखे चोखे कथा कवे ॥२८४
आंचल लइवि, वदन मुछावि, वन्धु मुछाइवे तोर" ।२८५
श्री गौर चन्द्रमा, करुणार सीमा, वलराम चित्त चोर ॥२८६

* * *

सखीगण फेले गेल वसिनू तरासे ।२८७
लज्जाय नमित मुख झांपि लाम वासे ॥२८८
जाइ कि ना जाइ इहा भाविते भाविते ।२८९
अमृतेर धार तथा पाइनू शुनिते ॥२९०

तखन नागर

माथा हेंटे करि, कहे धीरि धीरि, नवीना बालिका शुन ।२९१
हृदय देखेछे, कठिन जेनेछे, तवे ना फिरिले केन ? ॥२९२
कार कथा शुने, फेर वृन्दावने, जान ना ए देवस्थान ? ।२९३
ए खाने भ्रमिले, ज्ञान नाय टले, शुनिया वांशीर गान ? ॥२९४
कि वलिल तोरे, माला गांथिवारे, गांथिलि कइहार तरे ।२९५
श्रीं हस्ते गांथिले, तारे समर्पिले, से केमने त्याग करे ॥२९६
ताहार प्रसाद, करिलि आस्वाद, स्वेच्छाय परिलि माला२९७
कि वलिलतोरे, माला परिवारे, एवे कांदे केन वाला ?२९८
शून्य तुइ हृदय, आवर्ज्जना नाइ, ताइ देखि वन देवे ॥२९९
शून्य घर पेये, प्रवेशिल गिये, केन से बाहर हवे ? ३००
कात्यायनी ठांइ, कान्द उभराय, मा तोके दिलेन वर ॥३०१
पिरीति मागिलि, पिरीति पाइलि, एवे केन राग कर ?३०२
सरल देखिये, मन उघाडिये, कहिव सरल कथा ।३०३
आमारे भजिवि, केवल कांदिवि, पदे पदे पावि व्यथा ॥ ३०४
विपिने वेडाइ, माया गन्ध नाइ, चिर दिन स्वेच्छामय ॥३०५
तोरे एका फेलि, जाव सदा चलि, खूंजिले ना पावि मोय ।३०६
ए घोर अटवी,, एकाकी रहिवि, विपदे डाकिवि पडि ॥३०७

यदि डाक शुनि, आसिव तखनि, प्रतिज्ञा करिते नारि ।३०८
प्रेमेते मजिवि, भस्मे घी ढालिवि, प्रयासे मरिवि तुइ ॥३०९
धन जन करि, किछू दिते नारि, दीन आमि धन नाइ ।३१०
वसन भूषण, तोमार तोषण, हवे ना कङ्गाल हते ॥३११
मोर क्षुधा पेले, किछू खेते चेले. हवे मोर हाते दिते ।'३१२
करुणार स्वरे, कहिछे नागरे, अधिक वाडिल माया ॥३१३
घाड हेंटे रहि, कथा नाहि'कहि, विदरिया जाय हिया ।३१४

तखन आमि

घोमटो आडाले, प्रिय देखि छले प्रिय ना देखिल मोरे ॥३१५
देखिनू वन्धूर, वदन मधुर, इन्दु मुखे सुधा झरे ॥३१६
ए वस्तु आमार, आमि त ताहार, आमि तार किसे मोर ।३१७
मन आर प्राणे, जीवने मरणे, सुखे दुःखे आमि ओर॥३१८

० ० ०

पुन कहे मोरे, करुणार स्वरे, 'आर किछु वलि शुन।'३१९
कहिवारे गेल, नीरव हइल, के वा जाने तार मन॥३२०
कहे धीरे धीरे, भाल वासि मोरे, जाहा दिव मोर करे ।३२१
ग्रहण करिव, आनन्दे भुंजिव. साधुवाद दिव तोरे ॥३२२
मोर एक गुण, आछे वाला शुन कहिव सरल हिये ।३२३
क्रोध मोर चित्त, ना पावे देखिते, शान्त स्निग्ध मोर हिये॥३२४
दुःख कभू पावे, यदि गालि दिवे, ताते मोर दुःख नाइ ।३२५
करि अपराध, मागिव प्रसाद, धरिव तोमार पाय ॥३२६
आड चोखे देखि. छल छल आंखि, कत भाव खेले मने ।३२७

उत्तर शुनिते. अति व्यग्र चित्त, चाहिल आमार पाने ॥३२८
कि दिव उत्तर, लज्जाय कातर, नाना भावे मन क्लान्त ।३२९
तार कथा शुने, नमित वदने, कान्दिलाम अविश्रान्त ॥३३०
किछू धैर्य धरि, कहि धीरि धीरि, तुमि जग मनोहर ।३३१
रूपे आर गुणे, मधुर चवने, अवलारे प्राणे मार ॥३३२
क्षमा उपकार, स्वभाव तोमार, शास्त्रेते शुनिते पाइ ।३३३
सत्य कह मोरे, वञ्चो ना आमारे, माया कि तोमार नाइ?३३४
एइ कथा वलि, मुखखानि तुलि, वदन कमले चाहि ।३३५
आमार से क्षण, वडइ विषम, लज्जा भय किछु नाहि॥३३६
मूं पाने चाहिल. हासिया कहिल, तुमि ताके जान नाहि?३३७
निर्मोह निर्गुण, माया गन्ध शून्य, शास्त्रेते वाखाने मोहे ॥३३८
ये कथा शुनिये, मर्माहत हये, लज्जा कुण्ठा तेयागिये ।३३९
कर जोड करि, दीन भाव धरि, क्लेश कहि. मुख चेये ॥३४०
वनदेव शुन, वांचन मरण, समान हइल एवे ॥३४१
तुमा काछे वर, मागि वनेश्वर, चाहिले कि आमा दिवे?३४२
गुण रूपामृत, पिनू अविरत, पर्श सुख करि नाइ ।।३४३
तुया वाम कर, देह एक वार, परशि मरिया जाइ" ।३४४
ए कथा वलिया, हाथ वाडाइल, दु करे लइनू कर ॥३४५
दुइ कर माझे, श्री कर विराजे, कांपे अङ्ग थर थर ।३४६
चापि अल्पमात्र, पुलकित गात्र, त्रिभुवन सुखमय ॥३४७
पुन कर लइ, कपोले छोयाइ, जुडाइल तापत्रय ।३४८
कोमल शीतल, राङ्गा करतल, नासाय लइनू घ्राण ॥३४९

दूर गन्धे जार, भृङ्ग मातोयार, मोर विगलित प्राण ।३५०
सुख आस्वादिया, विभोर हइया, कहिलाम जोड करे ॥३५१
"मागिछि विदाय, घरे आमि जाइ, किवा आमि जाइ मरे।३५२
तोमारे भजिव, तोमा ना पाइव, माया शून्य तुमि प्रभु ।३५३
युगे युगे यदि, सेवि निरवधि, ना हवे सम्वन्ध तवू ॥३५४
आमार जे प्रेमा, ना छुइवे तोमा, तुया माया गन्ध नाइ ।३४५
आमार सम्वल, पिरीति केवल, शक्तिहीन तोमा ठांइ॥ ३५६
ए मन सुन्दरे, गुणेर सागरे, हृदय थाकित यदि ।३५७
युग युग युग, ओइ पद युग, पूजिताम निरवधि ॥३५८
ए कथा वलिया, रहिनू चाहिया, उत्तान नयन तारा ।३५९
आशा फुराइल, अङ्ग एलाइल, मुरछि पडिनू धरा ॥३६०

* * *

हेन अचेतन, छिनू कत क्षण, किछु त नाहक जानि ।३६१
शीतल शय्याये, येन आछि शुये, मधुर सङ्गीत शुनि ॥३६२
अर्ध वाह्य मत, नयन मुदित, संगीत शुनि जे काने ।३६३
पुलकित अंग, प्रेमेर तरंग, उठितेछे क्षणे क्षणे ॥३६४

\+ × ×

रागिनी सूरट

निठुर कठिन निपट किसे नटवर ।ध्रु० ३६५
काहे जग माझे, माधुर्य्य विराजे, काहे रसेर पाथार ॥३६६
गाढ़ आलिंगन, वदन चुम्वन, ये कैल मानुषे दान ।३६७
प्रेम डोर दिल, आर आंखि जल, से कि निठुर आमार कान?॥

मधु हासि मुखे, लज्जा अवलोके, ये दिश सतींर धर्म्म ।३६९
विन्दु प्रेम पेये, कहिछे वला'ये, कि जानिवे तार मर्म्म ॥३७०

❀ × ❀

सुस्वरे गाइछे, घिरिया नाचिछे, नूपुर वाजिछे पाय ।३७१
नयन मेलिनू, देखिवारे पानु, वहुदेव नारी गाय ॥३७२
कुसुम शय्याये, आमि आछि शुये, वन्धुया दक्षिण पाशे ।३७३
प्रसन्न वदन, से प्रेम नयन, मोर पाने चाहि' आछे ३७४
से दृष्टि देखिया, द्रवि गैल हिया, वन्धु वोले धीरे धीरे ।३७५
"वहुक्षण आछि, विदाय मागिछि, कृपाय भूल ना मोरें ॥३७६
आमारे खुंजिया, कान्दिया भ्रमिया, पाइयाछ प्रिये दुःख ।३७७
दुर्लभ ना हले, चाहिले मिलिले, मिलने नाहिक सुख" ॥३७८
ए वोल वलिल, कपाल चुम्बिल, नयने वहिल जल ।३७९
नयन मुछिया, चलिल धाइया, रसे तनु टलमल ॥३८०
दाडाओ दाडाओ, मुख फिरि चाओ, डाकि वाहु प्रसारिया ।३८१
"आर ना वलिव, आर ना भाविव, तोमार कठिन हिया ॥३८२
तिष्ठ प्राणनाथ, जाव तव साथ, आमार पराण तुमि ।३८३
पराण लइया, जाइछ फेलिया, तुमि हे आमार स्वामी ।३८४
अवोधिनी आमि, फेले जाओ तुमि, क्रोध करि आमा प्रति ।३८५
जीवनेर नाथ, क्षम अपराध" वलराम करे स्तुति ॥३८६

सजल नयना

(मधुर)

पञ्चम सखीर काहिनी

श्री नन्द नन्दने, भजिनू कि क्षणे, कान्दि कान्दि कान्दि मनू।
तार दुःख देखि, मोर दुःख सखि, सकलि भुलिया गेनू ।।२
कदम्ब कानने, वसिया निर्जने, वाम करे मुख राखि ।३
नयन झुरिछे, वदन भासिछे, अरुण वरण आंखि ।।४
रस भंग भये, धीरे धीरे गये, सन्मुखे दाडानू सखि ।५
सहिते नारिया, चञ्चल हइया, मुछिनू वन्धुर आंखि ।।६
आमारे देखिया, सलाजे चाहिया, वन्धुया नामाल मुख ।७
मलिन वदन, नीरव 'क्रन्दन, देखिया विदरे बुक ।।८
व्याकुल हइये, शिरे हात दिये, कहि "शुन चन्द्रमुख ।९
हे प्राणवल्लभ, एकि असम्भव, तोमार किसेर दुःख ?।।१०
तापित हइले, तोमारे डाकिले, हृदय जुडाये जाय ।११
दुःखेर सागरे, डाकिले कातरे, आनन्दे भासाओ ताय"।।१२
नीरव रहिल, आंखि छल छल, के वा जाने तार दुःख ।१३
शुष्क मुख इन्दु, चखे वहे विन्दु, नव नव भाव मुखे ।।१४
कथा ना कहिल, झुरिते लागिल, इहा सहे कार प्राणे ।१५
ये प्राणवल्लभ, आनन्दे राखिव, कान्दे से विषण्ण मने।।१६
आनन्देर खनि, मोर गुणमणि, हृदय सुखेर सिन्धु ।१७
निज दुःख कथा, कहि दिइ व्यथा, ताइ कि कान्दिछे वन्धु?१८

दुःख ना कहिव, आर ना कान्दिव, आर ना मागिव सुख ।१६
वलिनु,मागि जुडिहात "वल प्राणनाथ, किसे घुचे तव दुःख ॥२०

रागिनी लुम

पडे वांशी मुख शशी मलिन बन्धुया केने तोर ।२१
कि अपराध कैलाम आमि आंखि वारि देखाओ तुमि ॥२२
शुखायेछे मुखचांद, तुमि कार लागि कांद ।२३
ओष्ठ कांपे थर थर, रांगा आंखि झर झर ॥२४
तोमार नयने जल, कि हयेछे वल वल ।२५
वलाइ वलिते नारे, श्याम चांद केन झुरे ॥२६

*　　❀　　❀

तखन चाइ मोर पाने, गेल कहिवारे, भावे कण्ठरोध तार ।२७
कमल नयन, तारा डुवु डुवु, मुखे वहे शत धार ॥२८

तखन कहिलाम

"वल वल वल, कि वलितेछिले, तोमार चरण धरि ।२६
तुया हिया व्यथा, वांटिया लइव, कान्दिव जीवन भरि ॥३०
नयनेर जले, पाखालि चरण, तव हिया जुडाइव ।३१
करुणार जले, दुजना डुविव, दुःख ना आसिते दिव" ॥३२
पुन मुख तुलि, कहे धीरि धीरि, "कि पूछिसि चन्द्रमुखी ३३
दुःखेर काहिनी, वलिते ना जानि, दुःख सदा शुने थाकि ॥३४
मोर दुःख कथा, तुहारे कहिव, पुडिया मरिवे तुमि ।३५
तोर दुःखे मोर, आरो दुख हवे, सहिते नारिव आमि" ॥३६

आमि कहिलाम

ए किं प्राणेश्वर, कह असम्भव, पाखाने गडिछे मोरे ।३७
दुःखे नाहि टले, ना पोडे ना गले, वल तुमि अकातरे ॥३८
तोमार हइये, तोमा उपेखिये, निज सुख लागि घुरि ।३९
आपनार दुःखे, वडइ कातर, प्रेम दम्भ मिछा करि ॥४०
वेले प्राणनाथ, "शुन प्राणप्रिये, वदन घामिछे मोर ।४१
आंचल लइया, वातास करह, मुख-देखि आमि तोर" ॥४२

+ + +

मधुर वचन, मधुर वदन, मधुर चरित स्वामी ।४३
वल हे सजनि, केमने वन्धूर, ऋण शोध दिव आमि ? ॥४४

※ ※ ※

कातर हइया, कहिनू चरणे, "शुन शुन प्राणेश्वर ! ।४५
किसेर लागिया, आमारे भजहे, कि लागिया स्नेह कर ॥४६
दिवा निशि मोर, चिन्तह मङ्गल, अपराध नाहि लह ।४७
आमि दुःख भार, तोमार ऊपर, केन तुमि एत सह ॥४८
तोमार अभाव, किछु त देखि ना, थाकिते पुराते नारि ।४९
केमने भजिव, केमने तुषिव, सेइ भेवे भेवे मरि॥ "॥५०
वले प्राणनाथ, शुन प्राणप्रिये मलिन मुखेते हासि ।५१
वन्धूर वदन, वोध हलो येन, कुयाढ़ाका पूर्ण शशी ॥५२

वन्धु कहिलेन

"जननी सन्ताने, कि लागिया भजे, केन तार एत सहे ।५३
अन्ध कि वधिर, अवाध्य अस्थिर, कि लागिया पाले ताहे॥५४

एक विन्दु स्नेह, हृदये आछये, ताहे अकारने भजे।५५
वल प्राणप्रिया, एइ स्नेह विन्दु, के दिल से हिया मा ?५६
सेइ स्नेह विन्दु, आमार आछये, नतु वा केमने दिनू।५७
ताइ प्राणप्रिया; अकारणे भजि, निगूढ तुहारे कनू॥५८
एइ जग माझे, दयावान आछे, अन्य लागि प्राण देय।५९
आमि दिनू दया, तवे से पेयेछे, अकारणे भजि ताय।६०
मोर जने आछे, आमार ता नाइ, एमन हइते नारे।६१
मोर जन हते, यदि छोट हइ, कि वलिवे प्रिया मोरे? ६२
भक्ते वासि भाल, नाना गुण दिल, एवे मन्द हते नारि।६३
यदि मन्द हय, मर्म्माहत हये, भक्तगण जावे मरि" ॥६४
मधुर वदन, मधुर वचन, छल छल दुटि आंखि।६५
प्राण वन्धु भृण, केमने शोधिव, वल मोरे प्रिय सखि॥६६

तखन कहिलाम

"आमारे वञ्चिले, किछु ना कहिले, कान्द तुमि कि लागिया।६७
वदन चन्द्रमा, केन वा मलिन, केन कान्दे मोर हिया" ॥६८

निद्रा

वीजन करिते, वन्धुर ढुल ढुल आंखि।६९
आंचल पातिया, धीरि शोयालाम सखि॥७०
उरू पर शिर राखि, यतन करिया।७१
कान्दि परिश्रान्त, वन्धु पडे घुमाइया॥७२
धीरे धीरे वांधा, चूड़ा एलाइया दिनू।७३
वाम हाते केश सेवा, करिते लागिनू॥७४

दक्षिया करेते, वायु करिते वीजन ।७५
मन्द हास चन्द्रमुख, मुदित नयन ॥७६
अवनत मुखे देखि, सो चांद वदन ।७७
देखिव कि सखि, मोर सजल नयन ।।७८
कखन मलिन मुख, कखन सहास ।७६
हियार तरङ्ग, मुख कमले प्रकाश ॥८०
चमकिया उठे वन्धु, नयन मेलिला ।८१
सप्रेम आमारे चाहि, नयन मुदिला ॥८२
नयन मुदिया वन्धु कहे धीरे धीरे ।८३
मुखे कान दिन्नु, किवा सुगन्ध अधरे ॥८४

वलिलेन

"सुस्वरेते वाशइया सुरे गीत गेये ।८५
तापित आमार प्राण दाओ जुडाइये ॥८६
चमकि चमकि उठि नारि घुमाइते ।८७
घुमाइव तुया गान शुनिते शुनिते ॥"८८
वंधूर आदेश ताइ सलाज वदने ।८६
अवनत हये रहिलाम कत क्षणे ॥६०
सखी सने मिले गीत शुनाइया थाकि ।६१
कभू वन्धु आगे गीत गाइनि एकाकि ।।६२
आंचले झांपिया मुख हेंटे करि ।६३
गाइते ना पारि गीत कांपि थरथरि ॥६४
करुणा स्वरेते गाइ हिया उघाडिया ।६५

आंखि नीरे वन्धु-मुख चलिल भासिया ॥९६

रागिनो वरोया

कि दिये तुषिव तोमाय, सुन्दर वदन काला चांद ।९७
चिर दिन गीत गाइ गुन अगनन कान्ना चांद ॥९८
कोथाय कि पाव, आमि कुलबाला काला चांद ।९९
यतने गांथिया दिव तोर माला काला चांद ॥१००

तखन

सप्रेम नयने, तारा डुवू डुवू, चाहिल आमार पाने ।१०१
से भाव देखिया, उठिनू कांपियां ढ्ले पडि सेइ खाने ॥१०२
चेतन पाइया, नयन मेलिया, देखि शुये वन्धु कोले ।१०३
श्री कर-कमल, अङ्गे वुलाइते, चाहिया आमार पाने ॥१०४

× + ÷

उठिवारे चाहि, मन नाहि सरे, वन्धु कोल वड मधू ।१०५
सौरभ लावण्य, पिये नासा मन, आंखि पिये मधु इन्दु ॥१०६
वन्धु कहे "प्रिये, थाकह शुइये, एइ त तोमार स्थान ।१०७
ए अङ्ग आमार, संपिछे तोमार, मोरे केन भाव आन १०८
तुमि अवोधिनी, सदाइ कुण्ठित, 'पाछे आमि राग करि' १०९
दीनतार खनि, सुधांशुवदनि, भये कांपे थरथरि ॥११०
ननीर पुतलि, आमार पालित, आमि दुःख दिव तोरे १११
अनर्थ भाविया, कांदिया कांदिया, चीया तोर कलेवरे ॥११२
कांदिया कांदिया, छुरिका हानिया, दुःख देह तुमि मोरे ।११३
अवोध अवला, कथा त शुन ना, कि करिते पारि तोरे ॥११४

तखन

तुरित उठिया, गले वस्त्र दिया, चरणे पडिनू सखि ।११५
"शुन प्राणेश्वर, भक्ति' देह वर, तुया पाय वर मागि ॥११६
कोलेते शुइया, सो यास्ति ना पाइ, ए कि दशा हलो मोर ।११७
आनन्दे डारिले, भक्ति नाहि दिले, ए कि रङ्ग प्राणेश्वर ॥११८
जीवन यौवन, करेछे अर्पण, विना मूले तुया पाय ।११९
तुया दुःखे दुःख, तुया सुखे सुख, नारीर धरम हय ॥१२०
आमित आपनि, केह नाहि जानि, सकलि तोमारि हय ।१२१
दुःख दुःख वलि, कांदिया आकुलि, वल मोरे सदुपाय" ॥१२२

* * *

भोजन

ईषत् हासिया वन्धु भुलाले आमाय ।१२३
"किछु खेते देह प्रिये ज्वलिछे क्षुधाय" ॥१२४
वन्धु कथा शुने आमि सव भूले गेनू ।१२५
वन माझे कोथा, पाव भाविते लागिनू ॥१२६
सरल वन्धुया मोर किछु नाहि जाने ।१२७
खेते देह वले आछे आपनेर मने ॥१२८
आमि जे अवला नारी क्षमता विहीन ।१२९
वन्धु नाहि भावे ए जे गहन विपिन ॥१३०
आसि वलि ताडाताडि वन माझे गेनू ।१३१
कि आनिव कोथा पाव भाविते लागिनू ॥१३२
सन्मुखेते सहकार तरु एक देखि ।१३३

आंचल पातिया तले वसिलाम सखि ॥१३४
वलिलाम, वन्धु मोर क्षुधाय कातर ।१३५
दासी भिक्षा मागे तुया काछे तरुवर ॥१३६
अमनि से तरुवर फल वान हलो ।१३७
आंचल पूरिया मोरे मिष्ट फल दिल ॥१३८
आनन्देते डगमग यमुनाय गेनू ।१३९
धुइ पद्मपात्रे करि वन्धु आगे आनू ॥१४०
रसाल देखिया वन्धु सहास्य वदन ।१४१
"धन्य धन्य प्राणप्रिया तोमार यतन ॥१४२
एस वसो दुइ जने करिव आहार" ।१४३
आमि वलि "प्रसाद थाकिवे से आमार' ॥१४४
वन्धु वले "एस दुइ जने वसे खाव" ।१४५
आमि वलि "क्षमा दाओ ताहा ना परिव ॥१४६
वन्धुले "प्राणप्रिये चाकि देख तुमि ।१४७
यदि मिष्ट हय परे खाव आमि' ॥१४८
खोसा फेलि चाकि देखि सुमिष्ट लागिल ।१४९
तुलि दिनू सेइ फल श्री कर कमले ॥१५०
मुखे दिया वन्धु वले "अपूर्व ए फल ।१५१
धर प्राणप्रिये खाओ हइवे शीतल" ॥१५२
दु'कर जुडिया फल करेते लइया ।१५३
प्रसाद पेलेम वृक्ष आडालेते गिया ।१५४

वन्धु वलिले

"संग्रह करिया फल, खाओ याले आमाय ।१५५
कृतार्थ हलेम प्रिये तोमार सेवाय ॥"१५६
शुनिया वन्धूर कथा, मनेते पाइनू व्यथा, वलिलाम गद् गद् हये१५७
"कि दिव तोमारे आमि, आमि नारी तुमि स्वामी ।
तुया सेवि तुया धन दिये ॥१५८
तुमि भरण पोषण, तुमि लज्जा निवारण, सतीर धरम रक्षा कारी ।
ना जानि सेविते स्वामी, अवोध दुर्मति आमि, सेइ दुःखे केंदे मरि"॥

तखन

श्री कर कमल, दिया मम मुख आवरिया,
वले, "प्रिये केन देह व्यथा ॥१६१
आमारे करह स्तुति, आमि लज्जा पाइ अति,
प्रेम डोरे तुमि आमि गाथा" ॥१६२
वाहु धरि उठाइल वले, "वन माझे चल,"
वामे करि लइया चलिल ।१६३
हेलि दुलि चलि जाय, नूपुर वाजेछे पाय ।
अङ्ग गन्धे विपिन भरिल ॥१६४

वनविहार

अङ्गगन्धे माति, भृङ्ग यूथे यूथे, घेरल वन्धुरे आसि ।१६५
तुया गन्ध पेये, भ्रमर मातिल, वले वन्धु हासि हासि॥१६६
कान पाति शुनि, भ्रमरेर रव, वुझि वन्धु गुण गाय ।१६७
वृक्षेर तलाय, बन्धुया दाडाय, वृक्ष कुसुमित ताय ॥१६८

पुष्प मधु झरे, प्राण वन्धु शिरे, प्रेमे वृक्ष पाने चाय ।१६९
वृक्ष डाले बसि, पिक शुक सारी, काला चांद गुण गाय ॥१७०
सप्रेम नयने, तादेर देखिले, पुलकित पक्षी कुल ॥१७१
श्री कर पातिल, कुसुम पडिल, आचले बाँधिया दिल ।१७२
कुरङ्ग मयूर, युगल हइया, मिलल वंधुरे त्वरा ॥१७३
कतइ पिरीति, तादेर सहित, येन चिर वन्धु तारा ।१७४
तारा कि वा बले, वन्धु कि वा कन, से भाषा जानि ना सखी॥१७५
सवारे पाइया, आनन्दे भाषिछे, झरिछे वन्धूर आंखि ॥१७६
लवंगेर लता, श्री करे धरिया, शुंकिछे लवङ्ग फूल ॥१७७
वले प्राणप्रिया, लवंग लता, मजाइल जाति कुल ।१७८
काहारे चुम्बन, काहारे आलिंगन, काहार माथाय हाथ ॥१७९
जने जने वने, करि सम्भाषण, चले मोर प्राणनाथ ।१८०
सवार सुहृद्, सवे वाञ्छे हित, पिरीति सवार सने ।१८१
सकलेर प्राण, नयन आनन्द, कि मोहन मन्त्र जाने ।१८२
वृक्षेर तलाय, नव पत्र एक, देखिया विरस मुख ॥१८३
वले, नूतन पाताटि, छिंडिया फेलिया, पाइल से के वा सुख।१८४
मन्द वायु वहे, चूडे फूल नडे, जूडाते वकुल फूल ॥१८५
वले हे सजनि, साधे कि दुःखिनी, त्यजिल संसार कुल ?१८६
उच्च डाल धरि, अवनत करि, वले 'प्रिया फूल शूंक ॥'१८७
विभोर हइया, थमकि दाडाइया, सुखे देखि वन्धु मुख ।१८८

वन्धु वलितेछेन

कि देख मोहिनी, काल मुख खानि, प्रेम अन्ध आंखि तोर ।१८९

तो हेन सुन्दरि, वास एत भालो, एइ वड भाग्य मोर ॥१६०
माधवि निकुञ्ज, उपरे कुसुम, लताते शीतल छाया ।१६१
दुहुगिया वसि, हेरि तोर मुख, जुडाइ तापित हिया ॥१६२
वामे वसाइल, अङ्ग परशिल, मुखे कांपि थर थर ।१६३
मुख पाने चेये, गदगद हये, गीत गाय प्राणेश्वर ॥१६४

रागिनी सिन्धु

प्रेम सरोवरे, सोनार कमल, प्रिये तुमि आमारि ।१६५
नयन भरिया हेरि, ओ रूप माधुरि ।१६६
मधु भरे टल मल, वहे प्रेमेर हिल्लोल ॥१६७
उठाइले प्रेम पाथार, डुबिनू ना जानि सांतार ।१६८
तुमि आमार चिर दिन, आमि तोमारि ॥१६६

तखन आमि

आगे दाडाइनू, दुइ कर जुडि, गलाय बसन दिया ।२००

वलिलाम

छिलाम गम्भीर, लज्जाशीला वाला, निवे जाओ भासाइया २०१
लज्जा ज्ञान गेल, येन मातोयाल, दिग् विदिग् नाहि जानि ॥२०२
सत्य कि आमारे, एत भाल वास ?, केन ताहा कह सुनि ।२०३
कि दिये तोमारे, तुषिवारे पारि, ना तुषिले दण्ड कि वा ॥२०४
एवे स्नेह कर, ए स्नेह कि रवे, किवा परे फूले दिवा ?२०५
नयनेर जल, देखाले आमारे, विस्मित हइनु आमि ॥२०६
तुमि कान्द केन, येन दीन हीन, तुमि त्रिजगत स्वामी ।२०७

नागर गदगद हइया वलितेछेन
शुन प्रिये कहि मनोव्यथा ॥ ध्रु०२०८
कहिवारे लज्जा पाइ, बार बार बल'ताइ ।२०९
लज्जा खेये कहि निज कथा ॥२१०
निर्गुण मुइ, ज्ञानातीत लोके जाने ।२११
तबू कान्दे मोर लागि, हइयाछे सर्व्वत्यागी ॥२१२
ताइ आमि कान्दि तोर सने ।२१३
यदि मोर नाम सुन प्रिये ॥२१४
कांदिया उठह प्रेमे, धारा वहे दुनयने ।२१५
आमि स्थिर थाकि कि करिये ?॥२१६
दुःख पाओ भवेर माझारे ।२१७
मोर दोष नाहि दाओ, सब दोष शिरेलओ ॥२१८
ताइ कान्दि तोर भक्ति हेरे ।२१९
कत दुःख दिया थाकि आमि ॥२२०
आमि ठेलि तोरे पाये. आरो काछे एस धेये ।२२१
अदोषदरशि प्रिया तुमि ॥२२२
दिवा निशि कान्द मोर लागि ।२२३
देखि तोर आंखि वारि, स्थिर थाकि वारे नारि ॥२२४
कांदि हइ तोर दुःखभागी ।२२५
ताइ प्रिया॰ वसिया विरले ॥२२६
भावि तोर रूप गुण, शोधि वारे नारे ऋण ।२२७
अंग स्निग्ध करि आंखि जले ।।२२८

नागर आवार वलितेछेन

"पिरीति जे खाने, सेथा आंखि वारि ।२२९
सेइ जले वाडे, पिरीति अंकुरि ॥२३०
मोर मत जवे, पिरीते मजिवि ।२३१
तुइ दिवानिशि, एमनि कांदिवि । २३२
नयनेर जल, जाह्नवी यमुना ।२३३
स्नान कैले आर, त्रिताप थाके ना ॥२३४
'प्रिया दुःखे कान्दे, मोर कान्दे हिया ।२३५
परान जुडाइ, निभृते कान्दिया" ॥२३६
इहा वलि वन्धु, ना जानि कारण ।२३७
अकस्मात् मोरे, हलेन अदर्शन ॥२३८
वन्धु अदर्शने, पडि भूमि तले ।२३९
तोमरा आसिया, मोरे चेताइले ॥२४०

सकल रमणीर सहित साधूर मिलन प्रेम

निकुञ्जे वसिया, सेइ सव नारी ।१
सकले कालार, पीरिति भिखारी ॥२

*   *   *

हेन काले सेइ, पथे चले जाय, महा साधु तपधारी ।३
कोपीन परेछे, माथा मुडायेछे, अङ्गे लेखा, "कृष्ण हरि" ॥४
निकुञ्ज तलाय, देखे सव वाला, रूपेते करेछे आल ।५
वदन कमल, सरल निर्म्मल, प्रेमे आंखि टल मल ॥६
साधुरे देखिल, सकले उठिल, प्रणमिल तार पाये ।७
वले "कृष्णधन, हारायेछाइ विपिने, वल पाव कि उपाये" ॥८
तादेर वदन, करि निरीक्षण, साधु आंखि छल छल ।९
वलिछे दुःखेते, शुन "अवोधिनी, कृष्ण कोथा पाव वल ॥१०
सहस्र वत्सर, तपस्या करिया, ध्याने नाहि मिले जारे ।११
निकुञ्जे वसिया, कुसुम गांथिया, किसे पावि तोरा तारे ?" १

कुलकामिनी वलितेछेन

"कृष्ण हेन धन, अमनि ना मिले, ताहा मोरा वेश जानि ।१३
जा तुमि वलिव, सकलि करिव, कृष्ण लागि दिव प्राण" १४

साधु कहितेछेन

"उपवास करि, शरीर शुखाओ, तवे कृष्ण कृपा पावे ।१५
कृष्णेर करुणा, क्रमे वाडि जावे, यत देह क्षीण हवे" ॥१६

अवाक् हइया, यत नव वाला, मुख चाहा चाहि करे ।१७
मोरा दुःख पाव, कृष्ण सुखी हवे, एत कभू हते नारे ॥१८
दुःखेर काहिनी, शुनिलेइ तिनि, कान्दि हन आत्महारा ।१९
दुःख मोरा निव, तारे कान्दाइव, ए भजन केमन धारा ?" ॥२०

× × ×

साधु हासिया कहितेछेन

केशेर ममता, घुचावते हवे, मुडाइते हवे माथा ।२१
तुलसि तलाँते, मस्तक कुटिले, तुष्ट हवे कृष्ण पिता ॥२२

* * *

चमकि शुनिया, मुख चाहाचाहि, करे सव नव वाला ।२३
ये रसरङ्गिनी वले, साधु शुन, ए कि कथा शुनाइला ॥२४
केश घुचाइव, वेनी ना वाँधिव, कोथा गुंजि थोप चांपा ।२५
माल तोर माला, चिकन गांथिया, केमने वेडिव खोंपा॥२६
से भङ्गिम वेणी, रसिकशेखर, देखि यत सुख पावे ।२७
तार मन जानि, रसे यत सुख, उपवासे ता ना हवे ॥२८

काङ्गाली कहितेछेन

"राङ्गा पद धुइ, नयनेर जले, मुछाइया थाकि केशे ।२९
केश मुडाइव, वन्धुपद धुये, मुछाइव वल किसे ?"॥३०

कुलकामिनी कहितेछेन

"योग याग करि, तारे भुलाइव, सेत मोर पर नय ।३१
स्नेह सेवा करि, ताहारे तुषिव, से जे मोर स्वामी हय" ॥३२

प्रेमतरङ्गिनी कहितेछेन

विरहे तखन, वड दुःख पाइ, केश एलाइया देखि ।३३
सेइ केश मोर, कृष्णेरे स्मराय, मुडाते नारिव सखि" ॥३४

सजल नयना कहितेछेन

"केश मुडाइया, कौपीन परिया, धरिले दुःखिनी वेश ।३५
कांदिया आकुल, हवे काला चांद, आमि तारे जानि वेश" ॥३६

रस रङ्गिनी कहितेछेन

"शुन साधु शुन, सन्देह हतेछे, तुमि कृष्ण वले कारे ।३७
सेइ कृष्णाइ वाके, तोमार सहित, किवा से सम्वन्ध धरे ॥३८

साधु कहितेछेन

"शुन अवोधिनी, कृष्ण नहे दुइ, तिनि हन सर्व्वेश्वर ।३९
तुषिले सम्पद, रुषिले विपद, सवा परे दण्डधर ॥४०
ताहारे तुषिते, कत दुःख पाइ, तवू ना तुषिते पारि ।४१
नियम ताहार, पाछे भङ्ग हय, एइ भये भेवे मरि" ॥४२

* * *

साधूर वचने, प्रफुल्ल वदन ।४३
विनये सकले, कहिछे तखन ॥४४
"तोमार वचने, प्राण गियाछिल ।४५
एखन वुझिनू, पराण आइल ॥४६
यार कथा पुनि, कहिले एखन ।४७
तिनि यिनि होन, प्राणनाथ तन ॥४८
आमादेर पति, श्रीकृष्ण जे हन ।४९

दण्डधारी किंवा, वरदाता नन ॥५०
मोरा निज जन, तार परिवार ।५१
सकलि मोदेर, यत किछु तार ॥५२
तार काछे चाव, कि वा कारणेते ।५३
भाण्डारेर चावि, आमादेर हाथे॥५४
दण्ड कथा शुने, भय लागे मने ।५५
मोरा सब तांर, दण्ड दिवे केने॥५६
यदि अत्याचार, करि रोग हय ।५७
निज जने तिक्त, औषध खाओ याय ॥५८
कखन वा त्रणे, छूरिका हानय ।५९
के वा वल तारे, दण्ड वलि कय?॥६०
केवल मङ्गल, सेइ प्राणनाथ ।६१
कत करि तांर, उपरे उत्पात॥६२
निज जने यदि, ना करे शासन।६३
तवे बल आर, करे कोन जन ॥६४
स्नेहे यदि दण्ड, करे प्राणनाथ ।६५
दण्ड से तनय, परम प्रसाद ॥६६

आर ओ शुन

तोमरा पुरुष, राजसभा जा ह।६७
स्वार्थेर लागिया, तारे कर देह ॥६८
आमादेर कर, यदि दिते हय ।६९
आमादेर पति. दिवेन निश्चय॥७०

कि वा करे दण्ड, कि वा पुरस्कार ।७१
पति जाने, ताते नाहि अधिकार ॥७२
यदि काज थाके, से राजार सुने ।७३
आमरा रमनी, प्राणनाथ जाने ॥७४
आमादेर दाय, बन्धुरे दियाछि ।७५
देह प्राण मन, से पदे संपेछि ॥७६
सेइ कृष्ण राजा, सेविते नारिव ।७७
राजसभा गेले, भयेते मरिव ॥७८
पुरस्कार लागि, राजा काछे जाव।७९
सरला रमणी, नाहि जानि स्तव॥८०
तुमि साधु ऋषि, कि वा हओ तुमि ।८१
तोमरा चरणे, कि वलिते जानि॥८२
आमरा संसारी, पति घर करि ।८३
संसार वाहिरे, जाइ वारे नारि ॥८४
कृष्ण प्राणनाथ, गियाछे छाड़िया।८५
वेडाइ ताहारे, विपिने खुंजिया ॥८६
एइ वन माझे, लुकाइ थाके ।८७
कह कृपा करि, देखेछ कि तांके ?८८

तखन

वाला गणे देखि, निर्म्मल सरल ।८९
साधूर आइल, नयनेते जल ॥९०
वले, "वालागण, करि निवेदन ।९१

भालो नाहि वुझि, तोदेर वचन ॥९२
तोमादेर पति, कि वा तार रूप ।९३
वुझाइया वल, कि तार स्वरूप ॥९४
ए कथा शुनिया, यत सखीगण ।९५
आनन्दे मगन, प्रफुल्ल वदन ॥९६

रसरङ्गिनी कहितेछेन

"कमल नयन, सु चांद वदन, मोर पति वनमाली" ।९७
"सेइ सेइ सेइ; मजाइल कुल" सवे देय कर ताली ॥९८
"शुन साधु शुन, अगनन गुण, केमने वलिव ताय ।९९
"कृतार्थ करिले" वलि काङ्गालिनी, धरे रङ्गिनीर पाय ॥१००
सजल नयना, गुण कहि वारे, कण्ठरोध हलो तार ।१०१
प्रेमतरङ्गिनी, धरिया ताहारे, चुम्वे मुख वारंवार ॥१०२
कुल वालाउठि, वले "सखि शुन, एक वार नृत्य करि ।१०३
ताहारा सकले, कर-तालि दिये, मुखे वले हरि हरि" ॥१०४
हेलिया दुलिया, नाचिले लागिल, भूमे एक पद राखि ।१०५
निज दुःख भुलि, दिया कर-तालि, नाचे जत सव सखी ॥१०६
सेइ सङ्गे साधु, नाचिते लागिल, भव वन्ध गेल तार ।१०७
वलराम दास, लिखिया लिखिया, सूधिछे गौराङ्ग धार ॥१०८

* * *

तरङ्गिनी वलितेछेन

कालिया चंचल, वाध्य नहे कार ।१०९
किशोर वन्धुया, करे अत्याचार ॥११०

यत अत्याचार, करे चपलिया ।१११
आरो प्राण कान्दे, ताहार लागिया ।११२
छिलाम गभीर, करिल वाउरि ।११३
सब दिनू तबू, करये चातुरी ।११४
कालारे वांधिव, सुन्दरि आनिया ।११५
प्रेम डोरे वाधि, संसारी करिव । ११६
चपलिया मति, घुचाइया दिव ।११७

सजल नयना बलितेछेन

त्रिभुवन माझे, उत्तम से जन ।।११८
कि दिया भुलावि, सखि, तार मन ।११९
निज अङ्ग दिनू, वाध्य नाहि हलो ।।१२०
मलिन ए अङ्ग, से तसु निर्म्मल ।१२१
सर्व्वाङ्ग सुन्दरी, यदि कारु पाइ ।।१२२
सर्व्वमते तार, उपयुक्त हय ।१२३
निर्म्मला रसिका, पिरीतिर खनि ।।१२४
सलाज सरला, भुवनमोहनी ।१२५
एमन रतन, कालियारे दिव ।।१२६
तबे तार आंखि, वारि निवारिव ।।१२७
साधिया आनिव, ए रूप नागरी ।।१२८
तबे त वांधिव, गोलोकेर हरि ।१२९

तखन श्री राधाके सखीगण आह्वान करितेछेन

कोथा तुमि कृष्णा मनोहरा । ध्रु०॥१३०

एस आह्लादिनी, भुवनमोहिनी, काल शशि चित्त चोर ।१३१
कत रवे शुइ, एस लज्जावति, हाते लये प्रेम डोर ॥१३२
चपल चञ्चल, से चिकन काला, आर के वा धरे तारे ।१३३
कारो वाध्य नय, सदा स्वेच्छामय, वान्ध तारे प्रेम डोरे ॥१३४

* * *

कात्यायिनी ठांइ, सव सखी जाइ, पूजा करे जोड़ करे ।१३५
भगवान आधा, सुन्दरी श्री राधा, दे मा जीवे कृपा करि ॥१३६
पुरुष प्रकृति रूपे तार स्थिति, देह मा विभाग करि ।१३७
श्री राधा भजिव, ता हले पाइव, सेइ गोलोकेर हरि ॥१३८

० ० ०

अमनि विपिने, मधुर मुरलि, वाजिल करुणास्वरे ।१३९
वृक्षलता जत, सव पुलकित, कुसुमेते मधु झरे ॥१४०
जननी हृदये, स्नेह नीर झरे, युवतीर नीवी खसे ।१४१
यत आत्माराम, तपस्या छाडिया, मजिल कारुण्य रसे ॥१४२
पक्षी मुख हते, आहार खसिल, शिशु स्तन छाडि दिल ।१४३
किसेर लागिया, केह नाहि जाने, त्रिजगत् सुशीतल ॥१४४

दक्षिण हइते, धाइछे रमणी ।१४५
सोनार पुतलि, भावे पागलिनी ॥१४६
वृन्दावन आलो, श्री अङ्ग आभाय ।१४७
चमकित सवे, रूपेर छटाय ॥१४८

गोविन्दमोहिनी, ढलिया चलिछे।१४९
जगत मोहित, चाहिया देखिछे ॥१५०
कखन वलिछे, ऊर्द्ध मुख हये।१५१
"छेडे दाओ मोरे, धरि तव पाये॥१५२
कभू नाहि जानि, पिरीति काहिनी।१५३
आर कि जगते, नाहिक कामिनी ?" ॥१५४
आवार बलिछे, "कोथा ननदिनी।१५५
कुले दाग दिल, हनू कलङ्किनी ॥१५६
"निल निल" वलि चलिल धाइया।१५७
तमाल धरिया, पडे मुरछिया ॥१५८
सकले धरिल, दाडाल उठिया।१५९
त्रिभङ्ग हइया, रहे दांडाइया॥१६०
वले "आमि कृष्ण, मुरली वाजाये।१६१
दिवसे राधाय, पागल करिये"१६२
आवार वसिल, दुजानु पातिया।१६३
"कानू कानू" वलि, उठिल धाइया ॥१६४
नयन मुदिते, कुञ्जेर भितरे।१६५
हात दिया खोजे, कालिया वन्धुरे ॥१६६
आवार मधुर, वाजिल वांशरी।१६७
"एलाम" वलिया, धाइल किशोरी ॥१६८
धाइल से साथे, यत वालागण ॥१६९
रुनू झुनू वाजे, नूपुर कङ्कण।१७०

पथेर दुधारे, डाले वसि पाखी॥१७१
गाय, आदरिनी, एसो चन्द्रमुखी।१७२
मयूर राधार, आगे नाचि जाय॥१७३
वेणी फूले वसि, भृंग मधु खाय।१७४
ढलिया ढलिया, पथे चलि जाय॥१७५
वृक्ष ह'ते फूल, पडिछे माथाय।१७६
श्याम अंग गन्धे, विपिन भरिल॥१७७
दु वाहु पसारि, किशोरी धाइल।१७८
आवार वाजिल, मधुर मुरली॥१७९
वदन तुलिल, देखे वन माली।१८०
श्याम पाने राइ, पलटि चाहिया॥१८१
फिरिया दांडाल, वदन झांपिया।१८२
धीरे धीरे श्याम, आइलेन काछे॥१८३
चरणे नूपुर, रुनू झुनू वाजे।१८४
मिलिल मिलिल, मिलिल दुजन॥१८५
एत दिने हलो, शीतल भुवन।१८६
संसारी हइवे, चञ्चल कालिया॥१८७
मोदेर झियारी, हवे तार प्रिया।१८८
भगवान सने, हलो कुटम्विता॥१८९
राधारे एनेछि, आर जावे कोथा।१९०
दुर्लभ असाध्य, पडि गेल धरा॥१९१
आनन्दे वलाइ, हलो मातो यारा।१९२

भुवन उज्ज्वला, अवला सरला ॥१९३
लज्जाय कातरा, कान्दे नव वाला ।१९४
कामे वसाइते, आकिञ्चन करे ॥१९५
जाइते ना चाहे, रहे सखी धरे ।१९६
हाते धरि लय, अधोमुखे जाय ॥१९७
रुनू झुनू नुनु, वाजे राङ्गा पाय ।१९८
नागर आइल, धरे राधा करे ॥१९९
हटये नागरी, कांपे थरे थरे ।२००
सखी वले वन्धु, अधीर हयो ना ॥२०१
अधीर हइले, सखीरे पावे ना ।२०२
कत वुझाइया, लइया चलिल ॥२०३
धीरे धीरे श्याम, वामे वसाइल ।२०४
आवार उठिया, पलाइते चाय ॥२०५
सखीगण वेडि, धरि राखे ताय ।२०६

* * *

कातर वदने, चाहि सखि पाने, वलिछेन काला चांद ॥२०७
"कि वा आमि छिनू, कि मोरे करिले" सखि कि साधिले वाद ।२०८
छिनू स्वेच्छामय, क्षुद्र एक वाला, हिया चुरि करि निल ॥२०९
वुझिलाम मने, प्रेमेर उदय, एत दिन परे हलो ।२१०
राज्य सुख मोर, नाहि भाय आर, राज्य अन्य हाथे दिव ॥२११
प्रियसर सहित, तोदेर लइया, वृन्दावने सदा रव ।२१२
राइ प्रति चाइ, वले "शुन प्रिये, कहि जुडि दुठि कर ॥२१३

आमि अभिमानी, चिरकाल हते, केन अपमान कर ?२१४
त्रिभुवन पति, ताहारे वांधिया, पथे निया वेडाइवे ।।२१५
प्रेमेते वांधिया, यदि हेन . कर, तोमारे निन्दिवे सवे" ।२१६
ए कथाय राइ, ज्ञान हारा हइ, पडिल कालार पाइ ।।२१७
"दासीर दासीरे, शुन प्राणनाथ, इहा कि वलिते हय ?२१८
उठालेन श्याम, श्यामे ना चाहिया, राइ, सखी प्रति वले ।।२१९
"हाम शिशु मति, सेवा कि पिरीति, नाहि जानि कोन काले ।२२०
तुहू केह आसि, श्याम वामे वसि, घुचाओ आमार वाधा ।।२२१
पागल ° करिल, ये श्याम मुरलि, आर ना डाकुक राधा" ।२२२
कहिछे रंगिनी, गियाछिनू काछे, किछु काल छिल भाल ।।२२३
दुइ दिन परे, गम्भीर हइल, भये प्राण उडे गेल ।२२४
कहे कांगालिनी, "हृदय त्यजिया, पद चाहि लइ आमि ।।२२५
युगल चरण, देह गो आमारे, श्याम अङ्ग लह तुमि" ।२२६
कुलवती वले, "जवे प्राण दिनू, निश्चिन्त हइनू मने ।।२२७
श्यामेर वामेते, वसिवारे हवे, भावि नाइ कोन दिने" ।२२८
तरंगिनी राइ, मुख पाने चाइ, कातरे वलिते गैल ।।२२९
वलिते वलिते, कांपिते लागिल, कण्ठ रोध तार हलो ।२३०
सजलनयना, वले "शुन राइ, वन्धुया मनेर दुःख ।।२३१
किछुते गेल ना, साध मिटिल ना, सदाइ मलिन मुख ।२३२
जने जने मोरा, वन्धुनिनू वुके, ना निभल अग्नि तार ।।२३३
लइया हृदये, वन्धुरे जुडाये, निवार नयन धार ।।२३४

* * *

शुन भक्त गण, केन सखी गण ।२३५
कृष्ण हस्ते राधा, करिल अर्पण ॥२३६
सर्वोत्तम वस्तु, अति प्रिय जने ।२३७
दिते इच्छा हय, सकलेर मने ॥२३८
आपनारे दिया, तृप्ति नाहि हलो ।२३९
आपने मलिन, मनेते वूझिल ॥२४०
राधार पिरीति, पवित्र निर्मल ।२४१
कृष्णेर हृदय, करिवे शीतल ॥२४२
ताइ श्रीमतीर, दासी पद निल ।२४३
कृष्णे राधा दिया, तारे सुख दिल ॥२४४
राधा पेये कृष्ण, सुखी अतिशय ।२४५
सखीर चरम, सेइ सुख हय ॥२४६

* * *

तवे श्याम वामे, वसाइल राइ ।२४७
आगे सव सखी, प्रणमिल पाइ ॥२४८
गुञ्ज पुष्पहार, दुहे पराइल ।२४९
सब सखीगण, आनन्दे मातिल ॥२५०
यन्त्र मिलाइल, गाइते लागिल ।२५१
श्याम गुण सुधा, विपिन भरिल ॥२५२
मण्डली करिंया, घिरिये घिरिये ।२५३
नाचि नाचि जाय, राधा श्यामे चेये ॥२५४

रागिनी आलेयासिन्धु

सकले—त्रिभुवन शीतल हलो युगल मिलने ॥ध्रु० ।२५५

काला चाँदे चांद वदनी मिलन, मधुर वृन्दावने ॥२५६

१म. सखी—सखी देखे ने, सखि देखे ने ।२५७

दुटि नयन भरे देखे ने ।।२५८

२य सखी—राधा माधव रूप सागरे डुबिनू सखि ।२५६

धर धर आमारे ॥२६०

३य सखी—देखि देखि आंखि भङ्गिमा ओ हानल पंचबाण।२६१

४थं सखी—अङ्गगन्धे भ्रमरा मातल, मातल आमार प्राण ॥२६२

सकले—वलराम श्याम गुणगान ।२६३

काला चांदे सोनार चांदे मिमल ॥२६४

तखन कालाचांद

सजल नयने, चाहि सवा पाने, कहे गद गदस्वरे ।२६५

"एइ वृन्दावने, शोभित जे धने, देखाइव तू सवारे ॥२६६

जगत सुन्दर, प्राण सुखकर, यतेक सामग्री आछे ।२६७

सवार जीवन, दिया वृन्दावन, सुगठित हइयाछे ॥२६८

माधवी मालती, वेला जूथी जाति, जड जग करे शोभा ।२६९

सवाँर लावण्य, लये वृन्दावण्य, सकल शोभार आभा ॥२७०

सुन्दर यतेक, लइ परतेक, जड भाग फेलि दिनू ।२७१

लावण्य लइया, स्तरे साजाइया, वृन्दीवन करे छिनू ॥२७२

माधुर्य्य मगन, सरल सुजन, ऐश्वर्य्य नाहिक माझे ।२७३

एइ वृन्दावने, चिर चिर दिने, थाकिव तादेर संगे ॥२७४

वन अधिकारी, "राग" नाम धारी, कामादि ताहार भृत्य ।२७५
तांहार साहाये, निज जन लये, लीला करि हेथा नित्य ॥२७६
राज कार्यभार, अन्येर ऊपर, दि यासे निश्चिन्तमने ।२७७
दिया निशि केलि, निज जन मेलि, करि सुख वृन्दावने" ॥२७८

* * *

मरकत न्याय, दूर्व्वार शय्याय, प्रिया संगे करि हरि ।२७९
यमुना पुलिने, सखी गण सने, वसिलेन सारि सारि ॥२८०
यमुनार जल, करे झल मल, श्री अंगेर आभा पेये ।२८१
सपत्र कमल, करे टल मल, मन्द मन्द वायु वहे ॥२८२
पाखी वसि दूरे, गाइछे सुस्वरे, करे श्याम गुणगान ।२८३
मयूर मयूरी, आगे नृत्य करि, करिले आनन्द दान ॥२८४

हेन समय

कटोरा पूरिये, सेवा वस्तु लये, वृन्दा करे आगमन* ।२८५
श्यामेरे भुञ्जाते, साध वड चित्ते, व्यस्त हलो सखी गण ॥२८६

आंखि जले श्याम, पद धुयाइल ।२८७
वेणी खुलि केशे, चरण मुछाल ॥२८८
हृदि पद्मासन, सखी पाति दिल ।२८९
काला चांद ताहे, वसिते वलिल ॥२९०
कहिलेन श्याम, प्रिया गण शुन ।२९१
आमारे सेविया, थाक चिर दिन ॥२९२

---

*वृन्दावन की अधिष्ठात्री देवी वृन्दा सखियों के लिये श्री कृष्ण सेवा के निमित्त वस्तु लाई ।

अन्ये सेवा सुखे, आमित वञ्चित ।२९३
आजि सेइ सुख, भुञ्जिव किञ्चित ॥२९४
आजि वृन्दावने, गृहस्थ हइव ।२९५
साध मिटाइव, तोदेर सेविव ॥२९६
क्षीण कटि आँटि, वाँधिलेन हरि ।२९७
सखी हाथ धरि, वसालेन सारि ॥२९८
भागवत लीला, सुवर्णेर थाला ।२९९
सखी आगे श्याम, आपनि राखिला ॥३००
"आगे इहा पिओ, क्षुधा तीक्ष्ण हुवे ।३०१
तवे सव द्रव्ये, आस्वाद वाडिवे" ॥३०२
इहा वलि श्याम, भरि घट हेम ।३०३
सन्मुखे राखिल, "भक्ति" आर "प्रेम" ॥३०४
यत सखी तत, काला चाँद हलो ।३०५
प्रति सखी आगे, वन्धुया वसिल ॥३०६
लज्जाय कातरा, अवला सरला ।३०७
प्रेम सुधा पाने, लज्जा दूरे गेला ॥३०८
पञ्चेन्द्रिय दिया, सेवा वृन्दावने ।३०९
सेइ सेवा श्याम, शिखाय यतने ॥३१०
वले "प्रिया शुन, वृन्दावन धन ।३११
एके एके तोरे, करिव वर्णन ।३१२
एइ सव द्रव्य, देख अगनन ॥३१३
आँखि दिया प्रिया, करि वा भोजन ।३१४

एइ पात्रे देख, पूर्ण चांद आला ॥३१५
ए देख रूप, पूर्ण एक थाला ।३१६

रङ्गिनी कहिलेन

रूप सरोवर, वृन्दावने आछे ॥३१७
एक थाला भरि, वृन्दा आनियाछे ।३१८

श्याम वलितेछेन

वातावी फूलेर, गन्ध एक पात्र ॥३१९
आमिलाम प्रिया, देख एइ मात्र ।३२०
वायुर कटोरा, स्वच्छ ओ पवित्र ॥३२१
वेला गन्ध पूर्ण, देख सेइ पात्र ।३२२
एइ सब द्रव्य, मय वृन्दावन ॥३२३
घ्राणेन्द्रिय दिया, करिवा भोजन ।३२४
फटइ कजल, पाखीठि संसारे ॥३२५
रसिक जनेरे, आनन्द वितरे ।३२६
से पाखीर सुर, पात्रेते पूरिया ॥३२७
राखियाछि हेथा, एई देख प्रिया ।३२८
कर्ण दिया प्रिया, करिया भोजन ॥३२९
कर्णानन्द द्रव्ये, पूर्ण वृन्दावन ।३३०
राखिलेन तवे, आमेर आस्वाद ।३३१
शीतल सुगन्ध, वायु वल प्रउ ॥३३२

* * ❀ *

रङ्गिनी वलितेछेन

"वायु वल प्रद, शीतल सुगन्ध ।३३३
सम भावे वहे, शरीरे आनन्द ॥३३४
तमालेर तले, लतार वितान ।३३५
निकुञ्ज निलय, उपरे विमान ॥३३६
वृन्दावने नाहि, प्राचीर प्रासाद ।३३७
नाहि कारागार, नाहिक' विषाद ॥३३८
वृन्दावन वायु, पवित्र मधुर ।३३९
परश मात्रेते, ताप करे दूर ॥३४०
सकल अङ्गेते, करिव सेवन ।३४१
घुचिवे घुचिवे, त्रिताप दहन" ॥३४२

श्री वृन्दावन वलितेछेन

"रसाल आस्वाद, सुगन्ध जडित ।३४३
शीतल कोमल. पुलक पूर्णित.।।३४४
कृष्ण कृष्ण नाम, कृष्ण नाम सुधा ।३४५
रसने लइवे, ना रहिवे क्षुधा ॥३४६
कृष्ण कृष्ण वलि, सखी रागाहिल ।३४७
लज्जा पाइ हरि, वदन नमिल ॥३४८

श्री वृन्दा आवार वलितेछेन

"आजि शिक्षा गुरु, साजि तुये आमि ।३४९
तुहुं मम शिष्य, आमि मन्त्र स्वामी ॥३५०
क्षम सखि गण ना करि वड़ाइ ।३५१

कोन मते श्याम, नाम गुण गाइ ॥३५२
वृन्दारण्य सुख, करिवे ये शिक्षा ।३५३
कृष्ण नाम विना, नाहि अन्य दीक्षा ॥३५४
कृष्ण नाम मन्त्र, कृष्ण नाम सुधा ।३५५
जपिवे भुञ्जिवे, ना रहिवे क्षुधा ॥३५६
वृन्दारण्ये एइ, परम रहस्य ।३५७
शिखानू शिखाले, बूझिले अवश्य ॥३५८
"कृष्ण कृष्ण कृष्ण" सखीरा गाइल ।३५९
पुन नत मुख, श्री हरि रहिल ॥३६०

* * *

प्रेमेर उत्सव, वृन्दावने जानि ।३६१
तूर्ण आइलेन, देवी वीणापाणि ।।३६२
शिर लुटाइया, प्रणमि चरणे ।३६३
आगे दांडालेन, नमित वदने ॥३६४
राग ओ रागिनी, मूर्ति मन्तहये ।३६५
देवी दुइ पाशे, आछे दांडाये ॥३६६
चौपहि रंगिनी, नाना रूप धारी।३७७
दाडालेन, पात्र हाते, सारि सारि ॥३६८
श्याम कहे, "एरा, भाव जग माझे।३६९
बृन्दावने देह, लइया विराजे॥३७०
बृन्दावने एंरा, देहधारी हये।३७१
आनन्द वितरे, मन्दिरे वसिये ॥३७२

कवितार रस, यतने मथिया ।३७३
आनियाछे एरा, पात्रेते पूरिया ॥३७४
इहादेर वास, एइ स्थाने हय ।३७५
जगते एंदेर, छाया मात्र पाय॥३७६
साध यत आछे, जीव मन माझे ।३७७
नाहि मिटे ताइ, सदाइ कांदिछे ॥३७८
सर्व सुख माझे, जीव यदि रय ।३७९
तबू से कभू, स्वस्ति नाहि पाय ॥३८०
वृन्दावने जीव, करे आगमन ।३८१
तवे सब दुःख, हय त मोचन ॥३८२
अति मृदु स्वरे, वलि लेनराइ ।३८३
तोमा विना वृन्दा, वने सुख नाइ॥३८४
तोमा विना करे, एखाने वसति ।३८५
वञ्चित वञ्चित, वंचित से अति ॥३८६
लज्जा पाइ श्याम, कृतज्ञ नयने ।३८७
कृतार्थ हइये, चाहे राइ पाने ॥३८८
प्रेमेर कलश, परिपूर्ण आछे ।३८९
आपनि सखीरे, श्याम विलाइछे ॥३९०
गोपीगण सुखे, आस्वादिते यान ।३९१
सकल द्रव्येर, स्वाद अफुरान ॥३९२
नव नव रूप, निमिषे निमिषे ।३९३
नूतन आस्वाद, चुमुके चुमुके ॥३९४

सुखेर हिल्लोले, भासिया चलिल ।३६५
नाटेर श्रीगुरु, श्रीनन्द दुलाल ॥३६६

* * *

आतिथ्य करिया, मदन मोहन ।३६७
सवारे कहिछे, मधुर वचन ॥३६८
वड सुखी मोरे, तोमरा करिल ।३६६
वर मागों सवे, दिव कुतहले ॥४००
सखीरा भाविछे, कि वर मागिव ।४०१
कि आछे अभाव, किवा मागिनिव ॥४०२
रंगिनी कहिछे, हासिया हासिया ।४०३
आमि वर निव, सवार लागिया ॥४०४
मोदेर सवारे, प्रतुल गडिया ।४०५
खेला कर तुमि, या तोमार हिया ॥४०६
कखन भांगिछे, कखन गडिछे ।४०७
एइ मत दिवा, रजनि खेलिछ ॥४०८
एइ मत मोरा, तु दुहारे लये ॥४०६
खेलिव सकले, यथा चाहे हिये ॥४१०
कखन मिलाव, कखन छाडाव ।४११
कखन दुर्जने, कलह कराव ॥४१२
कखन शोयाव, कखन साजाव ।४१३
यत प्राणे चाय, ततइ भुञ्जाव ॥४१४
अेइ मत खेला, कर लये जीव ।४१५

तू दुहारे लये, से खेला खेलिव ॥४१६
"तथास्तु तथास्तु" कहेन माधव ।४१७
ये खेला खेलिवे, मोदेर पाइवे ॥४१८
खेलिवे तोमरा, यथा लय मने ।४१९
निश्चय ताहाते, रव दुई जने ॥४२०
केह वा विग्रहे, केह वा अन्तरे ।४२१
खेलिवे जाहार, ये वा इच्छा करे ॥४२२
कल्पना करिया, खेला सा ज्ञाइवे ।४२३
आमार बरेते, सव सत्य हवे ॥४२४

* * *

वलिया माधव, हइल नीरव, नमित मुखेते रहे ।४२५
नयनेर धारा, मुकतार पारा, से चन्द्र वदने वहे ॥४२६
कि वा भाव मने, जगते के जाने, ये मने ब्रह्माण्ड भासे ।४२७
के आछे संसारे, वलि वारे पारे, केन श्याम कांदे हासे ॥४२८
सवे क्षुब्ध मने, चाहे श्याम पाने, काहार ना स्फुरे वाणी॥४२९
सवा दुःख देखि, मुछि दुठि आंखि, कहिछेन गुण मणि ॥४३०
'तुषिते आमारे, जीव कि ना करे, से कथा भाविले मने।४३१
कहिवारे नारि, ये हय हामारि, केमन करये प्राणे ॥४३२
क्षुद्र जीव अति, किछु नाहि शक्ति, आमि त ब्रह्माण्डोदर ।४३३
हेन आमातरे, चिडा गुड धरे, वले 'शीघ्र खाओ धर॥'४३४
रथेते चढिये, गौरवे टानये, मोरे तुषिवारतरे ।४३५
तादेर चेष्टाय, वुक फेटे जाय, अधिक कि कव तोरे ॥४३६

जारा वड ज्ञानी, वलवान धनी, ध्याने विश्व रूप देखे ।४३७
तादेर चेष्टाय, नाहि आसे जाय, दुःख नाहि देय मोके ॥४३८
मोर कांगालिनी, यत अवोधिनी, प्रवोध नाहिक माने ।४३९
आमि सर्वेश्वर, ब्रह्माण्ड आमार, से सव नाहिक शुने ॥४४०
खाओ यावे शोयावे, धोयावे परावे, राखिवे कोटार माझे ।४४१
विया दिया मोर, आनन्दे विभोर, कर तालि दिया नाचे ॥४४२
इहारा आमाय, फेलियाछे दाय, हात छाडाइते नारि ।४४३
एदेर यतने, अस्थिर पराने, सदा झुरे झुरे मरि ॥४४४
केह वा आमाके, भये नाहि डाके, मोर भक्त गने डाके ।४४५
धरि भक्त पाय, करे अनुनय, "उद्धार करह मोके" ॥४४६
सवे पूजिवारे, पारे सर्व्वेश्वरे, भक्ते पूजे जेइ नरे ।४४७
सेइ दैन्य धन्य, सत्य अकिञ्चन, आगे देखा देइ तारे ॥४४८
ज्ञानी वलवान, विश्वरूप ध्यान, सेत वड लोक कथा ।४४९
दरिद्र काङ्गाले, आमारे डाकिले, दिते नारि तारे व्यथा ॥४५०
धनी ओ काङ्गाल, दुजने डाकिले, कि करिव वल भाइ । ४५१
याहा कर तुमि, ताइ करि आमि, आगे दुखीं काछे जाइ" ४५२

❀ × ❀

तवे चाहिलेन, श्रीमतीर पाने ।४५३
'वल, प्रिया किवा आछे तुया मने ॥४५४
मनेते आमार, आनन्द धरे ना ।४५५
तोमा किछु दिव, वडइ वासना ॥४५६

तुमि कृष्ण प्राण, किछु नाहि चाह ।४५७
इहाते आमारे, वड दुःख देह ॥४५८
तखन श्रीमती, गलाय वसने ।४५६
कांदि पडिलेन, प्रभूर चरणे ॥४६०
राधार रोदन, श्यामेर वांशरि ।४६१
केवा हारे जिने, कहिते ना पारि ॥४६२
राधार क्रन्दने, भुवन द्रविल ।४६३
आपनि मुकुन्द, अस्थिर हइल ॥४६४
से करुण स्वर, ये जन सुनेछे ।४६५
ताहार कि आर, देह धर्म्म आछे ? ॥४६६
"सामाल सामाल" डाके सखी गण ।४६७
राधार तरङ्गे, डूविवे भुवन ॥४६८
तरङ्ग उठिते, कालिया धरिल ।४६९
शत शत चुम्ब, वदनेते दिल ॥४७०
आपनार कोले, प्रिया शोयाइल ।४७१
पीत वासे वायु, करिते लागिल ॥४७२
रये रये कत, तरङ्ग उठिछे ।४७३
प्रिया मुख चाइ, मुकुन्द झुरिछे ॥४७४
अनेक यतने, धैरज धरिये ।४७५
मृदु स्वरे कहे, वन्धु मुख चेये ॥४७६
"वहु दिन हते, मने दुःख आछे ।४७७

आज मनो कथा, कव तोमा काछे ॥४७८
जीवगण तोमा, भूलिया रहिल ।४७९
तोमार संसार, छार खारे गेल ॥४८०
सदाइ कान्दिछे, दुःखेते कातर ।४८१
अभय प्रदान, जीव गणे कर ॥४८२
भयङ्कर भावि, तोमा भय करे ।४८३
दिवा निशि भये, त्राहि त्राहि करे ॥४८४
तुमि कि वा वस्तु, देह परिचय ।४८५
एइ वर तुया, काछे दय मय ॥४८६

प्रभु वलितेछेन

"वाञ्छा केवल, तोमा उपयुक्त ।४८७
तोमार इच्छाय, जीव हवे मुक्त ॥४८८
जनमिया थाकि, शिखावारे जीवे ।४८९
ताहे अवतार, सर्व्व देशेपारे ॥४९०
येवा जाति यत्न, धरे अधिकार ।४९१
सेइ देशे सेइ, रूप अवतार ॥४९२
व्रज रस कभू, ना पाइल जीव ।४९३
एइ वार सेइ, रस वितरिव ॥४९४
सेइ रस मोर, अति गुप्तधन ।४९५
करिव आपने, जाइ वितरण ॥४९६

अन्य काज मोर, अंश द्वारा हय ।४९७
प्रेम वितरण, अन्य द्वारा नय ॥४९८
नवद्वीप धामे, जनमल लइव ।४९९
आपनि मजिया, धर्म्म शिखाइव ।५००
घरे घरे गिया, ब्रज रस दिव ।५०१
तोर प्रेम ऋणे, खालास पाइव ॥५०२
यदि श्री गौराङ्ग, ना हतो उदय ५०३
तवे बाङ्गायेर, कि हतो उपाय ॥ ५०४

साधुर स्वप्न-भङ्ग

साधुर तखन, भांगिल स्वप्न ।१
मने भावे यहा, करिल दर्शन ॥२
भावे मने मने, जानि लाम सब ।३
किन्तु इथे मोर, किवा हलो लाभ ॥४
जानिलाम किन्तु, ना पानू तांहारे ।५
किंवा हवे लाभ, वृथा ज्ञाने मोरे ॥६
भाविछे अन्तरे, वाह्य नाहि जाने ।७
सब पासरिया, डाके एक मने ॥८
नयन मेलिया, डाकिते लागिल ।९
दरशन दाओ, भगत वत्सल ॥१०
एइ योगासने, वसिलाम आमि ।११
यावत् दर्शन, नाहि दाओ तुमि ॥१२
दांडाइया तुमि, एकटु आडाले ।१३
देखितेछ दुःख, ना एस डाकिले ॥१४
वुझिवारे नारि, कि तोमार रीति ।१५
दरशन दिले, कि तोमार क्षति ॥१६
येइ मात्र चित्त, अति सूक्ष्म हल ।१७
अति सूक्ष्म हये, श्री पद छुइल ॥१८
अमनि आगेते, देखे तेजो-राशि ।१९
नयन आनन्द, कोटि कोटि शशि ॥२०

से तेज देखिया, आंखि झलसिल ।२१
अल्प मुरछिया, सम्वित पाइल ॥२२
कहितेछे साधु, हासिया हासिया ।२३
नयन जुडाल, ना जुडाल हिया ॥२४
हृदये तोमार, नाहि दया माया ।२५
भुलाते आइले, वाजि देखाइया ॥२६
करिव भगति, करिव पिरीति ।२७
आलोते केवल, आंखिर तिरिप्ति ॥२८
आकार धरिया, दांडाओ आगेते ।२९
तवे त सम्पर्क, तोमाते आमाते ॥३०
वलिते वलिते, करे दरशन ।३१
आदि अन्त नाइ, अङ्ग अगनन ॥३२
कोटि कोटि मुख, कोटि कोटि हस्त ।३३
जे अंगे निरखे, अनन्त समस्त ॥३४
साधु वले 'वाप, किवा कर तुमि ।३५
ओ रूप देखिया, भय पाइ आमि ॥३६
ओ रूपे आइले, भयेते मरिव ।३७
तोमा देखे मोरा, भये पलाइव ॥३८
क्षमा देह नाथ, छाडहे चातुरी ।३९
सुख पाइ हेन, रूप एस धरि ॥४०
इहाते से रूप, आलोते मिशिल ।४१
अति दुःखे साधु, कांदिते लागिल ॥४२

एस एस नाथ, हेन रूप धरि ।४३
जाहे मोरा भालो, वासिवारे पारि ।।४४
याहा इच्छा हश्रो, यदि पूजा चाश्रो ।४५
चाह भाजो बासा, मोर मत हश्रो ।।४६
यदि साधु कान्दे, हइया विकल ।४७
क्रन्दने द्रविल, निराकार श्रालो ।।४८
छिल तेज-राशि. से तेज द्रविल ।४६
द्रविया हइल, तेजोमय जल ।।५०
"एस एस नाथ" छांडे हुंहुकार ।५१
भक्तेर क्रन्दने, जल तोल पाड ।।५२
तरङ्ग उठिल, करे झलमल ।५३
नाना वर्णा जल, नयन शीतल ।।५४
'एसो' 'एसो' वलि, हुंकार करिल ।५५
तेज जल हते, मूरति उठिल ।।५६
देखे सन्मुखेते, मूरति मोहन ।५७
तेजोमय वपु, मुदित नयन ।।५८
मूर्तिपाने साधु, चाहिया रहिल ।५६
श्रानन्दे पडिछे, नयनेर जल ।।६०
कहे साधु धरि, शुन प्रिय जन ।६१
एक वार मेल, श्रो दुठि नयन ।। ६२
शुनियाछि ना कि, श्रो दुठि नयन ।६३
अरूपा वरणा, प्रेम निकेतन ।।६४

एक बार चाह, ए दासेर पाने ।६५
दुजने मिलाव, नयने नयने ॥६६
मूरति ईषत्, कांपिते लागिल ।६७
पराण पाइल, निश्वास वहिल ॥६८
नयन मेलिल, अचेतन मत ।६९
देखिते देखिते, नयन जीवित ॥७०
नयने नयने, हइल मिलन ।७१
स्तब्ध हये साधु, करिछे दर्शन ॥७२
कृष्ण दरशने, एइ वेधा हय ।७३
रूपे मोह हय, देखिते ना पाय ॥७४
सङ्कल्प करिया, चेतन राखिल ।७५
अति कष्ट करि, कहिते लागिल ।७६
"तुमि कि आमार, चिर दिन बन्धु ?।७७
तुमि कि गो सेइ, करुणार सिन्धु ॥७८
तुमि कि आमाय, सृजन करिले ।७९
तुमि कि हृदये, स्नेह विन्दु दिले ॥८०
आजि एकि शुभ, दिनेर उदय ? ।८१
नव परिचय, तोमाय आमाय ?॥८२
आजि कि आमार, व्रत सिद्ध हलो ।८३
कथा कह बन्धु, पराण विकल" ॥८४
कहिवारे कथा, से देवता गेल ।८५
मृदु मृदु ठोंट, कांपिते लागिल ॥८६

सप्रेम नयने, साधुरे चाहिल ।८७
कि भाविया मने, ईषत् हासिल ॥८८
कहिल देवता, अति मधु स्वर ।८९
"वर माग साधु, या इच्छा तोमार" ॥९०
संगीत अधिक, सुस्वर वचन ।९१
सुधाय साधूर, पूरिल श्रवण ॥९२

साधु कहितेछेन

तुमित सन्मुखे, कि वर मागिव ।९३
साध मोर नाइ, आमि वड हव ॥९४
तवे वर दाओ, येन दयामय ।९५
चिर दिन जाय, तोमाय आमाय ॥९६
शुन हे पाठक, आमार उत्तर ।९७
मने भाव येन, तुमि निवे वर ॥९८
यदि विभु तोमा, चाहे वर दिते ।९९
कि वर चाहिवे, भेवे देख चित्ते ॥१००
वसि वसि भाव, पारिया वूझिते ।१०१
याहा चावे चिर सुख नाहि ताते ॥१०२
जाहा मने भाव, बडइ प्रसाद ।१०३
क्षय हये जाय, करिले आस्वाद ॥१०४
एकमात्र सुख, भगवान सङ्ग ।१०५
चिर दिन नाहि, जे सुखेर भङ्ग ॥१०६
नित नव राग, नित नव खेला ।१०७

आनन्द जलधि, से चिकन काला ॥१०८

* ❀ ❀

तवे

भुवन मोहन, साधुरे चाहिल ।१०६
प्रेम जले राङ्गा, आंखि छलछल ११०
दोहे दोहा पाने, चाहिया रहिल ।१११
अविरत पडे, नयनेर जल ॥११२
नयन-मुछिया, वले साधु शुन" ।११३
तवे एत दिने, करेछे स्मरण ॥११४
एक दिन आमि, तोमा भूलि नाइ ।११५
वहु दिन आछि, तोमा पथ चाइ ॥११६
मोरे चाहे शुधू, स्नेहेरे लागिया ।११७
हेन नाहि देखि, भुवन खोजिया ॥११८
मोर संगे थाकि- वारे चाओ तुमि ।११६
जानिलाम वड, भाग्यवान आमि ॥१२०
निज जन तोमा, नियाछि सवारे ।१२१
आमि शुधु एका, रहिए संसारे ॥१२२
मोर संगे रवे, दुइ जन हव ।१२३
कथाय आनन्दे, काल काटाइव ॥१२४
कि सम्पर्क पाता, हवे मोर सने ।१२५
तोमार या इच्छा, हव सेइ जने ॥१२६
आनन्देते साधु, हयेछे विह्वल ।१२७

वले

"आमि कि कहिव, तुमि सब वल" ॥१२८

तखन भगवान वलितेछेन

आमार संसार, तोमा देरलये ।१२९
संसार गढिव, सम्पर्क पातारे ॥१३०
कि वा पिता हओ, कि वा हओ पुत्र ।१३१
कि वा हओ स्वामी, अथवा कलत्र ॥१३२
कि वा भ्राता सखा, जा इच्छा तोमारे ।१३३
से भाब तोमार, हइवे आमार ॥१३४

साधु कहितेछेन

"वल वल वल, आमि कि वलिव ।१३५
जाहा तुमि वल, ताहाइ हइव ॥१३६
तवे एक कथा, तोमारे कहिव ।१३७
पिता माता तोमा, वलिते नारिव ॥१३८
पिता माता प्रति, जेइ भालो वासा ।१३९
ताहे ना मिटिवे, आमार पिपासा ॥"१४०
तवे प्रभु वले, मधुर वचन ।१४१
तोमा आमि करे, छिलाम सृजन ॥१४२
छिनू निराकार, सवा त्यज्य हये ।१४३
कान्दिये कान्दिये, दिले चेताइये ॥१४४
कान्दिये कान्दिये, करि आकर्षण ।१४५
सृजिले आमारे, तोमारि मतन ॥१४६

तुमित सृजन, आमारे करिले ।१४७
आमि तव पुत्र, तुमि पिता हले ॥१४८
तुमि बलेछिले, आपनार मुखे ।१४९
आमा कोले करि, वेडाइवे सुखे ॥१५०
एइ आमि तव, कोलेते जाइब ।१५१
पितार ब्रद्योते, चिर दिन रव ॥१५२
तोमार चर्वित, ताम्बूल खाइव ।१५३
निश्चिन्त हइया, कोले शुये रव ॥१५४
पितारे देखिब, नयन भरिये ।१५५
पाछे पाछे जाब, तुया वाधा वये ॥१५६
वलिये साधुरे, कोलेते लाइल ।१५७
साधु तार वुके, अचेतन हलो ॥१५८
हेन अचेतन, दणेक रहिल ।१५९
अल्पे अल्पे परे, चेतन पाइल ॥१६०
चेतन पाइया, देखे वसि आछे ।१६१
सुन्दर बालक, वातास दितेछे ॥१६२

* * *

देखे आपनार, मत प्रत्यव ।१६३
येन निज पुत्र, सेइ मत सब ॥१६४
परम सुन्दर, वन माला गले ।१६५
वेलार वेसर, नासिका यदोले ॥१६६
"वाप" "वाप" वलि, साधु कोले निल ।१६७

से जे भगवान, ताहा भुलि गेल ॥१६८
वुक माझे करि, गृहे फिरि गेल ॥१६९
गोपाले पाइया, सव पसारिल ॥१७०
वलाइ वलिछे, "शुन भक्त गया ।१७१
माथा कुटि तारे, ना पावे कखन ॥१७२
माथा कुटि तार, सम्पत्ति पाइवे ।१७३
किन्तु श्याम चांदे, धरिते नारिवे ॥१७४
तारे भाल वास, तवे तारे पावे ।१७५
गौराङ्ग भजिले, ए सव शिखिवे ॥१७६
शचीर दुलाल, कि कर तोमारे ।१७७
वड सुख तुमि, दियाछे आमारे ॥१७८
छिनू मत्त हये, किछु नाहि जानि ।१७९
आपनि आइले, तुमि गुणमयि ।।१८०
केन जे आइले, ताहा तुमि जान ।१८१
शीतल करिले, ए पोडा पराण ॥१८२
अति रुग्ण देह, क्लान्त मोर चित्त ।१८३
सेविते तोमारे, नारि यथोचित ।।१८४
ताहाते आमार, कोन दुःख नाइ ।१८५
सव जान तुमि, आमार हृदय ॥१८६
कान्दि कभू आमि, मनेर दुःखेते ।१८७
सेत जीव धर्म्म, नारि उलङ्घिते ॥१८८
एखन कांदिया, मने दुःख हय ।१८९

कत जानि व्यथा, दियाछि तोमाय ॥१९०
बड ज्ञानी जन, आमारे बुझाय ।१९१
गौराङ्ग मानुष, भगवान नय ॥१९२
किन्तु तारा नाहि, जाने मोर मन ।१९३
केन तारे करि, आत्म समर्पण ॥१९४
आमि बलेछिनू, श्री गौराङ्ग शुन ।१९५
तुमि काडि निले, मोर प्राण मन ॥१९६
तोमार चरणे, लइनू आश्रय ।१९७
तोमा विने मोर, किछु नाहि भाय ॥१९८
तुमि यथा थाक, तथाय रहिव ।१९९
यदि पडे जाओ, आमिओ जाइव ॥२००
हासिया गौरांग, वलिलेन मोरे ।२०१
'दादा विश्वरूपे, संपिलाम तोरे ॥२०२
दादा विश्व रूप, हन बलराम ।२०३
ताहे बलराम, दास तोर नाम ॥२०४

परिशिष्ट सं० ५

प्रस्तुत ग्रन्थ में जिन जिन विद्याओं और धर्म-ग्रंथों की शाखा-प्रशाखाओं का जगह-जगह जिक्र किया गया है, उन्हें समझने के लिये इस परिशिष्ट में संकेत चित्र यहां दिये जाते हैं। आशा है, पाठकों को इनसे विषय समझने में सहायता मिलेगी।

आत्मा में १६ कला आरोपित

भार्गव
दुर्वासा
सूर्य्य
पराशर
वरुण
कपिल
नारद
शान्त
धर्म
सनत्कुमार
कालो
शिव
नन्दी
नरसिंह
वसिष्ठ
ब्रह्माण्ड
मरीचि
महेश्वर
उपपुराण

धर्म्मशास्त्र
न्याय
सामवेद
यजुर्वेद
पुराण
ऋग्वेद
छन्द
अथर्ववेद
आयुर्वेद
ज्योतिष
मीमांसा
निरुक्त
धनुर्वेद
व्याकरण
गंधर्ववेद
कल्प
अर्थ शास्त्र
शिक्षा
विद्या

श्रीराधा

ईशोपनिषद
ईशावास्यमिदं
कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि
असुर्य्या नाम ते लोकाः
अनेजदेकं मनसोजवीयो
तदेजति तन्नैजति
यस्तु सर्वाणि भूतानि
यस्मिन्सर्वाणि भूतानि
सपर्य्यगाच्छुक्रमकाय
अन्धन्तमः प्रविशन्ति
अन्यदेवाहुर्विद्यया
विद्याञ्चाविद्याञ्च
अन्धन्तमः प्रविशन्ति
अन्यदेवाहुः सम्भवात्
सम्भूतिञ्च विनाशञ्च
हिरण्मयेन पात्रेण
पूषन्नेकर्षे यम सूर्य
वायुरनिलममृतमथेदं
अग्ने नय सुपथा राये

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्योतिषाचार्य

मुक्ति गेहिनी
अर्धमात्रा
चिदानंदा
भवघ्नी
भयनाशिनी
वेदत्रयी
परानन्दा
तत्त्वार्था
ज्ञानमंजरी
त्रिसंध्या
ब्रह्मवल्ली
ब्रह्मविद्या
सरस्वती
सत्या
सीता
गायत्री
गंगा
गीता

मुक्ति मार्ग